फलित ज्योतिष में डिप्लोमा

प्रश्न पत्र कोड - DPJ-17

चतुर्थ प्रश्न पत्र

मुहूर्त्त विचार

खण्ड – 01
मुहूर्त्त एवं संस्कार विमर्श

इकाई–1 मुहूर्त विचार एवं आवश्यकता

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम मुहूर्त का विचार एवं उसकी आवश्यकता के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। नक्षत्रों व ग्रहों के विचार से हमें यह बात समझ में आने लगी कि समय हमेशा एक जैसा नहीं होता है। हर समय हर कार्य किया नहीं जा सकता है। हर कार्य के लिये एक निश्चित समय होता है जो उस कार्य को पूर्ण होने में पूर्णतः सहयोग करता है।
विषय की विस्तृतता के कारण हम लोग इस विषय का तीन अलग अलग खण्डों में अध्ययन करेंगे। उनमें पहला खण्ड मुहूर्त के बारे में सामान्य जानकरी देनेवाला, और दूसरा मुहूर्त के विविध स्वरूप एवं मुहूर्त विचार को बताने वाला और तीसरा इसकी आवश्यकता को बताने वाला होगा। इन तीनों खण्डों के बाद खण्ड का सारांश, शब्दावली, प्रश्न आदि आनुषंगिक खण्ड होंगे जो पढ़े हुये विषय में पकड़, को और मजबूत करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस खण्ड का मुख्य उद्देश्य मुहूर्त के बारे में जानना और उसकी प्रयोगात्मक विधि समझना है। हम ज्योतिष के आधार पर काल गणना करते है। इस काल गणना में हम ग्रह, नक्षत्र और राशियों का सहारा लेते है। इसी तरह हम शुभ कार्यों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करते है। उस सन्दर्भ में हम यह भी जानकारी प्राप्त करते है कि ये शुभ कार्य नित्य और नैमित्तिक भेद से दो प्रकार के है। किन्तु इतनी बात जानने पर भी हमें एक शंका (जिज्ञासा) हमेशा पीड़ित करती है कि इस प्रकार के काल की गणना करने की आवश्यकता क्या है? और इससे हमें क्या मिलेगा? इस खण्ड में हम काल का ही एक अभिन्न अंग जो मुहूर्त नाम से प्रचलित है उसके बारे में जानेंगे और उसकी आवश्यकता पर दृष्टि डालेंगे।

संक्षेप में यदि कहा जाए तो इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य व प्रयोजन काल के एक महत्वपूर्ण अंग के बारे में जानना है। वह महत्वपूर्ण अंग ही मुहूर्त नाम से प्रसिद्ध है। मुहूर्त किसे कहते हैं? उसकी क्या आवश्यकता है? उसका क्या प्रयोजन है? इन्हीं सब विषयों की जानकारी प्राप्त करना इस इकाई का लक्ष्य है।

1.3 मुहूर्त शब्द का प्रयोग

ज्योतिष में मुहूर्त शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों में और अनेक सन्दर्भों में मिलता है। मुख्य रूप से इसका प्रयोग कार्य को करने के लिये प्रयोग में लिए जाने वाले समय के रूप में हुआ है। सभी कार्यों का जन्मस्थान मुहूर्त ही है। अर्थात् मुहूर्त का प्रमुख आशय कार्य करने हेतु योग्य समय है। ज्योतिष अध्ययन करने वालों के लिये मुहूर्त का व्यापक अर्थ योग्य समय ही है।

1.3.1 मुहूर्त शब्द से ज्योतिष का एक व्यवहार

इस का एक व्यवहार व प्रयोग दिनमान व रात्रिमान के पन्द्रहवें भाग के रूप में है। अर्थात् दिनमान व रात्रिमान को पन्द्रह भागों में बांटने पर जो एक भाग प्राप्त होता है, उसे

मुहूर्त कहते है। किन्तु इस मुहूर्त संज्ञक कालविभाग का प्रयोग दुष्ट मुहूर्त निर्णय में ही किया गया है। ये दुष्ट मुहूर्त विवाहमुहूर्त निर्णय के सन्दर्भ में देखे जाते है और विवाह इन दुष्टमुहूर्तों में नहीं हो सकते है। इसके अतिरिक्त भी इस विभाजन का प्रयोग आचार्यों के द्वारा बताया गया है जिसका विवरण मुहूर्त वर्णन के साथ दिया गया है।

जैसे रामदैवज्ञ ने मुहूर्तचिन्तामणि में लिखा है –

गिरीशभुजगामित्राः पिन्र्यवस्वम्बुविश्वेभिजिदर्थ च विधातापीन्द्र इन्द्रानली च।
निऋतिरुदकनाथोप्यर्यमाथो भगः स्युः क्रमश इह मुहूर्ता वासरे बाणचन्द्रा।।

अर्थात् एक दिन में 15 मुहूर्त होते है और क्रमशः गिरीश, सर्प, मित्र, पितृगण, वसु, जल, विश्वेदेव, ब्रह्म, विधाता, इन्द्र, इन्द्राग्नि, निऋति, वरुण, अर्यमा, भग ये 15 मुहूर्तों के स्वामी है। यही वर्णन हमें प्रायः सभी प्रकार के मुहूर्त ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इसी तरह रात्रिमान में भी 15 मुहूर्त होते है। उनके भी स्वामी निर्धारित है।

जैसे–

शिवोजपादादष्टी स्युर्मेशा अदितिजीवकौ।
विष्ण्वर्कत्वष्टृमरुतो मुहूर्ता निशि कीर्तिताः।।

क्रमशः रात्रि के मुहूर्तों के शिव, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनी कुमार, यम, अग्नि, ब्रह्म, चन्द्र, अदिति, जीव, विष्णु, अर्क, त्वाष्ट्र और मरुत् स्वामी है।

दिन व रात्रि के मुहूर्त व उनके स्वामी को निम्नलिखित चार्ट के द्वारा सरलता से समझ सकते है –

	दिन के मुहूर्त्त		**रात्रि के मुहूर्त्त**
1	गिरीश	1	शिव
2	सर्प	2	अजपाद
3	मित्र	3	अहिर्बुध्न्य
4	पितृगण	4	पूषा
5	वसु	5	अश्विनी कुमार
6	ज्ल	6	यम
7	विश्वेदेव	7	अग्नि
8	ब्रह्म	8	ब्रह्म
9	विधाता	9	चन्द्र
10	इन्द्र	10	अदिति
11	इन्द्राग्नि	11	जीव
12	निऋति	12	विष्णु
13	वरुण	13	अर्क
14	अर्यमा	14	त्वाष्ट्र

15	भग	15	मरुत्

दिन और रात्रि को विभाजन करने वाले इन मुहूर्तों को अधिकांश आचार्यों ने क्षण नाम से संबोधित किया है। अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि क्षण मुहूर्त के लिये विशेष पद है।

दुर्मुहूर्त –

दिन में और रात्रि में कहे गये पन्द्रह – पन्द्रह मुहूर्तों में वार के अनुसार कुछ दुष्टमुहूर्त व दुर्मुहूर्त कहे गये हैं।

जैसे –

रवावर्यमा ब्रह्मरक्षश्च सोमे कुजे वहिनपित्र्ये बुधे चाभिजित् स्यात्।
गुरौ तोयकक्षो भृगौ ब्राह्मपित्र्ये शनावीशसार्पौ मुहूर्ता निषिद्धाः।।

दिनमान में और रात्रिमान में मुहूर्तों का विभाजन करके नाम जो दिये गये है। उनका प्रयोजन मुहूर्त चिन्तामणि में कहा गया है कि रविवार को अर्यमा नामक मुहूर्त सोमवार को ब्रह्मरक्ष, मंगलवार को वह्नि और पित्र्य, बुधवार को अभिजित्, गुरुवार को तोय और रक्ष, शुक्रवार को ब्रह्मरक्ष तथा पित्र्य, शनिवार को ईश और सर्प नामक मुहूर्त दुर्मुहूर्त्त कहे गये हैं। अतः ये सभी शुभ कर्मों में त्याज्य है। प्रायः सभी मुहूर्त ग्रन्थ जैसे – मुहूर्त चिन्तामणि, पूर्वकालमृत, रत्नमाला और संहितास्कन्ध के नारदसंहिता आदि सभी ग्रन्थों में ये दिनसम्बन्धी और रात्रि सम्बन्धी मुहूर्त कहे गये हैं।

इन्हें चार्ट द्वारा इस प्रकार सरलता से जान सकते है –

वार	**अशुभ मुहूर्त**
रविवार	अर्यमा
सोमवार	ब्रह्मरक्ष
मंगलवार	वहिन और पित्र्य,
बुधवार	अभिजित
गुरुवार	तोय और रक्ष
शुक्रवार	ब्रह्मरक्ष तथा पित्र्य
शनिवार	ईश और सर्प

1.3.1.1 मुहूर्त विभाजन का अन्य मुख्य प्रयोग

रत्नमाला के वचनों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इन मुहूर्तों में शुभ कार्यों का निर्णय भी बहुत स्पष्ट है। जैसे रत्नमाला में कथित है –

यस्मिन् धिष्ण्ये यच्च कर्मोपदिष्टं तद्दैवत्ये तच्च कर्मापि कार्यम्

कार्यों का निर्वहण व निर्णय नक्षत्रों के आधार पर ही होता है। नक्षत्र प्रकरण में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि किस नक्षत्र का क्या स्वरूप है, कौन उसका स्वामी है और उस नक्षत्र में क्या कार्य करना चाहिये। इस विषय में आचार्य कहते है कि जिस जिस नक्षत्र में जो कार्य बताया गया है उस नक्षत्र के स्वामी से सम्बन्धित मुहूर्त में उस शुभ कार्य को करना चाहिये। अर्थात् वह कालखण्ड उक्त कार्य के लिये शुभ मुहूर्त है। जिन नक्षत्रों में जो कार्य कर सकते है वह उन के देवताओं से सम्बन्धित तिथियों व करणों में भी किया जा सकता है। इन सन्दर्भ में महर्षि नारद का वचन इस प्रकार है –

यत्कार्य नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु तत्कार्यम्।
करणमुहूर्तेष्वपि तत्सिद्धिकर देवतासदृशम्।।

उदाहरण के लिये – अन्य विभिन्न योग

इसी तरह अनेक प्रकार के योग व मुहूर्त शास्त्र में बताये गये है। जैसे सर्वार्थसिद्धियोग, सिद्धियोग आदि।

अनुराधा नक्षत्र में विवाह करने के लिये कहा गया है अथवा अनुराधा नक्षत्र विवाह के लिए योग्य नक्षत्र है। उस अनुराधा नक्षत्र का स्वामी मित्र है। मित्र देवता से सम्बन्धित है दिन का तीसरा मुहूर्त्त। अतः यह तीसरा मुहूर्त्त जिसका स्वामी मित्र है, विवाह के लिए उपयुक्त मुहूर्त है। इसी प्रकार सभी नक्षत्र, उनके स्वामी और उनमें बताये गये शुभ कार्यों के आधार पर मुहूर्त्तों का निर्णय करना चाहिये। पूर्वकालामृत में भी दिन एवं रात्रि के मुहूर्त्तों के सन्दर्भ में यदुडुपो यस्मिन् क्षणे तत्फलम् कहा गया है जिसका अर्थ रत्नमाला के वचनों के समान है।

मध्यम दिनमान यदि 30 घटी का होता है तो एक मुहूर्त्त के मान दो घटी का होता है। अर्थात् एक मुहूर्त्त 48 मिनट के बराबर होता है, किन्तु ज्योतिष में वर्णित मुहूर्त्त इस काल से बंधे हुये कहीं नहीं मिलते है। उपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि यह मुहूर्त्त विभाजन भी शुभ कार्यों के लिए काल निर्णय करने की प्रकिया के अन्तर्गत ही है।

प्रत्येक शुभ कार्य की अपनी –अपनी सीमा व नियम है। यदि किसी में लग्न का ज्यादा महत्व है तो किसी में लग्न के साथ–साथ अन्य भावों का भी महत्व है। कुछ निश्चित काल पर निर्भर है तो कुछ वारादि पर आधारित है। कुछ के लिये मास मान्यता रखता है तो कुछ के लिये समय का बन्धन महत्वपूर्ण है। इन सभी का अवलोकन करने पर मुहूर्त्त किसी कार्य के निष्पादन हेतु निश्चित किये जाने वाला कालखण्ड निश्चित होता है।

1.3.1.2 अभिजित् मुहूर्त्त –

दिन का आठवॉ मुहूर्त्त अभिजित् नाम का होता है। यह सभी कार्यों के लिये शुभ मुहूर्त्त के रूप में जाना जाता है, किन्तु बुधवार को आठवॉ मुहूर्त्त दुर्मुहूर्त्त माना गया है। अतः उस दिन छोड़कर अन्य दिवसों में इस मुहूर्त्त का प्रयोग किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में भी महर्षि नारद के वचन महत्वपूर्ण है –

अष्टमो योभिजित्संज्ञः स एव कुतुपः स्मृतः।

तस्मिन् काले शुभा यात्रा विना याम्यां बुधैः स्मृता।
यात्रानृपाभिषेकावद्वाहोन्यच्च मांगल्यम्।।
सर्वं शुभदं ज्ञेयं मुहूर्त्तेभिजित्संज्ञे।।

1.3.1.3 विजय मुहूर्त्त

अभिजित् मुहूर्त्त की भॉति विजय संज्ञक मुहूर्त्त भी होता है। किन्तु दिन के व रात्रि के पन्द्रह मुहूर्त्तों के अन्तर्गत इसकी गणना नहीं होती। गर्गाचार्य कहते है –

ईषत्सन्ध्यामतिक्रान्तः किंचिदुद्भिन्नतारकः ।
विजयो नाम योगोऽसौ सर्वकार्यार्थसाधकः।।

सन्ध्या के पूर्ण होने के पश्चात् जब तारे हल्के से उदित हुये हो रहे होते हैं, उस समय को 'विजय योग' कहते है। यह विजयदशमी के दिन निर्णय वाले विजया मुहूर्त्त से भिन्न है।

बोध प्रश्न – 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें –

1. अनुराधा नक्षत्र का स्वामी .... है।
2. 30 घटी के दिनमान में एक मुहूर्त का मान .... होता है।
3. शनिवार को .... मुहूर्त अशुभ माने गये है।
4. दिन में मुहूर्तों की संख्या .... होती है।
5. बुधवार को ....मुहूर्त अशुभ कहा गया है।

1.3.1.4 दिनमान व रात्रिमान

मुहूर्त के सभी आयामों का अवलोकन करते हुये सन्दर्भानुसार हम यहाँ दिनमान और रात्रिमान के बारे में पुनः संस्मरण करते है।

सूर्य जितना समय हमें दिखायी देता है उतने समय को दिन कहते है। और इसके अलावा एक अहोरात्र में जो समय शेष बच जाता है वह रात्रिमान कहलाता है। भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में इस बात को जनसामान्य को समझाने की रीति में लिखा है। दिनेश के दर्शन को दिन कहते है और तमोहन्ता का अदर्शन ही रात्रि कहलाती है।

दिनं दिनेशस्य यतोत्र दर्शने तमी तमोहन्तुरदर्शने सति

दिनमान व मुहूर्त सार्वत्रिक नहीं

दिनमान सार्वत्रिक नहीं रहता है। अर्थात् सभी स्थानों में दिन व रात्रि एक जैसे नहीं होते है। इनका मान भी सभी जगहों में एक जैसा नहीं होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मुहूर्त का मान और समय भी सभी प्रान्तों व स्थानों में एक जैसा नहीं होता है।

इसको हम और सरल तरीके से समझाने की कोशिश कर सकते है। समय दिशा के आधार पर परिवर्तन शील होता है। हम जैसे जैसे पूरब की ओर चलते है वैसे वैसे समय बढ़ता है और पश्चिम की ओर चलने पर समय घटता है। दुनिया में जो पूर्वभाग में

प्रदेश है वहाँ पर पहले सूर्योदय होता है। हम जहाँ पर स्थित है वहाँ से पूर्व में स्थित सभी स्थानों में सूर्योदय हमारे स्थान से पहले हो जाता है। इसी तरह हम जिस स्थान में है वहाँ से पश्चिम में स्थित सभी स्थानों में सूर्योदय बाद में होता है।

इतना ही नहीं। सूर्योदय तक का जो समय है वह भी सभी स्थानों में एक जैसा नहीं होता है। जैसा हम जानते है कि निरक्ष देश में दिनमान हमेशा लगभग बारह घंटे का होता है तो ध्रुवस्थान में दिनमान छः महीनों का होता है। इसी तरह इनके बीच के स्थानों में कहीं 14 घंटे का दिन है तो कहीं 23 घंटे तक का भी दिन होता है। और यह अन्तर गोल भेद से विपरीत भी होता है। दिनमान सभी जगह समान न होने के कारण उससे साधित मुहूर्त भी सर्वत्र समान नहीं रहता है।

अब हम एक उदाहरण के आधार पर दिन में व रात्रि में मुहूर्त के प्रमाण को जानने का प्रयास करते है।

जैसे किसी स्थान पर सूर्योदय प्रातः 6 बजकर 40 मिनट पर एवं सूर्यास्त शाम 5 बजकर 25 मिनट पर है। तो वहां पर दिनमान हुआ 17.25–6.40=10.45 यह मान घंटा मिनट में है इसे घटी पल में परिवर्तन करने पर 26 घटी 54 पल हुआ। इस दिनमान को 15 से भाग देने पर एक एक भाग का मान ...... हुआ। इस पन्द्रहवें भाग को सूर्योदय में जोड़ने पर पहले मुहूर्त का समाप्ति काल प्राप्त होता है। पहले मुहूर्त के समाप्ति काल में पुनः इस पन्द्रहवें भाग को जोड़ने पर दूसरे का अन्त समय, इसमें पुनः उस अंश को जोड़ने पर तीसरे का अन्य समय इस प्रकार सभी मुहूर्तों का मान प्राप्त होता है।

सूर्योदय से सूर्यास्त तक प्राप्त दिनमान को 24 घंटे में से घटाने पर रात्रिमान आ जाता है। प्राप्त घटयात्मक दिनमान को 60 में से घटाने पर सीधा घटी पल में रात्रिमान प्राप्त हो जाता है। इसी को दिनमान जैसे ही भाग करके सूर्यास्त में जोड़ने पर क्रमशः 15 रात्रि के मुहूर्त प्राप्त होते है।

1.3.2 अन्य प्रयोग

उपर्युक्त दोनों व्यवहारों के अतिरिक्त मुहूर्त शब्द का व्यवहार अमूर्त कालवर्णन से भी हुआ है। अमर कोश में यह वर्णन प्राप्त है।

अष्टादशनिमेषास्त काष्ठा त्रिशत्तु ता कला।
तास्यु त्रिशत्क्षणस्ते तु मुहूर्तो द्वादशास्त्रियाम्।।

18 निमोषों की एक काष्ठा, 30 काष्ठों की एक कला, 30 कलाओं का एक क्षण, 12 क्षणों का एक मुहूर्त। किन्तु यह काल विशेष अमूर्त काल का अभित्रांग ही लगता है न तु शुभ कार्य निमित्त वर्णित कालखण्ड।

1.4 मुहूर्त का प्रायोगिक स्वरूप व मुहूर्त विचार

यज्ञ निर्वहन से लेकर सामान्य कार्य करने तक मुहूर्त आवश्यक होता है। प्रत्येक मुहूर्त का स्वरूप निश्चित है। यह स्वरूप ज्योतिष के मुहूर्त ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से वर्णित है। इसी में षोडश संस्कार भी शामिल है। उनके प्रायोगिक स्वरूप की रूपरेखा व उनके

विचार करने का स्वरूप यहाँ प्रस्तुत है। आगे की इकाइयों में संस्कार व अनेक प्रकार के मुहूर्तों का विस्तृत विवरण जानने को मिलेगा।

1.4.1 नैमित्तिक प्रयोग

इसके भी दो प्रमुख भेद है। एक ब्राह्म संस्कारों के अन्तर्गत मुहूर्त और दूसरा व्यक्तिगत जीवन के अनेक प्रकार के कार्यों से सम्बन्धित है।

1.4.1.1 ब्राह्म संस्कार से सम्बन्धित

संस्कार दो प्रकार के नामों से होते है दैव एवं ब्राह्म। यज्ञादि दैवसंस्कार और गर्भाधान पुसवन जातकर्म आदि ब्राह्म संस्कार है। इनका विस्तृत वर्णन आगे संस्कार खण्ड में प्रस्तुत है। गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक ये संस्कार सोलह होते हैं। कुछ गृह्म सूत्रों में अन्त्येष्टि सोलहवें संस्कार के रूप में स्वीकृत है तो कुछ में नहीं। इनका भी विस्तृत जानकारी हम आगे प्राप्त करेंगे। इन सभी संस्कारों का काल निश्चित है। उस काल का स्वरूप भी निश्चित है। किसी भी कार्य के लिये उपयुक्त नक्षत्र, वार, लग्न, लग्न से ग्रहों की शुद्धि आदि अनेक विषयों का विचार करना आवश्यक है। संक्षेप में यदि कहें तो ये नक्षत्र वार आदि सभी विहित विषयों को हम मुहूर्त के ही अंग मान सकते है। जैसे किसी भी एक अंग से हीन होने पर हम व्यक्ति को विकलांग कहते है वैसे ही इन अंगों में से किसी भी एक अंग के अशुभ होने पर उस मुहूर्त के दुर्बल व निर्वीर्य होने की सम्भावना पूर्ण रूप से बन जाती है।

अनेक बार वार नक्षत्रादि प्राप्त होते है तो उपयुक्त लग्न प्राप्त नहीं होती है। और बहुत बार लग्नादि प्राप्त होते है तो वारादि प्राप्त नहीं होते। इन सभी उपयुक्त विषयों से युक्त योग्य समय ही उस कार्य को करने का उपयुक्त समय है जिसे हम मुहूर्त के नाम से जानते है व व्यवहार करते है।

यद्यपि हम आगे की इकाई में संस्कारों के बारे में विस्तृत जानकरी प्राप्त करेंगे तथापि सन्दर्भानुसार वहाँ के कुछ मुहूर्तों का सामान्य परिचय यहाँ पर लेते है जिससे विषय समझने का अवसर मिले। इन संस्कारों के अन्तर्गत आने वाले कुछ मुहूर्तों का विवरण इस प्रकार है।

1. गर्भाधान मुहूर्त –गर्भाधान या निषेक षोडशसंस्कारों में प्रथम संस्कार है। इस कार्य के लिये उपयुक्त समय का निर्णय करना ही इस मुहूर्त विचार का मुख्य आशय है। मानव जीवन का प्रारम्भ जन्म से ही होता है। जन्म कालिक ग्रह जातक के पूरे जीवन को प्रभावित करते है। अर्थात् सत्संतान, ग्रहों के अनुकूल प्रभाव से युक्त सन्तान चाहिये तो निस्संकोच गर्भाधान का मुहूर्त भी उसके अनुरूप होना चाहिये। ज्योतिष के मुहूर्त ग्रन्थों का अध्ययन करने पर इस मुहूर्त का विचार मिलता है। किन्तु फलित ज्योतिष के ग्रन्थ जैसे बृहज्जताक आदि का अवलोकन करें तो वहाँ पर एक अध्याय प्राप्त होता है जिसका नाम निषेकाध्याय है। इस अध्याय में ग्रहों की किस प्रकार की स्थिति से किस प्रकार की सन्तान होती है इसका विवरण उपलब्ध है। इसी प्रकार ग्रहण के समय में यदि पति और पत्नी

मिलते है तो विकलांग सन्तान पैदा होती है। यह भी शास्त्र का वचन है। तो इस प्रकार के सभी ग्राह्म एवं अग्राह्म विषयों का वर्णन ही गर्भाधान मुहूर्त में संकलित किया हुआ है।

इस विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि समय के अन्दर अदृश्य अनेक शुभाशुभ भाग होते है और वे भाग प्रत्येक प्रकार के कार्य के ऊपर भिन्न भिन्न रूप से प्रभाव डालते है। एक शब्द में कहा जाय तो किसी भी कार्य का पूर्ण अनुकूल फल प्राप्त करने के लिये उपयुक्त समय का ही मुहूर्त के नाम से व्यवहार है।

इसी तरह नीचे दिये गये सभी मुहूर्तों के विषय में भी अभीष्ट व अनभीष्ट के आधार पर समय व समय की लग्न, वार तिथि इत्यादि अंग निश्चित किये गये हैं।

इसी क्रम में षोडश संस्कार है जिनमें गर्भाधान को एक उदाहरण के रूप में यहां प्रस्तुत किया गया है। इसी तरह अन्य संस्कारों के विषय में भी जानना है। वे अन्य संस्कार है पुंसवन, सीमन्तोत्रयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अत्रप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह और अन्त्येष्टि। इनमें से अन्त्येष्टि को छोड़कर सभी संस्कारों के लिये मुहूर्त का निर्णय किया जाता है। अन्त्येष्टि के सन्दर्भ में भी देहावसान के समय के अनुसार आगे के कार्यक्रमों का निर्णय एवं शुभाशुभ का विचार किया जाता है। जैसे देहावसान समय के नक्षत्र के विचार से पंचक आदि का विचार करना और उनके अनुरूप शान्ति आदि का निर्णय करना।

बोध प्रश्न – 2

1. गर्भाधान संस्कार शुभ समय में ही क्यों करने चाहिये?
2. अशुभ समय में किये गये गर्भाधान संस्कार का फल किस प्रकार का हो सकता है?
3. मुहूर्त निर्णय कठिनतर क्यों होता है?
4. मुख्य रूप से मुहूर्त के कितने अंग होते है?
5. मुहूर्त कमजोर कब हो जाता है?
6. दिनमान इसे कहते है –
   क) सूर्योदय से सूर्यास्त तक के समय को
   ख) सूर्यास्त से सूर्योदय तक के समय को
7. दिनमान सभी जगहों में
   क) एक जैसे होता है।
   ख) भिन्न प्रकार का होता है।
8. पूरब से पश्चिम को जाने पर–
   क) समय बढ़ता है।
   ख) समय घटता है।
9. पश्चिम से पूरब को जाने पर–
   क) समय बढ़ता है।

ख) समय घटता है।

10. सूर्योदय–

क) सभी स्थानों में एक साथ होता है।

ख) हर स्थान में अलग अलग होता है।

1.4.1.2 दैनन्दिन कार्यों से सम्बन्धित

किसी कार्य विशेष को प्रारम्भ करना है। किसी वस्तु का कय करना है। कहीं जाना है। किसी से मिलना है। किसी से वार्ता करनी है। कोई प्रस्ताव रखना है। स्थित सम्पत्ति अपने नाम करानी है। घर का निर्माण कार्य प्रारम्भ करना है। गाय खरीदनी है। भूमि जोतनी है। कुआ खोदना है। फसल काटनी है। फसल का रोपण करना है। इस तरह दैनिक जीवन में असंख्य कार्य है जो अपनी इच्छा से जब चाहे तब नहीं कर सकते है। ऐसा करने पर अभीष्ट प्राप्ति नहीं होती है। इन सभी कार्यों में फल को प्राप्त करने के लिये इनको एक निश्चित समय में करना आवश्यक होता है। उसी समय की रूपरेखा मुहूर्त ग्रन्थों में वर्णित है।

नक्षत्रों का अनेक प्रकार का विभाजन और उनके अनेक प्रकार के लक्षणों के बारे में पूर्व में ही जानकारी प्राप्त कर चुके है। तथापि अति संक्षेप में उसका परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि अध्ययन और सरल हो सकें। नक्षत्रों का चर स्थिर ध्रुव आदि विभाजन किया गया है। इसी प्रकार नक्षत्रों के स्वामियों का भी निर्णय किया गया है। कुछ अन्ध नक्षत्र हैं तो कुछ पंगु है। कुछ जलतत्व के है तो कुछ अग्नि तत्व से युक्त है। नक्षत्रों का यह विवरण एक प्राचीन वैज्ञानिक संरचना का द्योतक है। नक्षत्र सभी वस्तुओं व प्राणियों को प्रभावित करते है। ग्रहों का गुण व अवगुण भी विभिन्न नक्षत्रों में उनकी स्थिति पर ही निर्भर होता है। इन नक्षत्रों में संचार करने वाले ग्रहों की गति से ही कालगणना की जाती है।

नक्षत्रों के इन स्वभावों के अनुसार तथा उनमें चरने वाले ग्रहों से उत्पन्न कालावयवों के आधार पर विभिन्न प्रकार के कार्यों का विहित समय निश्चित किया गया है। हलप्रववहन, बीजवापन से लेकर यह कार्य यात्रादि विचार तक अनेक प्रकार के छोटे से लेकर बड़े कार्यों का निर्णय इनके आधार पर किया गया है। अग्रिम पाठों में इन मुहूर्तों का विस्तृत विवरण दिया गया है अतः यहां पर इस परिचय के साथ ही इस प्रसंग को विराम देते है।

प्रसंगवश कुछ कार्यों का नाम यहां प्रस्तुत है–

1	लतापादपारोण	2	राजदर्शन
3	गोक्रयविक्रय	4	पशुरक्षा
5	औषधसेवन	6	सूचीकर्म
7	विपणि	8	विक्रय

9	क्रय	10	गज और घोड़ों का क्रय विक्रय
11	भूषाघटन	12	मुदापातन
13	वस्त्रशालन	14	खड्गादिधारण
15	शय्या	16	ज्लाशयखनन
17	नृत्यारम्भ	18	द्रव्यप्रयोग
19	ऋणग्रहण	20	ळलप्रवहण
21	बीजोप्ति	22	शिरामोक्षण
23	धान्यच्छेदन	24	कणमर्दन
25	सस्यरोपन	26	शान्तिक पौष्टक कर्म
27	होमाहुति	28	नवात्रभक्षण
29	नौकाघटन	30	वीरसाधन, अभिचार
31	रोगनिर्मुक्तस्नान	32	शिल्पविद्या
33	सन्धान	34	परीक्षा
35	काष्ठगोमयादिग्रहण		

ये सभी जीवन के कुछ सामान्य कार्य है। इनमें वास्तु सम्बन्धि और संस्कार सम्बन्धि कार्य शामिल नहीं है। संस्कारों के अन्तर्गत कार्यों का विवरण पूर्व में ही दिया जा चुका है। वास्तु में भूमिचयन से लेकर गृहप्रवेश तक सभी कार्य शुभकाल में ही सम्पन्न किये जाते है।

1.4.1.3 समिष्टि प्रयोग

व्यापक रूप से काल निर्णय का प्रयोग तिथि संक्रान्ति पर्व त्योहार आदि के निर्णय में किया जाता है जो पंचांग निर्माणादि कार्य में महत्वपूर्ण स्थान को प्राप्त करता है। इन निर्णयों की संरचना ही निर्दोष काल के लिये प्रयास को प्रतिबिम्बित करता है। जैसे तिथि निर्णय में कुछ तिथियों का मिलना शुभ है तो कुछ का मिलना अशुभ माना गया है। ज्योतिर्निबन्धकार के अनुसार–

युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः। रुद्रेण द्वादशी युक्त चतुर्दश्या च पूर्णिमा।।
प्रतिपद्यप्यमावास्या तिथेर्युग्मं महाफलम्। एतद्व्यस्त महादोषं हन्ति पुण्यं पुराकृतम।।

द्वितीया तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, एकादशी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, प्रतिपदा अमावस्या का योग फलदायी होता है। एक तिथि दूसरे तिथि को मिलना तिथि वेध के नाम से जाना जाता है। जो जिससे मिलता है उसे विद्ध तिथि कहते है। तिथि विद्ध यदि उक्त जोड़ियों के अतिरिक्त होता है तो उसे शुभ नहीं माना जाता है। फलतः उक्त तिथि में कर्त्तव्य कार्य को विद्ध रहित दिन में किया जाता है। किन्तु इनमें अपवाद भी है जिसका विवरण धर्मशास्त्र ग्रन्थों में प्राप्त कर सकते है।

इन वचनों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि सभी तिथियों के साथ युक्त होकर पुण्य व निर्दोष काल को उत्पन्न नहीं कर सकते है। यह निर्णय भी शुभ काल का ही निर्णय है। अतः यह भी मुहूर्त प्रसंग का ही भाग है।

1.5 मुहूर्तों की आवश्यकता

किसी भी कार्य को करने के लिये एक विशेष समय निकालने की क्या आवश्यकता है हर कार्य के लिये यह शुभ समय अलग अलग कैसे है? आखिर काल में इस प्रकार की विलक्षणता व विभिन्नता क्या है? मुहूर्त निर्णय के परिप्रेक्ष्य में इन प्रश्नों का उत्तर जानना अत्यन्त आवश्यक है।

1.5.1 विभिन्न आचार्य क्या कहते है –

स्वभावदेव कालोऽयं शुभशुभ समन्वितः।
अनादि निधतः सर्वो न निर्दोषो न निर्गुणः।।
तस्मान्निर्दोषकालार्थे मुहूर्तमधिगच्छताम्।
कालः शुभो गुणैर्युक्तो बलवद्भिः शुभप्रदः।। संग्रहशिरोमणि

अपने स्वभाव से ही यह काल शुभ और अशुभ लक्षणों से युक्त है। सब कुछ अनादि से प्रवर्तमान है और कुछ भी निर्दोष व निर्गुण नहीं है। इसीलिये निर्दोष काल के लिये मुहूर्त को आश्रित करना है जो शुभ गुणों से युक्त है और शुभ प्रद है। संग्रहशिरोमणि में–

ग्रहणग्रहसंक्रान्तियज्ञाध्ययनकर्मणाम्।
प्रयोजनं व्रतोद्वाहक्रियाणां कालनिर्णयः।।

ग्रहणसाधन, ग्रहसाधन, संक्रान्ति निर्णय और यज्ञादि कर्मों का निर्वहण ये सभी कार्य व्रत विवाह आदि कार्यों के लिये उपयुक्त कालनिर्णय करने के लिये है। अर्थात् शुभ कर्मों के समय निर्णय करने के पक्ष के अभाव में उपर्युक्त सभी कार्य निष्फल है। संग्रहशिरोमणि में –

शुभक्षणक्रियारम्भजनिताः पर्वसम्भवा।
सम्पदस्सर्वलोकानां ज्योतिस्तत्र प्रयोजनम्।

शुभक्षण अर्थात् शुभ मुहूर्त में आरम्भ किये गये सभी कार्य सभी के लिये सर्व विध सम्पत्ति के कारक होते है और इस प्रकार सर्वविध सम्पत्ति प्राप्त करना ही ज्योतिष शास्त्र का प्रयोजन है। सिद्धान्सशिरोमणि में –

वैदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ताः यज्ञाः प्रोक्तास्तेतु कालाश्रयेण
शास्त्रादस्मात्कालबोधो यतः स्याद्वेदांगत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात्।।

वेदों का अन्तिम लक्ष्य यज्ञादि का सम्पादन ही है। यज्ञ कालाश्रित होते है। अर्थात यज्ञ समय के अनुरूप ही अनुष्ठित होते है। काल का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र से ही होता है। यही ज्योतिष की वेदांग का स्थान देने का महत्वपूर्ण कारण है। चतुर्विशत्याचार्य के मत में–

गणितात्सिध्यते कालः काले तिष्ठन्ति देवताः।
वरमेकाहुतिः काले नाकाले कोटिसंम्मिताः।।
अनातानागते काले दानहोमजपादिकम्।
ऊषरे वापितं बींज तद्वद्भवति निष्फलम्।।

काल की सिद्धि गणित से होती है। काल में देवता होते है। सही काल में दी गई एक ही आहुति देवताओं को प्रसन्न करने के लिये पर्याप्त है। अकाल में करोड़ आहुतियां

देने का भी कोई प्रयोजन नहीं है। अनागत काल में किये गये कार्य ऊपर भूमि में वापित बीजों के समान निष्फल होते है।

1.5.2 आचार्य वचनों का निष्कर्ष

ज्योतिष के आचार्यो के वचनों को ध्यान से देखने पर यह बात सिद्ध हो जाती है कि समय सर्वदा एक जैसा नहीं हो सकता है। यही एक कारण है वेद में भी नक्षत्रों को देव नक्षत्र दैत्य नक्षत्र आदि में विभाजन किया गया। पुण्य नक्षत्रों में ही शुभ कार्य करने का संकेत वेदों में है। यह स्पष्ट भी है कि वैदिक कर्माचरण के लिये अथवा वेदोक्त वचनों के आधार पर ही शास्त्रों का निर्माण हुआ। अतः शुभ कार्यों को व समस्त कार्यों को सम्पादित करने के लिये अनुकूल फल को देनेवाले समय का निर्णय करना अत्यन्त आवश्यक है।

1.5.3 मुहूर्तो की आवश्यकता

कार्य को पूरा करने की गुणों को समृद्ध करते हुये अनिष्टों को दूर करने की क्षमता को जो समय व काल का भाग रखता है वही समय उस कार्य के लिये मुहूर्त माना जाता है। इस बात का विवरण हम अब तक देख चुके है।

मुहूर्त क्या होता है इसके बारे में समझने का प्रयास अब तक हम अनेक प्रकार से किये हुये है। यह भी स्पष्ट हो गया कि मुहूर्त कार्य में सफलता दिलाने की और अनिष्ट को दूर रखने की क्षमता रखता है। यही भावना अथवा यही अर्थ मुहूर्त की आवश्यकता को स्पष्ट करती है। तथापि कुछ उदाहरणों के आधार पर इसे और स्पष्ट रूप से समझने का प्रयास करते है।

1.5.3.1 प्रथम उदाहरण

विवाहमुहूर्त के सन्दर्भ में आचार्यों का वर्णन प्राप्त होता है कि विवाहलग्न से (भार्या) पत्नी का शील शुभ हो जाता है और शुभ शील से युक्त भार्या त्रिवर्गों के साधन में मुख्य भूमिका निभाती है। त्रिवर्ग से तात्पर्य है धर्म अर्थ और काम नामक तीन पुरुषार्थ। अर्थात् अपनी कुण्डली के आधार पर जिसका शील शुभ नहीं हो सकता है वह भी विवाह लग्न के शुभ होने पर शुभ शीलयुता हो जाती है। अर्थात् समय का वह निश्चित कालखण्ड, जो मुहूर्त के नाम से जाना जाता है, ग्रहों के प्रभाव को और कर्म विपाक की राह को बदल सकता है।

1.5.3.2 द्वितीय उदाहरण

उपनयन के सन्दर्भ में भी इस प्रकार की चर्चा देखने को मिलती है कि किस समय में जातक उपनीत होने पर वेदबाह्य होगा और किस समय में करने पर विद्वान आदि। जातक के जन्मकालिक ग्रह एवं पंचम नवम आदि भावों से विद्या का विचार किया जाता है। किन्तु मुहूर्त के प्रभाव के कारण जातक चक्र में विद्या योग से यंत वटु भी वेदबाह्य व विद्या हीन हो सकता है।

इसी तरह अन्नप्राशन मुहूर्त के सन्दर्भ में लग्नगत सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों का निषेध किया गया है। सूर्य के अन्नप्राशनमुहूर्त लग्न में रहने पर जातक कुष्ठी, चन्द्रमा के रहने पर

भिक्षुक आदि फल कहे गये है। इन सभी बातों को ध्यान से मनन करने पर इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचते है कि जन्मोत्थ फल को भी मुहूर्त परिवर्तित कर (बदल) सकते है।

जन्मोत्थ शुभाशुभ का सम्वग् विवेचन करने के बाद अशुभ फल से युत क्षेत्रों से सम्बन्धित कार्यों को शुभ एवं बलयुत मुहूर्त में प्रारम्भ करने पर वह जन्म से प्राप्त अशुभ हो तो भी शुभ फल प्राप्त होता है। इस बात को एक साधारण उदाहरण से समझ सकते है। ऊपर दिये गये उपनयन से सम्बन्धित उदाहरण को दूसरे आयाम से देखने का प्रयास करें। मान लिया जाय कि जातक का पंचम, नवम, पंचमेश और बृहस्पति के दुर्बल होने के कारण जातक की विद्याशून्य होने का योग है। किन्तु उस का उपनयन संस्कार ऐसे मुहूर्त में किया जाय जो विद्या की दृष्टि से पूर्ण रूप से बलयुत हो, तो अवश्य ही उपनीत वटु विद्या से युत होगा।

प्रत्येक सन्दर्भ में और प्रत्येक मुहूर्त में प्रायः इस प्रकार का महर्षिवचन प्राप्त है और सभी में भाग्यफल को परिवर्तित करने के आयाम निगूढ़ है। यही विचार मुहूर्त की आवश्यकता और उसकी उत्कृष्टता को विशद कर देता है।

बोध प्रश्न – 3

1. संस्कार कितने प्रकार के होते है?
2. नक्षत्र चरादि कितने प्रकार के भागों में बांटे गये है?
3. अन्ध नक्षत्र कौन कौन है?
4. ब्राह्म संस्कार कितने माने गये है?
5. दैव संस्कार किसे कहते है?

सही/ गलत का चयन करें –

6. काल निर्दोष नहीं होता है।
   सही गलत
7. सकाल में दी गई एक आहुति भी करोड़ आहुतियों के बराबर है
   सही गलत
8. अनागत काल में किये गये कार्य सफल होते है।
   सही गलत
9. निर्दोष काल के लिये ही मुहूर्त का निर्णय होता है।
   सही गलत
10. मुहूर्त उस समय को कहते है जो कालगत सभी प्रकार के दोषों से मुक्त होता है
    सही गलत
11. अनुकूल फल को देने वाला समय ही मुहूर्त कहा जाता है
    सही गलत
12. धर्म अर्थ और काम को त्रिवर्ग कहते है।
    सही गलत

13. विवाह लग्न के प्रभाव से भार्या शुभशीलयुक्त होती है।
    सही गलत
14. उपनयन मुहूर्त जन्मतः प्राप्त ग्रहप्रभाव को नहीं परिवर्तित कर सकता है।
    सही गलत
15. जन्मसिद्ध ग्रहफल को परिवर्तित करना भी मुहूर्त निर्णय का एक उद्देश्य हो सकता है।
    सही गलत
16. मुहूर्त निर्णय की आवश्यकता कहां होती है?
17. जन्मकालिक ग्रहों के फल को कैसे बदला जा सकता है?
18. मुहूर्त के अभाव में जन्मकालिक शुभफल कैसे बिगड़ सकता है?
19. दैनन्दिन जीवन के कुछ ऐसे कार्यों का उल्लेख कीजिये जिन के लिये मुहूर्त का निर्णय अनिवार्य होता है?
20. दैनन्दिन कार्य मुहूर्त की अपेक्षा किस स्तर तक रखते है।

1.6 सारांश

इस खण्ड के अध्ययन से आप यह जान चुके है कि समय सदा एक जैसा नहीं होता है। हर कार्य को जब चाहे तब नहीं कर सकते। मुहूर्त ग्रन्थों में विभिन्न नक्षत्रों में किये जाने वाले कार्यों का विशद वर्णन है। जन्म से लेकर मरण तक किये जाने वाले सभी प्रकार के संस्कार, दैनन्दिन जीवन में किये जाने वाले सभी क्रय विक्रय यात्रा आदि सभी कार्यों के लिये उपयुक्त समय का स्वरूप मुहूर्त ग्रन्थों में विशद रूप से वर्णित है। उन सभी विषयों को जानने से पहले कार्य करने हेतु समय का विचार करने की क्या आवश्यकता है? और उसका क्या स्वरूप है? आदि प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर जानना भी आवश्यक है।

उसी क्रम में आप इस इकाई में कार्य के लिये अनुकूल समय, जिसे मुहूर्त नाम से जानते है, का स्वरूप एवं आवश्यकता के बारे में विभिन्न आचार्यों के वचनों के साथ अध्ययन किये है। काल निर्दोष नहीं होता है। कार्य दोष युक्त समय में सफल नहीं होता है। निर्दोष काल ही मुहूर्त कहा जाता है। अतः प्रत्येक कार्य के लिये मुहूर्त का निर्णय करना आवश्यक है। इसी प्रकार जन्मकालिक ग्रह स्थिति से जो जो अनिष्ट फल हो सकते है उन अनिष्ट फलों को भी सही समय में कार्य को प्रारम्भ करके दूर कर सकते है। इस जानकारी को भी स्पष्ट रूप से इस इकाई में हम अध्ययन किये है।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1 का उत्तर

1. मित्र
2. 48 मिनट व 2 घटी
3. ईश और सर्प
4. 15
5. अभिजित

बोध प्रश्न – 2 का उत्तर

1. क) सूर्योदय से सूर्यास्त तक के समय को
2. ख) विभिन्न प्रकार का होता है।
3. ख) समय घटता है।
4. ख) समय बढ़ता है।
5. ख) हर स्थान में अलग अलग होता है।

1. सत्सन्तान प्राप्ति हेतु
2. शुभ समय में संस्कार नहीं करने पर गर्भधारण नहीं हो पाना, अपंग बच्चे पैदा होना, गर्भपात होना आदि होने की पूर्ण सम्भावना होती है।
3. मुहूर्त के सभी अंग सर्वदा एक साथ पुष्ट नहीं हो पाते है। मुहूर्त निर्णय में सबसे बाधक यही होता है।
4. 10 अंग

विवरण – तिथि वार नक्षत्र योग करण नामक पांच, पंचांग के जो मुख्य अंग है, मुहूर्त के भी मुख्य अंग होते ही है? उनके साथ साथ फल पूर्ण रूप से लग्नाधीन होने के कारण लग्न, लग्न ग्रहाधीन होने के कारण ग्रह स्थिति, स्थानशुऋि, दोषादोषनिरुपण एवं समय शुद्धि मुहूर्त के मुख्य अंग होते है। समय शुद्धि का आशय काल से है। शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, मास, उत्तरायण और दक्षिणायन आदि कालभेद भी अनेक प्रकार के मुहूर्तों में महत्वपूर्ण भूमिकप निभाते है।

5. मुहूर्त के विभिन्न अंग होते है। ये सभी युगपत शुभ व बली हमेशा नही मिलते है। इनमें से किसी भी अंग के दुर्बल होने पर मुहूर्त निर्वीर्य व दुर्बल हो जाता है।

बोध प्रश्न – 3 का उत्तर –

1. संस्कार मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है। यज्ञादिशुभ कार्य दैवसंस्कारों के अन्तर्गत, गर्भाधान जातकर्मादि संस्कार ब्राह्म संस्कारों के अन्तर्गत आते है।
2. 7
3. रोहिणी, पुष्प, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा, रेवती नक्षत्र अन्ध नक्षत्र कहे गये है।

विवरण – नक्षत्र चार प्रकार की आंखों के बताये गये है। वे अन्धाक्ष, मन्दाक्ष, मध्यक्ष, स्वक्ष नाम से प्रसिद्ध है। एक बात स्पष्ट है कि नक्षत्र ही मुहूर्त निर्णय में मुख्य है। अतः नक्षत्रों के सम्पूर्ण विवरण को जानना अनिवार्य है।

4. गर्भाधानादि संस्कार ब्राह्मसंस्कार माने जाते है। ये मुख्य रूप से सोलह है। किन्तु विभिन्न गुह्मसूत्रों में उनका विवरण अलग अलग है। कुछ गृह्मसूत्रों में ये सरकार 48 तक भी माने गये है।

5. वेदोद्दिष्ट यज्ञादि संस्कार दैव संस्कार माने गये है।

सही/ गलत प्रश्नों के उत्तर –

6. सही	7. सही	8. गलत	9. सही	10. सही
11. सही	12. सही	13. सही	14. गलत	15. सही

अन्य प्रश्नों के उत्तर

16. सभी कार्यों में
17. सबल मुहूर्त से
18. दोषयुक्त काल में प्रारम्भ किया गया कार्य प्रारब्ध को भी नाश कर सकते है।
19. कोई ऐसे कार्य नहीं है जो काल निर्णय के बिना हो सकते है।
20. कार्य की सफलता प्रारम्भ समय के ऊपर पूर्ण रूप से आश्रित है। अतः प्रत्येक कार्य मुहूर्त की पूर्ण अपेक्षा रखता है।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थकर्ता/सम्पादक	ग्रन्थ का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
रामदैवज्ञ	मुहूर्तचिन्तामणि	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी	सन् 2000
कालिदास	पूर्वकालमृतम्	चौखम्भा सुरभारतीय प्रकाशन वाराणसी	सन् 2006
श्री शिवराज	ज्योतिर्निबन्ध	आनन्दाश्रममुद्रणालय, पुण्यपतन	सन् 1919
विष्णुभट्ट	पुरुषार्थचिन्तामणि	निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई	सन् 1927
सरयू प्रसाद द्विवेदी	संग्रहशिरोमणि	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय	
कमलाकरभट्ट	निर्णयसिन्धु	खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई	सन् 2010
काशीनाथ उपाध्याय	धर्मसिन्धु	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी	सन् 2007

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मुहूर्त विचार की आवश्यकता लिखिये।
2. मुहूर्त निर्णय में ध्यान देने योग्य विषयों का वर्णन कीजिये।
3. मुहूर्त के विभिन्न स्वरुपों का वर्णन प्रस्तुत कीजिये।

इकाई – 2 षोडश संस्कारों का परिचय एवं भौतिक जीवन में – उनका योगदान

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 षोडश संस्कारों का परिचय

2.4 संस्कारों का भौतिक जीवन में योगदान

2.5 सारांश

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 सहायक पाठ्यसामग्री

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई डीपीजे–17 पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है–''षोडश संस्कारों का परिचय एवं भौतिक जीवन में उनका योगदान''। इससे पूर्व की इकाई में आपने ज्योतिष शास्त्रोक्त मुहूर्त्तों का अध्ययन कर लिया है। अब आप संस्कारों के बारें में अध्ययन करने जा रहे हैं।

संस्कार भारतीय संस्कृति का मेरूदण्ड है। संस्कार के अभाव में मानव जीवन सर्वथा निरर्थक है। संस्कार रूपी बीज से मानव–सभ्यता एवं उसकी संस्कृति पुष्पवित एवं पल्लवित होती है।

इस इकाई में आप संस्कार का परिचय महत्व एवं उसके योगदान को भली – भॉति समझ लेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् –

1. संस्कार को सम्यक् रूप से समझ लेंगे।
2. षोडश संस्कार कौन–कौन से है, इसका ज्ञान हो जायेगा।
3. संस्कारों का मानव जीवन में महत्व को भली–भॉति समझ लेंगे।
4. संस्कारों का भौतिक जीवन में क्या योगदान का अवबोधन हो जायेगा।

2.3 षोडश संस्कारों का परिचय

सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से संस्कार शब्द का निर्माण करण अर्थ में हुआ है। जिसका अर्थ है – विधिपूर्वक करना। भारतीय सनातन परम्परा में संस्कार का अर्थ है –शुद्धिकरण। मन, वाणी एवं शरीर तीनों प्रकार से विशुद्ध होने वाली शुद्धिकरण की प्रक्रिया का नाम 'संस्कार' है। ये हमें हमारे ऋषि एवं मुनियों से विरासत में मिली है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में व्यक्ति निर्माण की बात कही गई है। इस कार्य में संस्कार का मुख्य प्रयोजन है। संस्कार के बिना व्यक्ति निर्माण की बात सम्भव ही नहीं । व्यक्ति निर्माण से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो अपने परिवार का, समाज का, स्वदेश का कुशल नेतृत्व करते हुये धर्म और आदर्श की मर्यादा स्थापपित करे। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना व अपने देश की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हो। ऐसे आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण संस्कार के बिना असम्भव है।

संस्कार शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है । संस्कृत वाङ्मय में इसका प्रयोग शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण, सौजन्य पूर्णता, व्याकरण संबंधी शुद्धि, संस्करण, परिष्करण, शोभा आभूषण, प्रभाव, स्वरूप, स्वभाव, क्रिया, फलशक्ति, शुद्धि क्रिया, धार्मिक विधि–विधान, अभिषेक, विचार भावना, धारणा, कार्य का परिणाम, क्रिया की विशेषता आदि व्यापक अर्थों में किया जाता है। अतः संस्कार शब्द अपने विशिष्ट अर्थ समूह को व्यक्त करता है और उक्त

सम्पूर्ण अर्थ इस शब्द में समाहित हो गये हैं। अतः संस्कार, शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शुद्धि के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों का श्रेष्ठ आचार है। इस अनुष्ठान प्रक्रिया से मनुष्य की बाह्याभ्यन्तर शुद्धि होती है जिससे वह समाज का श्रेष्ठ आचारवान नागरिक बन सके ।

संस्कार के दो रुप होते हैं – एक आंतरिक रुप और दूसरा बाह्य रुप । बाह्य रुप का नाम रीतिरिवाज है। यह आंतरिक रुप की रक्षा करता है। हमारा इस जीवन में प्रवेश करने का मुख्य प्रयोजन यह है कि पूर्व जन्म में जिस अवस्था तक हम आत्मिक उन्नति कर चुके हैं, इस जन्म में उससे अधिक उन्नति करें। आंतरिक रुप हमारी जीवन– चर्या है। यह कुछ नियमों पर आधारित हो तभी मनुष्य आत्मिक उन्नति कर सकता है।

हिन्दू संस्कारों में अनेक वैचारिक और धार्मिक विधियां सन्निविष्ट कर दी गयी हैं जिससे बाह्य परिष्कार के साथ ही व्यक्ति में सदाचार की पूर्णता का भी विकास हो सके। सविधि संस्कारों के अनुष्ठान से संस्कृत व्यक्ति में विलक्षण तथा अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहित क्रियाजन्योऽतिशय विशेषः संस्कारः ।

वीर मित्रोदय पृ. 191

कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्यचेहच – म. स्मृ. 2/26

संस्कारों की संख्या–संस्कारों के शास्त्रीय प्रयोग के सम्बन्ध में गृह्यसूत्रों को ही प्रमाण माना गया है। प्राचीन गृह्यसूत्रों में पारस्कर गृह्य सूत्र, अश्वलायन गृह्य सूत्र,बोधायन गृह्य सूत्र विशेष रूप से प्रामाणिक रूप से संस्कारों के अनुष्ठानों का विवरण, महत्त्व और मंत्रों का विवरण प्रस्तुत करते हैं। इनके अतिरिक्त पुराण सहित्य और विभिन्न स्मृतियां भी संस्कारों के आचार के संबंध तथा उनके महत्त्व का प्रतिपादन करती हैं। धर्म सूत्रों और धर्मशास्त्रों में भी इनके समन्वित रूपों का प्रतिपादन किया गया है। विभिन्न गृह्यसूत्रों एवं स्मृतियों में संस्कारों की संखया में मतैक्य नहीं हैं तदपि परवर्ती काल में संस्कारों की संख्या का निर्धारण कर दिया गया। इन संस्कारों में जन्मपूर्व से लेकर बाल्यकाल के 10 संस्कार और शेष 6 शैक्षणिक तथा अन्त्येष्टि पर्यन्त के संस्कार परिगणित हैं ।

षोडश संस्कारों का नाम व उल्लेख –

षोडश संस्कारों का क्रम निम्नलिखित रूप से है –

1.	गर्भाधान	2.	पुंसवन
3.	सीमन्तोन्नयन	4.	जात कर्म
5.	नामकरण	6.	निष्क्रमण
7.	अन्नप्राशन	8.	चूड़ाकरण
9.	कर्णवेध	10.	विद्यारम्भ
11.	उपनयन	12.	वेदारंभ

13. केशान्त 14. समावर्तन
15. विवाह 16. अन्त्येष्टि

कालक्रमानुसार प्राप्त भेद से अनुष्ठान पद्धतियों की रचना हो गई है। श्री दयानन्द सरस्वती के अनुयायियों एवं अन्य मतावलम्बियों ने भी अपने सम्प्रदायानुसार पद्धतियॉ बना ली हैं किन्तु देशज प्रक्रिया में भिन्नता रहते हुए भी शास्त्रीय विधि और मंत्र प्रयोग यथावत् मिलते हैं। अनेक संस्कार काल वाह्य भी हो गये हैं तदपि उनकी कौल परम्परा अभी जीवित है। अतः इन संस्कारों का संक्षिप्त रूप से विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है । हिन्दू संस्कारों के समय मुहूर्त निर्धारण में ज्योतिष की भी मुख्यण भूमिका रहती है अतः प्रत्येक संस्कार के लिए नक्षत्र – योग के अनुसार ज्योतिष शास्त्रों में मुहूर्तों का निर्धारण कर दिया है प्रचलित पंचाङ्गों में चक्रानुक्रम से उसका विवरण उपलब्ध रहता है। ज्योतिष के संक्षिप्त संकलन ग्रंथ भी इसमें सहायक हैं। संस्कारों के मुहूर्तों से सम्बन्धित सारिणी भी संलग्न कर दी जा रही है जिसमें संक्षेप में मुहूर्तों का विवरण है। मनु ने 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते' कहकर संस्कार की महत्ता का प्रतिपादन कर दिया है। संस्कार से ही द्विजत्व प्राप्त होता है। इसी वाक्य को आधार मानकर आर्य समाज के अधिष्ठाता स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सम्पूर्ण आर्य जाति को संस्कार से द्विजत्व प्राप्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

षोडश संस्कारों का उल्लेख क्रमशः निम्नलिखित रूप में दिया जा रहा है –

1. गर्भाधान संस्कार

गृह्यसूत्र गर्भाधान के साथ ही संस्कारों का प्रारंभ करते हैं क्योंकि जीवन का प्रारम्भ इसी संस्कार से शुरू होता है।

निषिक्तो यत्प्रयोगेण गर्भः संधार्यते स्त्रिया तद्गर्भालम्भनंनाम कर्म प्रोक्तं मनीषिभिः।
(वीर मित्रोदय)

स्त्री–पुरुष के संयोग रूप इस संस्कार की विस्तृत विवेचना शास्त्रों में मिलती है जिसमें अनेक विधि–निषेधों की चर्चा है जो मानव जीवन के लिए और आगे आने वाले संतति परम्परा की शुद्धि के लिए अत्यावश्यक है । दिव्य सन्तति की प्राप्ति के लिए बताये गये शास्त्रीय प्रयोग सफल होते हैं सन्तति–निग्रह भी होता है।

2. पुंसवन संस्कार

गर्भधारण का निश्चय हो जाने के पश्चात शिशु को पुंसवन नामक संस्कार के द्वारा अभिषिक्त किया जाता था । इसका अभिप्राय–पुं–पुमान (पुरुष) का सवन (जन्म हो)।

पुमान्प्रसूयते येन कर्मणा तत्पुंसवनमीरितम् – (वीरमित्रोदय)

गर्भधारण का निश्चय हो जाने के तीसरे मास से चतुर्थ मास तक इस संस्कार का

विधान बताया जाता है। अधिकांश स्मृतिकारों ने तीसरा माह ही गृहीत किया है।

तृतीये मासि कर्तव्यं गृष्टेरन्यत्रा शोभनम्।

गृष्टे चतुर्थमासे तु षष्ठे मासेऽथवाष्टये। – (वीरमित्रोदय)

यह संस्कार चन्द्रमा के पुरुष नक्षत्रा में स्थित होने पर करना चाहिए । सामान्य गणेशार्चनादि करने के बाद गर्भिणी स्त्री की नासिका के दाहिने छिद्र मे गर्भ–पोषण संरक्षण के लिए लक्ष्मणा, बटशुङ्ग, सहदेवी आदि औषधियों का रस छोड़ना चाहिए । सुश्रत नें सूत्र स्थान में कहा है –

श्श्सुलक्ष्मणा–वटशुङ्रग, सहदेवी विश्वदेवानाभिमन्यतमम क्षीरेणाभिद्युष्टय त्रिचतुरो वा विन्दून दद्यात दक्षिणे–नासापुटेश्श–सुश्रत संहिता।

उपर्युक्त प्रक्रिया से जाहिर है कि इस संस्कार में वैज्ञानिक विधि का आश्रय है जिससे शिशु की पूर्णता प्राप्त हो और उसकी सर्वाङ्ग रक्षा हो ।

(3) सीमन्तोन्नयन संस्कार –

गर्भ का तृतीय संस्कार सीमतोन्नयन है । इस संस्कार में गर्भिणी स्त्री के केशों (सीमन्त) को ऊपर करना सीमन्त उन्नीयते यस्मिन्कर्मणि तत्सीमन्तोन्नयनम् – वी.मि.

विधि– किसी पुरुष नक्षत्र में चन्द्रमा के स्थित होने पर स्त्री–पुरुष को उस दिन फलाहार करके इस विधि को सम्पन्न किया जाता है। गणेशार्चन, नान्दी, प्राजापत्य आहुति देना चाहिए। पत्नी अग्नि के पश्चिम आसन पर आसीन होती है और पति गूलरके कच्चे फलों का गुच्छ, कुशा, साही के कांटे लेकर उससे पत्नी के केश संवारता है –महाव्याहृतियों का उच्चारण करते हुए ।

अयभूर्ज्ज स्वतो वृक्ष ऊर्ज्ज्वेव फलिनी भव – पा.गृ. सूत्र

इस अवसर पर मंगल गान, ब्राह्मण भोजन आदि कराने की प्रथा थी।

बाल्यावस्था के संस्कार

(4) जातकर्म संस्कार

जातक के जन्मग्रहण के पश्चात पिता पुत्र मुख का दर्शन करे और तत्पश्चात नान्दी श्राद्धावसान जातकर्म विधि को सम्पन्न करे–

जातं कुमारं स्वं दृष्ट्वा स्नात्वाऽनीय गुरुं पिता।

नान्दी श्राद्धावसाने तु जातकर्म समाचरेत् ।।

विधि– पिता स्वर्णशलाका या अपनी चौथी अंगुली से जातक को जीभ पर

मधु और घृत महाव्याहृतियों के उच्चारण के साथ चटावें । गायत्री मन्त्र के साथ ही घृत बिन्दु छोड़ा जाय। आयुर्वेद के ग्रंथों में जातकर्म–विधि का विधान चर्चित है कि पिता बच्चे के कान में दीर्घायुष्य मंत्रों का जाप करे। इस अवसर पर लग्नपत्र बनाने और जातक

के ग्रह नक्षत्रा की स्थिति की जानकारी भी प्राप्त करने की प्रथा है और तदनुसार बच्चे के भावी संस्कारों को भी निश्चित किया जाता है।

(5) नामकरण संस्कार

नामकरण एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार है जीवन में व्यवहार का सम्पूर्ण आधार नाम पर ही निर्भर होता है।

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः

नाम्नैव कीर्तिं लभेत मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म ।–बी.मि.भा. 1

उपर्युक्त स्मृतिकार बृहस्पति के वचन से प्रमाणित है कि व्यक्ति संज्ञा का जीवन में सर्वोपरि महत्त्व है अतः नामकरण संस्कार हिन्दू जीवन में बड़ा महत्त्व रखता है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि –

तस्माद् पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्

पिता नाम करोति एकाक्षरं द्वक्षरंत्रयक्षरम अपरिमिताक्षरम वेति –वी.मि.

द्वक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः ।।

प्रायः बालकों के नाम सम अक्षरों में रखना चाहिए। महाभाष्यकार ने व्याकरण के महत्व का प्रतिपादन करते हुए नामकरण संस्कार का उल्लेख किया है –

याज्ञिकाः पठन्ति–दशम्युतरकालं जातस्य नाम विदध्यात

घोष बदाद्यन्तरन्तस्थमवृद्धं त्रिपुरुषानुकम नरिप्रतिष्ठितम।

तद्धि प्रतिष्ठितमं भवति। द्वक्षरं चतुरक्षरं वा नाम कुर्यात न तद्धितम इति। न चान्तरेण व्याकरणकृतस्तद्धिता वा शक्या विज्ञातुम। – महाभाष्य

उपर्युक्त कथन में तीन महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख है–

(1) शब्द रचना (2) तीन पीढ़ीयों के पुरखों के अक्षरों का योग (3) तद्धितान्त नहीं होना चाहिए अर्थात विशेषणादि नहीं कृत प्रत्यान्त होना चाहिए।

विधि– विधान–गृह्य सूत्रों के सामान्य नियम के अनुसार नामकरण संस्कार शिशु के जन्म के पश्चात् दसवें या बारहवें दिन सम्पन्न करना चाहिए –

द्वादशाहे दशाहे वा जन्मतोऽपि त्रायोदशे।

षोडशैकोनविंशे वा द्वात्रिंशेवर्षतः क्रमात् ।।

संक्रान्ति, ग्रहण, और श्राद्धकाल में संस्कार मंगलमय नही माना जाता। गणेशार्चन करके संक्षिप्त व्याहृतियों से हवन सम्पन्न कराकर कांस्य पात्रा में चावल फैलाकर पांच पीपल के पत्तों पर पांच नामों का उल्लेख करते हुए उनका पद्बचोपचार पूजन करे। पुनः माता की गोद में पूर्वाभिमुख बालक के दक्षिण कर्ण में घरके बड़े पुरुष द्वारा पूजित नामों में से निर्धारित नाम सुनावे। हे शिशो! तव नाम अमुक शर्म–वर्म गुप्त दासाद्यस्ति आशीर्वचन निम्न ऋचाओं का पाठ –

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोभवस्तेन मह्यां वेदो भूयाः। अङ्गादङ्

गात्संभवसि हृदयादधिजायते आत्मा वै पुत्रा नामासि सद्बजीव शरदः शतम्। गोदान–छाया दान आदि कराना चाहिये। लोकाचार के अनुसार अन्य आचार सम्पादित किये जायें।

बालिकाओं के नामकरण के लिए तद्धितान्त नामकरणकी विधि है। बालिकाओं के नाम विषमाक्षर में किये जायें और वे आकारान्त या ईकारान्त हों। उच्चारण में सुखकर, सरल, मनोहर मङ्गलसूचक आशीर्वादात्मक होने चाहिए।

स्त्रीणां च सुखमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम।
मत्त्ल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत । – वी.मि.

बोध प्रश्न –

1. संस्कार शब्द का अर्थ है ।
   क. अशुद्धिकरण ख. शुद्धिकरण ग. निजीकरण घ. करण
2. संस्कार शब्द में कौन सा प्रत्यय है ।
   क. घञ प्रत्य्य ख. मतुप प्रत्य य ग. सम प्रत्यदय घ. उरट प्रत्य य
3. प्राचीन समय में संस्कारों की संख्या थी ।
   क. 30 ख. 40 ग. 50 घ. 16
4. षोडश संस्कारों में प्रथम संस्कार है ।
   क. पुंसवन संस्कार ख. जातकर्म संस्कार ग. गर्भाधान संस्कार घ. सीमन्तोन्नयन
5. षोडश का अर्थ है –
   क. 14 ख. 15 ग. 16 घ. 17

(6) निष्क्रमण संस्कार –

प्रथम बार शिशु के सूर्य दर्शन कराने के संस्कार को निष्क्रमण कहा गया है।

ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम् ।

चतुर्थे मासि कर्तव्य शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम् । ।

अनेक स्मृतिकारों ने चतुर्थ मास स्वीकार किया है। इस संस्कार के बाद बालक को निरन्तर बाहर लाने का क्रम प्रारंभ किया जाता है।

विधि–भलीभांति अलंकृत बालक को माता गोद में लेकर बाहर आये और कुल देवता के समक्ष देवार्चन करे। पिता पुत्र को–तच्चक्षुर्देव ....आदि मंत्र का जाप करके सूर्य का दर्शन कराये –

ततस्त्वलंकृता धात्री बालकादाय पूजितम्।
बहिर्निष्कासयेद् गेहात् शङ्ख पुण्याहनिः स्वनैः। – विष्णुधर्मोत्तर

आशीर्वाद – अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवारात्रावथापि वा।

रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शक्र पुरोगमाः।।

गीत, मंगलाचरण और बालक के मातुल द्वारा भी आशीर्वाद दिलाया जाय।

(7) अन्नप्राशन संस्कार –

विधिपूर्वक बालक को प्रथम भोजन कराने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। वेदों और उपनिषदों में भी एतत् सम्बन्धी मंत्र उपलब्ध होते हैं। माता के दूध से पोषित होने वाले बालक को प्रथम बार अन्नप्राशन कराने का प्रचलन प्रायः प्राचीनकाल से ही है जो एक विशेष उत्सव के रूप में सम्पन्न किया जाता है ।

जन्मतो मासि षष्ठे स्यात सौरेणोत्तममन्नदम
तदभावेऽष्टमे मासे नवमे दशमेऽपि वा।
द्वादशे वापि कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परम
संवत्सरे वा सम्पूर्णे केचिदिच्छन्ति पण्डिताः।। – नारद, वी.मि.
षण्मासद्ध्चौनमन्नं प्राशयेल्लघु हितञ्च – सुश्रुत (शं. स्थान)

विधि– अन्नप्राशन संस्कार के दिन सर्वप्रथम यज्ञीय भोजन के पदार्थ वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ पकाये जायें। भोजन विविध प्रकार के हों तथा सुस्वादु हों। मधु–घृत–पायस से बालक को प्रथम कवर (ग्रास) दिया जाय । पद्धतियों में एतत संबंधी मंत्रा उपलब्ध हैं । गणेशार्चन करके व्याहृतियों से आहुति देकर एतत संबंधी ऋचाओं से हवन करके तत्पश्चात बालक को मंत्रापाठ के साथ अन्नप्राशन कराया जाय पुनः यथा लोकाचार उत्सव सम्पन्न किया जाय।

(8) चूड़ाकरण (मुण्डन) संस्कार –

मुण्डन संस्कार के संदर्भ में वैदिक ऋचाओं, गृह्यसूत्रों एवं स्मृतियों में मंत्र, विधि प्रयोग, समय निर्धारण के सम्बन्ध में व्यापक चर्चा मिलती है। पद्धतियों में इसका समावेश किया गया है। तदपि लोकाचार कुलाचार से अनेक भेद दिखाई देते हैं। अनेक कुलों में मनौती के आधार पर मुण्डन किये जाते हैं किन्तु मुहूर्त निर्णय के लिए सभी ज्योतिष का आधार प्रायः स्वीकार करते हैं। मुण्डन में विधि पूर्वक शास्त्रीय आचार केवल उपनयन कराने वाले कुलों में उसी समय किया जाता है जबकि शास्त्रीय विधान दूसरे वर्ष से बताया गया है यथा –

प्राङ्वासवे सप्तमे वा सहोपनयनेन वा। (अश्वलायन)
तृतीये वर्षे चौलं तु सर्वकामार्थसाधनम।
सम्बत्सरे तु चौलेन आयुष्यं ब्रह्मवर्चसम। – वी. मि.
पद्धचमे पशुकामस्य युग्मे वर्षे तु गर्हितम ।।

निषिद्ध काल–गर्भिण्यां मातरि शिशोः क्षौर कर्म न कारयेत्–इसके अतिरिक्त भी मुहूर्त निर्णय के समय–निषिद्ध काल को त्यागना चाहिए।

शिखा की व्यवस्था

मुण्डन संस्कार के कौल और शास्त्रीय आचार तो किये जाते हैं किन्तु शिखा रखने

की प्रथा का प्रायः उच्चाटन होता जा रहा है। जबकि शिखा का वैज्ञानिक महत्त्व है और शास्त्रों में शिखाहीन होना गंभीर प्रायश्चित्त कोटि में आता है ।

शिखा छिन्दन्ति ये मोहात् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा।

तप्तकृच्छ्रेण शुध्यन्ति त्रायो वर्णा द्विजातयः– लघुहारित

चूड़ाकरण का शास्त्रीय आधार था दीर्घायुष्य की प्राप्ति। सुश्रुत ने (जो विश्व के प्रथम शीर्षशल्य चिकित्सक थे) इस सम्बन्ध में बताया है कि –

मस्तक के भीतर ऊपर की ओर शिरा तथा सन्धि का सन्निपात है वहीं रोमावर्त में अधिपति है। यहां पर तीव्र प्रहार होने पर तत्काल मृत्यु संभावित है। शिखा रखने से इस कोमलांग की रक्षा होती है।

मस्तकाभ्यन्तरोपरिष्टात् शिरासम्बन्धिसन्निपातो
रोमावर्त्तोऽधिपतिस्तत्रापि सद्यो मरणम् – सुश्रुत श. स्थान

विधि–विधान–गणेशार्चन अग्निस्थापन–पञ्चवारूणीहवन–नन्दी के बाद पिता केशों का संस्कार यथाविधि करके स्वयं मंत्रा पाठ करता हुआ केश कर्त्तन करता है और उनका गोमयपिन्ड में उत्सर्ग करता है पुनः दही उष्णोदक शीतोदक से केशों को भिगोता और छुरे को अभिमन्त्रित करके नापित को वपन (मुण्डन) का आदेश देता है। क्रमशः

(9) कर्णवेध संस्कार

आभूषण पहनने के लिए विभिन्न अंगों के छेदन की प्रथा संपूर्ण संसार की असभ्य तथा अर्द्धसभ्य जातियों में प्रचलित है। अतः इसका उद्भव अति प्राचीन काल में ही हुआ होगा।

आभूषण धारण और वैज्ञानिक रूप से कर्ण छेदन का महत्त्व होने के कारण इस प्रक्रिया को संस्कार रूप में स्वीकारा गया होगा। कात्यायन सूत्रों में ही इसका सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। सुश्रुत ने इसके वैज्ञानिक पक्ष में कहा है कि कर्ण छेद करने से अण्डकोष वृद्धि, अन्त्रा वृद्धि आदि का निरोध होता है अतः जीवन के आरंभ में ही इस क्रिया को वैद्य द्वारा सम्पादित किया जाना चाहिए ।

शङ्खो परि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीयम्
व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येद् अन्त्राबृद्धि निवृत्तये – सुश्रुत चि. स्थान

भिषग्वामहस्तेन–विध्येत्सुश्रुत संहिता में षष्ठ अथवा सप्तम मास में शुक्ल पक्ष में शुभ दिन में वैद्य द्वारा माता की गोद में मधुर खाते बालक का अत्यन्त निपुणता से कर्ण वेध करना चाहिए। जब कि वृहस्पति जन्म से 10–12–16वें दिन करने को कहते है।
विधि – वर्तमान बालिकाओं का कर्णवेध तो आभूषण धारण के लिए अनिवार्यतः होता है

किन्तु पुरुष वर्ग के वेध का प्रतीकात्मक ही संस्कार हो पाता है ।गणेशार्चन, हवन आदि करके निम्न मंत्रों से क्रमशः दक्षिण–वाम कर्णों की वेध की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है – भद्रं कर्णेभिः............आदि मंत्रों से सम्पन्न किया जाय।

(10) विद्यारम्भ एवं अक्षराम्भ

इस महत्त्वपूर्ण संस्कार के संबंध में गृह्य सूत्रों में काफी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता और न ही किसी विशेष विधि–विधान की चर्चा ही मिलती है। किन्तु अनेक आकर ग्रंथों, प्राचीन काव्य नाटकों में इसका स्पष्ट उल्लेख आता है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र रघुवंश, उत्तररामचरित आदि में इसकी चर्चा है इससे स्पष्ट है कि

उपनयन और वेदारंभ

के पूर्व अक्षरों का सम्यक ज्ञान अपेक्षित था और अक्षर ज्ञान के समय कुलाचार के अनुसार विधि–विधान किये जाते थे। विधि–परवर्ती संग्रह ग्रंथों में इसकी विधि व्यवस्था प्राप्त है।

उत्तरायण सूर्य होने पर ही शुभ मुहूर्त में गणेश–सरस्वती–गृह देवता का अर्चन करके गुरु के द्वारा अक्षरारंभ कराया जाय। द्वितीय जन्मतः पूर्वामारभेदक्षरान सुधीः। –बी.मि. (बृहस्पति)

तण्डुल प्रसारित पट्टिका पर–

श्री गणेशाय नमः, श्री सरस्वत्यै नमः, गृह देवताभ्योनमः श्री लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः लिखकर उसका पूजन कराया जाय और गुरु पूजन किया जाय और गुरु स्वयं बालक का दाहिना हाथ पकड़कर पट्टिका पर अक्षरारंभ कर दे। तत्पश्चात् गुरु को दक्षिणा दान करना चाहिये।

(11) उपनयन संस्कार

भारतीय मनीषियों ने जीवन की समग्र रचना के लिए जिस आश्रम व्यवस्था की स्थापना की जिससे मनुष्य को सहज ही पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति हो, किया गया प्रतीत होता है। ब्रह्मचर्य काल में धर्म का अर्जन एवं गृहस्थ जीवन में अर्थ–काम का उपभोग गीता के शब्दों में श्धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभश्श धर्म–नियंत्रित अर्थ और काम तभी संभव था जब प्रारंभ में ही धर्म–तत्वों से मनुष्य दीक्षित हो जाय। इसके बाद जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करने के लिए भी यौवन काल में अभ्यस्त धर्म ही सहायक होता है। इस प्रकार पुरुषार्थ चतुष्टय और आश्रम चतुष्टय में अन्योन्याश्रय प्रतीत होता है या दोनों आधाराधेय भाव से जुड़े है ।

वर्तमान युग में उपनयन संस्कार प्रतीकात्मक रूप धारण करता जा रहा है। विरल परिवारों में यथाकाल विधि–व्यवस्था के अनुरूप उपनयन संस्कार हो पाते हैं। एक ही दिन

कुछ घण्टों में चूड़ाकरण, कर्णवेध, उपनयन, वेदारंभ और केशान्त कर्म के साथ समावर्तन संस्कार की खानापूरी करदी जाती है। बहुसंखय परिवारों में विवाह से पूर्व उपनयन संस्कार कराकर वैवाहिक संस्कार करा दिया जाता है जबकि गृह्यसूत्रों के अनुसार विभिन्न वर्णों के लिए आयु की सीमा का निर्धारण किया गया • है –

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पद्चमे

राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे। –मनुस्मृति 2 अ. 37

सत्राहवीं शताब्दी के निबन्धकारों ने परिस्थितियों के अनुरूप ब्राह्मण का 24 क्षत्रिय का 33 और वैश्य का 36 तक भी उपनयन स्वीकार कर लेते हैं। – बी.मि.भा. 1 (347)

यौवन के पदार्पण करने के पूर्व किशोरावस्था में संस्कारित और दीक्षित करने का अनुष्ठान सार्वकालिक और विश्वजनीन है। सभी सम्प्रदायों में किसी न किसी रूप में दीक्षा की पद्धति चलती है और उसके लिए विशेष प्रकार के विधि विधानों के कर्मकाण्ड आयोजित किये जाते हैं। इन विधि–विधानों के माध्यम से संस्कारित व्यक्ति ही समाज में श्रेष्ठ नागरिक की स्थिति प्राप्त कर सकता है। इसी उद्देश्य से उपनयन संस्कार की परम्परा भारतीय मनीषा में स्थापित की थी।

हिन्दू संस्कार–वास्तव में उपनयन संस्कार आचार्य के समीप दीक्षा के लिए अभिभावक द्वारा पहुंचना ही इस संस्कार का उद्देश्य था। इसी लिए इसके कर्मकाण्ड में कौपीन; मौञ्जी, मृगचर्म और दण्ड धारण करने का मंत्रों के साथ संयोजन है। सावित्री मंत्रा धारण द्विज को अपने ब्रह्मचारी वेष में अपनी माता से पहली भिक्षा और फिर समाज के सभी वर्ग से भिक्षाटन करने का अभ्यास इस संस्कार का वैशिष्ट्य है। इस व्यवस्था से ब्रह्मचारी को व्यष्टि से समष्टि और परिवार से बृहत् समाज से जोड़ा जाता था जिससे व्यक्ति अपनी सत्ता को समष्टि में समाहित करें और अपनी विद्या बुद्धि शक्ति का प्रयोग समाज की सेवा के लिए करें।

वास्तव में यज्ञोपवीत के सूत्र धारण करने को ब्रतवंध कहते हैं जिससे ब्रह्मचारी की

पहचान और उसको धारण करने वाले को अपनी दीक्षा संकल्प का सदा स्मरण रहे। सूत्र धारण कराकर उत्तरीय रखने की अनिवार्यता बताई गई है।

विधि – उपनयन संस्कार से संबंधित प्रान्तीय और विभिन्न सम्प्रदायों के स्तर पर उपनयन पद्धतियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं तदनुसार उनका आश्रय लेकर संस्कारों का संयोजन सम्पादन करना चाहिए

(12) वेदारम्भ

वेदारंभ उपनयन संस्कार के बाद किया जाता है जो अब प्रतीकात्मक ही

रह गया है। वास्तव में यह संस्कार मुख्य रूप से वेद की विभिन्न शाखाओं की रक्षा के लिए उसके अभ्यास की परम्परा से जुड़ा है । अपनी कुल परम्परा के अनुसार वेद, शाखा सूत्र आदि के स्वाध्याय की पद्धति थी । जिसे अनिवार्य रूप से द्विजातियों को उसका अभ्यास करना पड़ता था । कालान्तर में मात्रा पुरोहितों के कुलों में सीमित हो गई और अब उसका प्रायः लोप हो गया है । यही कारण है कि वेद की बहुत सी शाखायें उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि श्रुति परम्परा से ही इसकी रक्षा की जाती थी । महर्षि पतञ्जलि ने भी महाभाष्य में इसकी चर्चा करते हुए कहा है कि अनेक शाखा–सूत्रों का लोप हो गया है ।

वर्तमान पद्धतियों में चतुर्वेदों के मंत्रों का संग्रह कर दिया गया है जिसे उपनयन के बाद सावित्री सरस्वती–लक्ष्मी गणेश की अर्चना के बाद उपनीत बटु से उसका औपचारिक उच्चारण मात्रा करा दिया जाता है । अतः अब यह संस्कार उपनयन का अंगभूत भाग रह गया है ।

(13) केशान्त संस्कार

केशान्त का अर्थ लम्बी अवधि तक केशधारण करने वाले युवा ब्रह्मचारी का केश वपन । विधि पूर्वक मंत्रोच्चारण के साथ यह गोदान के साथ सम्पन्न होता था। इस संस्कार के बाद ही श्युवकश को गृहस्थ जीवन के योग्य शारीरिक और व्यावहारिक योग्यता की दीक्षा दी जाती थी । आगोदानकर्मणः–ब्रह्मचर्यम्–भा.यू.सू. ।

(14) समावर्तन संस्कार

समावर्त्तन का अर्थ है विद्याध्ययन प्राप्त कर ब्रह्मचारी युवक का गुरुकुल से घर की ओर प्रत्यावर्त्तन।

तत्र समावर्त्तनं नाम वेदाध्यनानन्तरं गुरुकुलात्स्वगृहागमनम् – वीर मित्रोदय

विष्णुस्मृति के अनुसार–कुब्ज, वामन, जन्मान्ध, बधिर, पंगु तथा रोगियों को यावज्जीवन ब्रह्मचर्य में रहने की व्यवस्था है–

कुब्जवामनजात्यन्धक्लीब पङ्वार्त रोगिणाम्।
ब्रतचर्या भवेत्तेषां यावज्जीवमनंशतः।।

समावर्त्तन संस्कार गृहस्थ जीवन में प्रवेश की अनुमति देता है। उपनयन संस्कार से प्रारंभ होने वाली शिक्षा की पूर्णता के बाद ब्रह्मचर्य का कठोर जीवन व्यतीत करने वाले संस्कारित युवक को इस संस्कार के माध्यम से गार्हस्थ्य जीवन जीने की शिक्षा दी जाती थी। ऐसे संस्कारित युवक की स्नातक संज्ञा थी। स्नातक तीन प्रकार के होते थे (1) विद्या स्नातक (2) व्रत स्नातक (3) विद्याव्रत स्नातक। इनमें तीसरे प्रकार के स्नातक को ही गृहस्थ जीवन में प्रवेश का अधिकार मिलता था। क्योंकि ऐसा ही ब्रह्मचारी विद्या की पूर्णता के साथ ब्रह्मचर्य्य व्रत की भी पूर्णता प्राप्त कर लेता था। वर्तमान काल में भले 10–12 वर्ष के बालक का उपनयन संस्कार के तत्काल समावर्त्तन का अधिकारी बना दिया जाता • है। आश्रमहीन रहना दोषपूर्ण होता है अतः समावर्त्तन के बाद गृहस्थ बनना अथ च दारपरिग्रह अपरिहार्य है, अन्यथा प्रायश्चित्त होता है।

अनाश्रमी न तिष्ठेच्च • क्षणमेकमपि द्विजः।
आश्रमेण विना तिष्ठन् प्रायश्चित्तीयते हि सः।। दक्षस्मृति (10)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समावर्त्तन संस्कार अति महत्वपूर्ण आचार प्रक्रिया थी जिससे

संस्कारित और दीक्षित होकर युवक एक श्रेष्ठ गृहस्थ की योग्यता प्राप्त करता था। वर्तमान काल में उपनयन संस्कार के साथ ही कुछ घंटों में इसकी भी खानापूरी कर दी जाती है। इसके विधि विधान का विवरण उपनयन पद्धतियों से यथा प्राप्त सम्पन्न कराना चाहिए।

(15) विवाह संस्कार

विवाह संस्कार हिन्दू संस्कार पद्धति का अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार है । प्रायः सभी सम्प्रदायों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह शब्द का तात्पर्य मात्र स्त्री–पुरुष के मैथुन सम्बन्ध तक ही सीमित नहीं है अपितु सन्तानोत्पादन के साथ–साथ सन्तान को सक्षम आत्मनिर्भर होने तक के दायित्व का निर्वाह और सन्तति परम्परा को योग्य लोक शिक्षण देना भी इसी संस्कार का अंग है । शास्त्रों में अविवाहित व्यक्ति को अयज्ञीय कहा गया है और उसे सभी प्रकार के अधिकारों के अयोग्य माना गया है –

अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः–वै.प्रा.

मनुष्य जन्म ग्रहण करते ही तीन ऋणों से युक्त हो जाता है, ऋषि ऋण, देव ऋण, पितृऋण और तीनों ऋणों से क्रमशः ब्रह्मचर्य, यज्ञ, सन्तानोत्पादन करके मुक्त हो पाता है–जायमानो ह वै ब्राहणस्त्रिार्ऋणवान् जायते–ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो, यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः–तै. सं. 6–3
गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों का आश्रम है। जैसे वायु प्राणिमात्रा के जीवन का आश्रय

है, उसी प्रकार गार्हस्थ्य सभी आश्रमों का आश्रम है –

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।
यस्मात्त्रायोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्मा ज्येष्ठाश्रमो गृही। –मनुस्मृति

विवाह अनुलोम रीति से ही करना चाहिए–प्रातिलोम्य विवाह सुखद नहीं होता अपितु परिणाम में कष्टकारी होता है–

त्रायाण्यमानुलोम्यं स्यात् प्रातिलोम्यं न विद्यते
प्रातिलौम्येन यो याति न तस्मात पापकृत्तरः। द. स्मृति (9)
अपत्नीको नरो भूप कर्मयोग्यो न जायते।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नरः।

विवाह के प्रकार

प्राचीन काल से ही यौन सम्बन्धों में विविधता के वृत्त प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं अतः स्मृतियों ने इस प्रकार के विवाहों को आठ भागों में विभक्त किया है –

(1) ब्राह्म (2) दैव (3) आर्ष (4) प्राजापत्य (5) आसुर (6) गान्धर्व (7) राक्षस (8) पैचाश।

इनमें प्रथम चार प्रशस्त और चार अप्रशस्त की श्रेणी में रखे गये हैं। प्रथम चार में भी ब्राह्म विवाह सर्वोत्तम और समाज में प्रशंसनीय था शेष तरतम भाव से ग्राह्य थे। किन्तु दो सर्वथा अग्राह्य थे।

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः।। मनु. (3)

संक्षेप में विवाह संस्था के उद्देश्य और उसके प्रकार का विवरण दिया गया है। विवाह के विविध–विधान के लिए देश–काल–प्रान्तभेद से पद्धतियां उपलब्ध हैं तदनुसार वैवाहिक संस्कार सम्पन्न किया जाना चाहिए।

(16) अन्त्येष्टि संस्कार

भारतीय सनातन परम्परा के संस्कारों में अन्त्येष्टि दैहिक जीवन का अन्तिम अध्याय है। आत्मा की अमरता एवं लोक परलोक का विश्वासी भारतीय सनातन परम्परा में हिन्दू जीवन इस लोक की अपेक्षा पारलौकिक कल्याण की सतत कामना करता है। मरणोत्तर संस्कार से ही पारलौकिक विजय प्राप्त होती है –

जात संस्कारेणेमं लोकमभिजयति
मृतसंस्कारेणामुं लोकम् – वी.मि. 3–1

विधि–विधान आतुरकालिक दान, वैतरणीदान, मृत्युकाल में भू शयनव्यवस्था मृत्युकालिक स्नान, मरणोत्तर स्नान, पिण्डदान, (मलिन षोडशी) के 6 पिण्ड दशगात्रायावत तिलाञ्जलि, घटस्थापन दीपदान, दशाह के दिन मलिन षोडशी के शेष पिण्डदान एकादशाह के षोडश श्राद्ध, विष्णुपूजन शैय्यादान आदि। सपिण्डीकरण, शय्यादान एवं लोक व्यवस्था के अनुसार उत्तर कर्म आयोजित कराने चाहिए। इन सभी कर्मों के लिए प्रान्त देशकाल के अनुसार पद्धतियां उपलब्ध हैं तदनुसार उन कर्मों का आयोजन किया जाना चाहिए।

2.4 संस्कारों का भौतिक जीवन में योगदान

भारतीय सनातन परम्परा में संस्कारों का मानव के भौतिक जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त प्रमुख षोडश संस्कार पग–पग पर मानव जीवन में अपना योगदान सुनिश्चित करता है। गर्भ में शिशु की स्थिति से लेकर प्रसवोपरान्त जातक का नामकरण, अन्नप्राशन, व्रतबन्ध, अक्षराम्भ–विद्यारम्भ, विवाहादि समस्त संस्कारों का मानव के भौतिक जीवन में अत्यन्त प्रबल योगदान है। इन्हीं संस्कारों के बल पर मानव अपने जीवन को सुदृढ़, चरित्रवान, अनुशासनयुक्त तथा सफल बना पाता है। ये

संस्कार मानव को उसके जीवन में उत्तरोत्तर विकास करने का बल प्रदान करते है तथा उन्हें निरन्तर प्रेरित करते है।

भौतिक अर्थात् सांसारिक जीवन में एक मनुष्य के परिप्रेक्ष्य में अवलोकन करें तो स्त्री–पुरूष के परस्पर संसर्ग से गर्भाधान संस्कार के द्वारा शिशु गर्भ में आता है। गर्भ में शिशु के रक्षार्थ प्राचीन ऋषियों ने गर्भ से तीसरे मास में पुंसवन संस्कार का विधान बतलाया है। उसी क्रम में शिशु जब गर्भ से बाहर आ जाता है तो जातकर्म–नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, व्रतबन्ध, अक्षराम्भ –विद्यारम्भ, विवाह आदि संस्कारों के द्वारा बालक को एक सुयोग्य नागरिक के रूप में तैयार किया जाता है। इन संस्कारों ही प्रभाव होता है उसके जन्म से मृत्यु पर्यन्त। अर्थात् संस्कार के बिना मनुष्य के जीवन में कुछ भी संभव नहीं होता है।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से संस्कार शब्द का निर्माण करण अर्थ में हुआ है। जिसका अर्थ है– विधिपूर्वक करना। भारतीय सनातन परम्परा में संस्कार का अर्थ है –शुद्धिकरण। मन, वाणी एवं शरीर तीनों प्रकार से विशुद्ध होने वाली शुद्धिकरण की प्रक्रिया का नाम 'संस्कार' है। ये हमें हमारे ऋषि एवं मुनियों से विरासत में मिली है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में व्यक्ति निर्माण की बात कही गई है। इस कार्य में संस्कार का मुख्य प्रयोजन है। संस्कार के बिना व्यक्ति निर्माण की बात सम्भव ही नहीं। व्यक्ति निर्माण से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो अपने परिवार का, समाज का, स्वदेश का कुशल नेतृत्व करते हुये धर्म और आदर्श की मर्यादा स्थापपित करे। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना व अपने देश की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हो। ऐसे आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण संस्कार के बिना असम्भव है।

संस्कार शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है । संस्कृत वाङ्मय में इसका प्रयोग शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण, सौजन्य पूर्णता, व्याकरण संबंधी शुद्धि, संस्करण, परिष्करण, शोभा आभूषण, प्रभाव, स्वरूप, स्वभाव, क्रिया, फलशक्ति, शुद्धि क्रिया, धार्मिक विधि–विधान, अभिषेक, विचार भावना, धारणा, कार्य का परिणाम, क्रिया की विशेषता आदि व्यापक अर्थों में किया जाता है।

2.6 पारिभाषिक शब्द

संस्कार – सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से संस्कार शब्द का निर्माण हुआ है। संस्कार का एक और अर्थ शुद्धिकरण भी है।

लौकिक – सांसारिक

पारलौकिक – दैविक

अन्त्येष्टि – मृत्योपरान्त किया जाने वाला संस्कार

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.ख

2.क

3.ख

4.ग

5.ग

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मुहूर्तचिन्तामणि
संस्कार विमर्श
कर्मकलाप

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कारों का परिचय देते हुए उसका विस्तृत उल्लेख कीजिये।
2. षोडश संस्कार का वर्णन कीजिये।
3. भारतीय सनातन परम्परा के अनुसार षोडश संस्कारों के महत्व पर प्रकाश डालिये।

इकाई –3 गर्भाधान, पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 गर्भाधान एवं पुंसवन संस्कार

3.4 सीमन्तोन्नयन संस्कार

3.5 सारांश

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7 सहायक पाठ्यसामग्री

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई डीपीजे– 17 के प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – गर्भाधान, पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन। उक्त तीनों का सम्बन्ध संस्कार से है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने संस्कार के साथ–साथ प्रमुख षोडश संस्कारों के बारें में अध्ययन किया है। अब आप उन्हीं षोडश संस्कारों में से गर्भाधान, पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन संस्कार का अध्ययन करने जा रहे है।

गर्भाधान संस्कारों में प्रथम संस्कार होता है। उसी क्रम में गर्भस्थ शिशु के लिये रक्षार्थ पुंसवन तीसरे मास में किया जाना वाला संस्कार है और सीमन्तोन्नयन संस्कार भी उसी क्रम में किया जाना वाला संस्कार है।

इस इकाई में आप उक्त तीनों संस्कारों का सम्यक् अध्ययन कर सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

1. बता सकेंगे कि गर्भाधान संस्कार क्या है।
2. समझ लेंगे कि पुंसवन संस्कार क्या होता है।
3. सीमन्तोन्नयन संस्कार से परिचित हो जायेगें।
4. गर्भाधान, पुंसवन एवं सीमन्नतोन्नयन संस्कार के महत्व को समझ सकेंगे।

3.3 गर्भाधान एवं पुंसवन

प्राचीन काल में हमारा प्रत्येक कार्य संस्कार से आरम्भ होता था। उस समय संस्कारों की संख्या भी लगभग चालीस थी। जैसे–जैसे समय बदलता गया तथा व्यस्तता बढती गई तो कुछ संस्कार विलुप्त होते चले गये। इस प्रकार समयानुसार संशोधित होकर संस्कारों की संख्या निर्धारित होती गई। गौतम स्मृति में चालीस प्रकार के संस्कारों का उल्लेख है। महर्षि अंगिरा ने इनका अंतर्भाव पच्चीस संस्कारों में किया। व्यास स्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन हुआ है। हमारे धर्मशास्त्रों में भी मुख्य रूप से सोलह संस्कारों की व्याख्या की गई है। इनमें पहला गर्भाधान संस्कार और मृत्यु के उपरान्त अन्त्येष्टि अंतिम संस्कार है। गर्भाधान के बाद पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण ये सभी संस्कार

नवजात का दैवी जगत् से संबंध स्थापना के लिये किये जाते हैं। दैवी जगत् से शिशु की प्रगाढ़ता बढ़े तथा ब्रह्माजी की सृष्टि से वह अच्छी तरह परिचित होकर दीर्घकाल तक धर्म और मर्यादा की रक्षा करते हुए इस लोक का भोग करे यही इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है।

हमारे शास्त्रों में मान्य सोलह संस्कारों में गर्भाधान प्रथम संस्कार है। गृहस्थ जीवन में प्रवेश के उपरान्त प्रथम कर्त्तव्य के रूप में इस संस्कार को मान्यता दी गई है। गार्हस्थ्य जीवन का प्रमुख उद्देश्य श्रेष्ठ सन्तानोत्पत्ति है। उत्तम संतति की इच्छा रखनेवाले माता–पिता को गर्भाधान से पूर्व अपने तन और मन की पवित्रता के लिये यह संस्कार करना चाहिए। वैदिक काल में यह संस्कार अति महत्वपूर्ण समझा जाता था।

हिन्दू धर्म में, संस्कार परम्परा के अन्तर्गत भावी माता–पिता को यह तथ्य समझाए जाते हैं कि शारीरिक, मानसिक दृष्टि से परिपक्व हो जाने के बाद, समाज को श्रेष्ठ, तेजस्वी नई पीढ़ी देने के संकल्प के साथ ही संतान पैदा करने की पहल करें । गर्भ ठहर जाने पर भावी माता के आहार, आचार, व्यवहार, चिंतन, भाव सभी को उत्तम और संतुलित बनाने का प्रयास किया जाय। उसके लिए अनुकूल वातवरण भी निर्मित किया जाय । गर्भ के तीसरे माह में विधिवत पुंसवन संस्कार सम्पन्न कराया जाय, क्योंकि इस समय तक गर्भस्थ शिशु के विचार तंत्र का विकास प्रारंभ हो जाता है। वेद मंत्रों, यज्ञीय वातावरण एवं संस्कार सूत्रों की प्रेरणाओं से शिशु के मानस पर तो श्रेष्ठ प्रभाव पड़ता ही है, अभिभावकों और परिजनों को भी यह प्रेरणा मिलती है कि भावी माँ के लिए श्रेष्ठ मनःस्थिति और परिस्थितियाँ कैसे विकसित की जाए। यह संस्कार गर्भस्थ शिशु के समुचित विकास के लिए गर्भिणी का किया जाता है। कहना न होगा कि बालक को संस्कारवान् बनाने के लिए सर्वप्रथम जन्मदाता माता–पिता को संस्कारी होना चाहिए। उन्हें बालकों के प्रजनन तक ही दक्ष नहीं रहना चाहिए, वरन् सन्तान को सुयोग्य बनाने योग्य ज्ञान तथा अनुभव भी एकत्रित कर लेना चाहिए। जिस प्रकार रथ चलाने से पूर्व उसके कल–पुर्जों की आवश्यक जानकारी प्राप्त कर ली जाती है, उसी प्रकार गृहस्थ जीवन आरम्भ करने से पूर्व इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी इकट्ठी कर लेनी चाहिए। यह अच्छा होता, अन्य विषयों की तरह आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में दाम्पत्य जीवन एवं शिशु निर्माण के सम्बन्ध में शास्त्रीय प्रशिक्षण दिये जाने की व्यवस्था रही होती। इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति संस्कारों के शिक्षणात्मक पक्ष से भली प्रकार पूरी हो जाती है। यों तो षोडश संस्कारों में सर्वप्रथम गर्भाधान संस्कार का विधान है, जिसका अर्थ यह है कि दम्पती अपनी प्रजनन प्रवृत्ति से समाज को सूचित करते हैं। विचारशील लोग यदि उन्हें इसके लिए अनुपयुक्त समझें, तो मना भी कर सकते हैं। प्रजनन वैयक्तिक मनोरंजन नहीं, वरन् सामाजिक उत्तरदायित्व है। इसलिए समाज के विचारशील लोगों को निमंत्रित कर उनकी सहमति लेनी पड़ती है। यही गर्भाधान संस्कार है। पूर्वकाल में यही सब होता था। आधुनिक भारतीय समाज के अन्धाधुन्ध पाश्चात्य

संस्कृति के अनुसरण के वजह और विवेक की कमी के कारण; वह सन्तानोत्पत्ति को भी वैयक्तिक मनोरंजन का रुप मान लिया गया हैं, इस कारण गर्भाधान संस्कार का महत्त्व कम हो गया। इतने पर भी उसकी मूल भावना को भुलाया न जाए, उस परम्परा को किसी न किसी रूप में जीवित रखना चाहिए। गृहस्थ एकान्त मिलन के साथ वासनात्मक मनोभाव न रखें, मन ही मन आदर्शवादी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते रहें, तो उसकी मानसिक छाप बच्चे की मनोभूमि पर अङ्कित होगी। छिपकर पाप कर्म करते हुए भयभीत और आशंकाग्रसित अनैतिक समागम–व्यभिचार के फलस्वरूप जन्मे बालक अपना दोष–दुर्गुण साथ लाते हैं। इसी प्रकार उस समय दोनों की मनोभूमि यदि आदर्शवादी मान्यताओं से भरी हुई हो, तो युधिष्ठिर, अर्जुन आदि की तरह मनचाहे स्तर के बालक उत्पन्न किये जा सकते हैं।

गर्भ सुनिश्चित हो जाने पर तीन माह पूरे हो जाने तक **पुंसवन** संस्कार कर देना चाहिए। विलम्ब से भी किया तो दोष नहीं, किन्तु समय पर कर देने का लाभ विशेष होता है। तीसरे माह से गर्भ में आकार और संस्कार दोनों अपना स्वरूप पकड़ने लगते हैं। अस्तु, उनके लिए आध्यात्मिक उपचार समय पर ही कर दिया जाना चाहिए। इस संस्कार के नीचे लिखे प्रयोजनों को ध्यान में रखा जाए। गर्भ का महत्त्व समझें, वह विकासशील शिशु, माता–पिता, कुल परिवार तथा समाज के लिए विडम्बना न बने, सौभाग्य और गौरव का कारण बने। गर्भस्थ शिशु के शारीरिक, बौद्धिक तथा भावनात्मक विकास के लिए क्या किया जाना चाहिए, इन बातों को समझा–समझाया जाए। गर्भिणी के लिए अनुकूल वातावरण खान–पान, आचार–विचार आदि का निर्धारण किया जाए। गर्भ के माध्यम से अवतरित होने वाले जीव के पहले वाले कुसंस्कारों के निवारण तथा सुसंस्कारों के विकास के लिए, नये सुसंस्कारों की स्थापना के लिए अपने सङ्कल्प, पुरुषार्थ एवं देव अनुग्रह के संयोग का प्रयास किया जाए।

बालक का नाम उसकी पहचान के लिए नहीं रखा जाता। मनोविज्ञान एवं अक्षर–विज्ञान के जानकारों का मत है कि नाम का प्रभाव व्यक्ति के स्थूल–सूक्ष्म व्यक्तित्व पर गहराई से पड़ता रहता है। नाम सोच–समझकर तो रखा ही जाय, उसके साथ नाम रोशन करने वाले गुणों के विकास के प्रति जागरूक रहा जाय, यह जरूरी है। भारतीय सनातन परम्पारा में नामकरण संस्कार में इस उद्देश्य का बोध कराने वाले श्रेष्ठ सूत्र समाहित रहते हैं । नामकरण शिशु जन्म के बाद पहला संस्कार कहा जा सकता है। यद्यपि जन्म के तुरन्त बाद ही जातकर्म संस्कार का विधान है, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में वह व्यवहार में नहीं दीखता। अपनी पद्धति में उसके तत्त्व को भी नामकरण के साथ समाहित कर लिया गया है। इस संस्कार के माध्यम से शिशु रूप में अवतरित जीवात्मा को कल्याणकारी यज्ञीय वातावरण का लाभ पहुँचाने का सत्प्रयास किया जाता है। जीव के पूर्व संचित संस्कारों में जो हीन हों, उनसे मुक्त कराना, जो श्रेष्ठ हों, उनका आभार मानना–अभीष्ट होता है।

नामकरण संस्कार के समय शिशु के अन्दर मौलिक कल्याणकारी प्रवृत्तियों, आकांक्षाओं के स्थापन, जागरण के सूत्रों पर विचार करते हुए उनके अनुरूप वातावरण बनाना चाहिए। शिशु कन्या है या पुत्र, इसके भेदभाव को स्थान नहीं देना चाहिए। भारतीय संस्कृति में कहीं भी इस प्रकार का भेद नहीं है। शीलवती कन्या को सौ पुत्रों के बराबर कहा गया है। शत पुत्र–समा कन्या यस्य शीलवती सुता। इसके विपरीत पुत्र भी कुल धर्म को नष्ट करने वाला हो सकता है। जिमि कपूत के ऊपजे कुल सद्धर्म नसाहिं। इसलिए पुत्र या कन्या जो भी हो, उसके भीतर के अवांछनीय संस्कारों का निवारण करके श्रेष्ठतम की दिशा में प्रवाह पैदा करने की दृष्टि से नामकरण संस्कार कराया जाना चाहिए। यह संस्कार कराते समय शिशु के अभिभावकों और उपस्थित व्यक्तियों के मन में शिशु को जन्म देने के अतिरिक्त उन्हें श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न बनाने के महत्त्व का बोध होता है। भाव भरे वातावरण में प्राप्त सूत्रों को क्रियान्वित करने का उत्साह जागता है। आमतौर से यह संस्कार जन्म के दसवें दिन किया जाता है। उस दिन जन्म सूतिका का निवारण–शुद्धिकरण भी किया जाता है। यह प्रसूति कार्य घर में ही हुआ हो, तो उस कक्ष को लीप–पोतकर, धोकर स्वच्छ करना चाहिए। शिशु तथा माता को भी स्नान कराके नये स्वच्छ वस्त्र पहनाये जाते हैं। उसी के साथ यज्ञ एवं संस्कार का क्रम वातावरण में दिव्यता घोलकर अभिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करता है। यदि दसवें दिन किसी कारण नामकरण संस्कार न किया जा सके। तो अन्य किसी दिन, बाद में भी उसे सम्पन्न करा लेना चाहिए। घर पर, प्रज्ञा संस्थानों अथवा यज्ञस्थलों पर भी यह संस्कार कराया जाना उचित है।

3.4 सीमन्तोन्नयन संस्कार

सीमन्तोन्नयन को सीमन्तकरण अथवा सीमन्त संस्कार भी कहते हैं। सीमन्तोन्नयन का अभिप्राय है सौभाग्य संपन्न होना। गर्भपात रोकने के साथ–साथ गर्भस्थ शिशु एवं उसकी माता की रक्षा करना भी इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। इस संस्कार के माध्यम से गर्भिणी स्त्री का मन प्रसन्न रखने के लिये सौभाग्यवती स्त्रियां गर्भवती की मांग भरती हैं। यह संस्कार गर्भ धारण के छठे अथवा आठवें महीने में होता है।

बोध प्रश्न –

1. संस्कारों में प्रथम संस्कार है।
   क. सीमन्तोपन्नयन ख. पुंसवन ग. गर्भाधान घ.नामकरण
2. महर्षि गौतम के मत में संस्कारों की संख्या है।
   क. 30 ख.40 ग. 50 घ. 16
3. प्राचीनकाल में संस्कारों की संख्या थी।
   क.16 ख. 30 ग. 40 घ. 50
4. सीमन्त का अर्थ है –

क.गर्भ ख. केश ग. सीमा घ. नाम

5. गर्भाधान के पश्चात् होने वाला संस्कार है ।

क. पुंसवनं ख. सीमन्तोन्नयन ग. नामकरण घ. कर्णवेध

गर्भाधान संस्कार

यह प्रथम संस्कार है जो ऋतु स्नान के पश्चात् किया जाता है। भार्या के स्त्री–धर्म में होने के 16 दिन तक वह गर्भ धारण के योग्य रहती है, तदनन्तर रमण निष्फल जाता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार रजोदर्शन के दिन से 6,8,10,12,14 तथा 16 वें दिनों में क्रियमाण गर्भाधान पुत्रदायक व विषम दिनों 5,7,9,11,13,15 वें दिनों में कन्याप्रद होता है। इस द्वादश दिनात्मक काल में विचारणीय मुहूर्त्त शुद्धि तिथि उभय पक्षों में 2,3,5,7,10,11,12,13 शु.।

गर्भाधान हेतु प्रशस्त वार एवं दिन –

वार – चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार।

नक्षत्र – रोहिणी, मृगशिरा, तीनों उत्तरा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा।

लग्न पुत्रार्थी विषम राशि तथा विषम नवांशगत लग्न में तथा कन्यांकाक्षी तद् विलोम लग्न में स्त्रीसंग करना चाहिये। लग्न, केन्द्र, त्रिकोण में शुभग्रह और 3,6,11 वें पापग्रह हो, तथा लग्न को सूर्य, मंगल और गुरू देख रहे हो तथा चन्द्र मा विषम नवमांश और शुभ ग्रहों की सन्निधि में हो तो गर्भाधान से पुत्रोत्पत्ति अवश्यंभावी होती है। मुहूर्त्तचिन्ताममणि में आचार्य रामदैवज्ञ ने संस्कार प्रकरण में गर्भाधान संस्कार के बारें में लिखा है कि –

भद्राषष्ठींपर्वरिक्ताश्चा सन्ध्या। भौमार्कार्कीनाद्यरात्रीश्चतस्रः ।

गर्भाधानं त्र्युत्तररेन्द्वर्क मैत्रब्राह्मस्वातीविष्णुवस्वयम्बुपे सत् ।।

अर्थ – भद्रा, षष्ठी, पर्व (अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्यात, पूर्णिमा) एवं रिक्ता (4,9,14) तिथियॉ, सन्याधान काल, भौम, रवि और शनिवार तथा ऋतुकाल की प्रारम्भिक 4 चार राशियॉ गर्भाधान के लिए त्याज्य है।

तीनों उत्ततरा (उ0 फा0, उ0षा0, उ0भा0), मृगशिरा, हस्त, अनुराधा, रोहिणी, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, इन नक्षत्रों में गर्भाधान होता है।

विशेष – ऋतुस्नाता वनिता से सहवास न करने वाला व्यक्ति भ्रूणघ्न होता है, और वह गर्भस्थ शिशु की हत्या के समकक्ष पाप का भागी होता है।

ऋतुस्नातां तु यो भार्या सन्निधै नोपगच्छति।

घोरायां भ्रूणहत्यायांयुज्यतेनात्र संशयः ।। स्वायंभुवः ।

परन्तु पुरूष रोगी, विदेशवासी, कैदी हो अथवा पत्नी वृद्धा, वन्यागर, दुराचारिणी, मृत्वत्सा, रज से वंचित तथा अतीव संततिवाली हो अथवा पर्व तिथियों में भोग नहीं करने से भ्रूणहत्या का दोष नहीं लगता है।

यद्यपि गर्भधारण के दिन स्त्री – पुरूष दोनों का चन्द्र बल वांछनीय है तथापि स्त्री चन्द्र बल विशेषावश्यक है । तद्दिन तीनों गण्डान्त, श्राद्ध का पूर्व दिन या मूल, मघा, रेवती नक्षत्र संक्रान्ति, व्यतिपात, वैधृति, ग्रहण सन्ध्या तथा दिन का समय सर्वथा त्याज्य है।

परं च पुरूष को चाहिये कि नव परिणता पत्नी के साथ रजोदर्शन के पूर्व संसर्ग न करें । उक्तं च –

प्रग्रजोदर्शनात्पत्नीं नेयाद् गत्वो पतत्यधः।

व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवांप्नुयात्।। – विष्णुधर्मोत्तर।

गर्भाधान की निष्पत्ति के अनन्तर निद्रावस्थित होते समय पुरूष को मुख में से ताम्बूल, पलंग से पत्नी तथा मस्तक से माला, पुष्प तथा तिल प्रभृति का परित्याग कर देना चाहिये ।

पुंसवन संस्कार– यह प्रथम गर्भ स्थिति में ही निम्न कालशुद्धि में करना चाहिये। ज्योतिष शास्त्री के अनुसार निम्नक मुहूर्त्तों में पुंसवनं संस्कार करना चाहिये –

मास – गर्भधारण से तृतीय मास

तिथि – 1 कृष्ण पक्ष, 2,3,5,7,10,11,12,13 शु. ।

वार – सूर्यवार, मंगलवार एवं गुरूवार

नक्षत्र – अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य 1, मघा, तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, हस्त, मूल, अनुराधा, पूर्वाभाद्रपद, श्रवण एवं रेवती ।

लग्न – सामान्य लग्नं शुद्धि उपलब्ध होने पर 2,5,6,8,9,11,12 आदि अन्यतम राशि लग्न।

मुहूर्तचिन्तामणि में आचार्य रामदैवज्ञ ने संस्कार प्रकरण में पुंसवन संस्कार के बारें में लिखते है –

पूर्वोदितैः पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा।

मासेऽष्टमें विष्णुविधातृजीवैर्लग्नें शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे।।

अर्थ – गुरू, रवि और भौमवासरों, मृगशिरा, पुष्यु, मूल, श्रवण, पुनर्वसु तथा हस्त नक्षत्रों में रिक्ता 4,9,14 अमावस्या,, द्वादशी षष्ठी और अष्टमी तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में गर्भमासपति के बलवान रहने पर आठवें अथवा छठें मास में शुभग्रहों के केन्द्र 1,4,7,10 एवं त्रिकोण 5,9 भावों में स्थित रहने पर तथा पापग्रहों के 3,6,11 भावों में जाने पर पुंसवनं संस्कार तीसरे मास में करना चाहिये । इसके अनन्तर आठवें मास में श्रवण, रोहिणी और पुष्यु नक्षत्रों में शुभलग्न में अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर गर्भिणी को भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिये।

विशेष – पुंसवन संस्कार सीमन्तोन्नयन से पूर्व होता है इसका मुख्य उद्देश्य है – गर्भ में पुरूष जातक हेतु संस्कार करना। पुंसवन का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ भी यही है। पुमान सूयतेऽनेन कर्मणेति पुंसवनम्। गर्भस्थ शिशु का पुत्र अथवा पुत्री सम्बन्धी विभाजन तीसरे मास में हो जाता है। अतः पुंसवन संस्कार तीसरे मास में ही युक्तिसंगत भी है ।

सीमन्तोन्नयन संस्कार –

यह तृतीय संस्कार है, जो विवाहानन्तर प्रथम गर्भ स्थिति के अवसर पर ही करणीय है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सीमन्तोन्नयन संस्कार

मास – गर्भधारण से 6,8 वें मास में जब मासेश्वरर निर्बल, अस्त या नीचस्थि न हो।

तिथि – शुक्ला 2,3,5,7,10,11,13।

वार – सूर्यवार, मंगलवार एवं गुरूवार।

नक्षत्र – मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्यव, हस्त,, मूल, श्रवण।

लग्न – 1,3,5,7,9,11 आदि राशि लग्न या राशि नवांश लग्न। पाप ग्रहों की लग्नस्थ पर दृष्टि हो और सामान्य लग्नशुद्धि प्राप्त हो।
मुहूर्तचिन्तामणि में सीमन्तसंस्कार –

जीवार्कारदिने मृगेज्यतनिर्ऋतिश्रोत्रादितिब्रघ्नभैः ।
रिक्तामार्करसाष्टवर्ज्योतिथिभिर्मासाधिपे पीवरे ।।
सीमन्तोऽष्टमषष्ठमासि शुभदैः केन्द्रत्रिकोणे खलैः
र्लाभरित्रिषु वा ध्रुवान्त्यसदहे लग्ने च पुंभाशके ।।

अर्थ – गुरू, रवि और भौमवासरों, मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु तथा हस्त नक्षत्रों में रिक्ता 4,9,14 अमावस्या,, द्वादशी षष्ठी और अष्टमी तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में गर्भमासपति के बलवान रहने पर आठवें अथवा छठें मास में शुभग्रहों के केन्द्र 1,4,7,10 एवं त्रिकोण 5,9 भावों में स्थित रहने पर तथा पापग्रहों के 3,6,11 भावों में जाने पर सीमन्त, संस्कार शुभ होता है।

विमर्श – सीमन्तं संस्कार गर्भ का संस्कार है। गर्भ में शिशु की स्थिति एवं विकास में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित न हो इसी उद्देश्य से यह संस्कार किया जाता है। क्योंकि गर्भस्थ शिशु के शिर एवं शरीर में रोम की उत्पत्ति गर्भ से छठें मास में होती है। सीमन्त् का अर्थ भी केश ही होता है। अतः यह केश संस्कार ही है। गर्भ में मासों के अनुसार शिशु का विकास क्रम इस प्रकार है –

कललघनाऽवयवास्थित्व करोमस्मृतिसमुद्भवः।

प्रथम मास में रक्तसंचय, द्वितीय में पिण्ड रूप, तृतीय में अंगनिर्माण, चतुर्थ में हड्डी, पॉचवें में चर्म, छठे मास में रोम, सातवें में स्मृति, आठवें और नवम मास में शिशु का शारीरिक विकास होता है।

गर्भकालिक स्थिति में तृतीय मास भी महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि तीसरे मास में ही अंगों की उत्पत्ति होती है तथा कन्या अथवा पुत्र का निर्णय हो जाता है। अतः तीसरे मास में पुंसवन नामक संस्कार का विधान बताया गया है। यद्यपि कुछ आचार्यों ने पुंसवन और सीमन्त दोनों संस्कामरों को एक साथ करने के लिये कहा है –

सीमन्तोन्नैयनस्योक्तनतिथिवारभराशिषु ।
पुंसवं कारयेद्विद्वान् सहैवेकदिनेऽथवा ।।

नामकरण संस्कार

नामाखिलस्य जगतः व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः ।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म ।।

उपर्युक्त वचनानुसार मनुष्य के नाम की सार्वभौमिकता का यह स्तर होने के कारण सूतक समाप्ति पर कुल देशाचार के अनुरूप 10,12,13,16,19,22 वें दिन नामकरण संस्कार करना चाहिये। प्रकारान्तरेण, विप्र को 10 या 12 वें दिन, क्षत्रिय को 13 वें दिन, वैश्य को 16 या 20 वें दिन तथा शूद्र को 30 वें दिन बालक का नामकरण संस्कार करना चाहिये। नामकरण पिता या कुल में वृद्ध व्यक्ति के द्वारा होना चाहिये। पिता कुर्यादन्योः वा कुलवृद्धः।।

तिथि – 1 कृ. 2,3,7,10,11,13 शु.।

वार – चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार तथा शुक्रवार।

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती ।

लग्न् – 2,4,6,7,9,12 लग्न। जब लग्न अष्टम और द्वादश भाव में शुद्ध हो 2,3,5,9 वें चन्द्रमा 3,6,11 वें पापग्रह और अन्यत्र शुभ ग्रह हो।

मुहूर्तचिन्तामणि में नामकरण संस्कार

तज्जात्कर्मादि शिशोर्विधेयं पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेऽह्नि ।
एकादशे द्वादशकेऽपि घस्रे मृदुध्रुवक्षिप्रचरोडुषु स्यातत् ।।

अर्थ – अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या आदि पर्व संज्ञक एवं रिक्ता संज्ञक 4,9,14 तिथियों को

छोड़कर शेष तिथियो में शुभ दिनों में जन्मे से ग्यारहवें अथवा बारहवें दिन मृदु – ध्रुव–क्षिप्र और चरसंज्ञक मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिष नक्षत्रों में नवजात शिशु का जातकर्म और नामकरण संस्कार करना चाहिये ।

विमर्श – जातकर्म सन्तान उत्पन्न होने के बाद जातक की श्री वृद्धि एवं ग्रहदोष निवारण हेतु किया जाता है। मनु ने लिखा है कि जातक के जन्म के तुरन्त बाद तथा नालच्छेदन के पूर्व जातकर्म करना चाहिये।

प्राङ्नाभिवर्द्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते ।।

जन्म समय में तत्काल ग्रहशान्ति की जा सकती है। क्योंकि सूतक का आरम्भ नालच्छेदन से होता है। जैमिनि ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है –

यावन्नछिद्यते नालं तावन्नाप्नोंति सूतकम् ।
छिन्ने नाले ततः पश्चात् सूतकं तु विधीयते ।।

जातकर्म का प्रयोजन –

जातकर्म क्रियां कुर्यात् पुत्रायुः श्रीविवृद्धये ।
ग्रहदोषविनाशाय सूतिकाऽशुभविच्छिदे ।।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि प्राचीन काल में हमारा प्रत्येक कार्य संस्कार से आरम्भ होता था। उस समय संस्कारों की संख्या भी लगभग चालीस थी। जैसे–जैसे समय बदलता गया तथा व्यस्तता बढती गई तो कुछ संस्कार विलुप्त होते चले गये। इस प्रकार समयानुसार संशोधित होकर संस्कारों की संख्या निर्धारित होती गई। गौतम स्मृति में चालीस प्रकार के संस्कारों का उल्लेख है। महर्षि अंगिरा ने इनका अंतर्भाव पच्चीस संस्कारों में किया। व्यास स्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन हुआ है। हमारे धर्मशास्त्रों में भी मुख्य रूप से सोलह संस्कारों की व्याख्या की गई है। इनमें पहला गर्भाधान संस्कार और मृत्यु के उपरान्त अन्त्येष्टि अंतिम संस्कार है। गर्भाधान के बाद पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण ये सभी संस्कार नवजात का दैवी जगत् से संबंध स्थापना के लिये किये जाते हैं। दैवी जगत् से शिशु की प्रगाढ़ता बढ़े तथा ब्रह्माजी की सृष्टि से वह अच्छी तरह परिचित होकर दीर्घकाल तक धर्म और मर्यादा की रक्षा करते हुए इस लोक का भोग करे यही इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है।

3.6 पारिभाषिक शब्द

संस्कार – सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से संस्कार शब्द का निर्माण हुआ है। संस्कार का एक और अर्थ शुद्धिकरण भी है।

गर्भाधान – सन्तानोपत्ति हेतु स्त्री–पुरूष द्वारा किया जाने वाला संस्कार।

पुंसवन – गर्भ से तीसरे मास में किया जाने वाला संस्कार।
सीमन्तोन्नयन – गर्भ में शिशु रक्षार्थ किया जाने वाला संस्कार।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ख
3. ग
4. ख
5. क

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मुहूर्तचिन्तामणि
संस्कार विमर्श
कर्मकलाप

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गर्भाधान संस्कार से आप क्या समझते है। स्पष्ट रूप से लिखिये।
2. पुंसवन संस्कार कब किया जाता है। समझाते हुए लिखिये।
3. सीमन्तोन्नयन का विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई : 4 जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन एवं कर्णवेध मुहूर्त

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 जातकर्म संस्कार
    4.3.1 समय
    4.3.2 तिथिनिर्णय
    4.3.3 नक्षत्रनिर्णय
    4.3.4 लग्नादि विचार
    4.3.5 जातकर्म करने का फल व प्रयोजन
4.4 नामकरण मुहूर्त
    4.4.1 नामकरण मुहूर्त का प्रयोजन
    4.4.2 अभ्यासार्थ प्रश्न
4.5 अन्नप्राशन मुहूर्त
    4.5.1 समय
    4.5.2 तिथि तथा वार का निर्ण
    4.5.3 नक्षत्रविचार
    4.5.4 लग्नविचार
        4.5.4.1 लग्न से ग्रहों की अपेक्षित स्थिति
        4.5.4.2 लग्न से ग्रहों की स्थिति का फल
4.6 कर्णवेध मुहूर्त
    4.6.1 त्याज्य विषय
    4.6.2 प्रशस्त समय
    4.6.3 कर्णभेद मुहूर्त के संक्षेप में
    4.6.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

विगत इकाई में आपने जन्म के पूर्व के संस्कारों का अध्ययन किया है। इस इकाई में गर्भाधान संस्कार, पुरुष संतानप्राप्ति के लिये किये जाने वाला पुंसवन संस्कार, गर्भसंरक्षण हेतु किये जाने वाला सीमन्तोन्नयन संस्कारों के लिये विहित समय का विचार किया गया है।

प्रस्तुत इकाई में जन्म के उपरान्त आचरणीय प्रथम चार संस्कारों के मुहूर्तों का विचार प्रस्तुत है। मुहूर्त के लक्षण के अनुरुप ये मुहूर्त तिथि नक्षत्र आदि विभिन्न अंगों के पृथक पृथक विचार के साथ प्रस्तुत किये गये है। अध्येताओं की सुविधा को ध्यान में रखते हुये मुहूर्त के मुख्य विषयों को तालिकाओं में भी प्रस्तुत किया गया है।

4.2 उद्देश्य

1. जातक के जन्म लेने के बाद गर्भ के अन्दर शिशु के रहने के कारण उत्पन्न दोष, बालग्रहादि उपशमन, जन्मप्राप्त शिशु की शारीरिक पुष्टि, आयुवृद्धि के लिये जो संस्कार विहित है उनका परिचय इस इकाई से हो सकेगा।
2. इन संस्कारों का वर्णन संस्कार से सम्बन्धित इकाई में प्रस्तुत है। प्रस्तुत इकाई का मुख्योद्देश्य उन संस्कारों के लिये निर्दोष समय का चयन करने से है।
3. इस इकाई के अध्ययन से पाठक प्रारम्भिक शुद्धीकरण से सम्बन्धित चार संस्कारों के लिए मुहूर्त का निर्णय कर सकेगा।

4.3 जातकर्म संस्कार

शिशु के जन्म लेने के बाद यह पहला संस्कार है। इसकी आवश्यकता के बारे में हम लोग षोडशसंस्कारों के अध्ययन के समय में जाना है। इससे पहले की इकाई में ही षोडश संस्कारों का वर्णन है। यह संस्कार शिशु के जन्म के बाद नाभिच्छेदन से पहले होता है। नाभिच्छेदन के बाद सूतक लगने के कारण यह संस्कार सूतक समाप्त होने के बाद ही हो सकता है। नाभिच्छेदन के पहले जातकर्म न होने की स्थिति में सूतक के बाद इसे करने का निर्देश है। नाभिच्छेदन के पहले इस संस्कार को करने के लिये कोई मुहूर्त की आवश्यकता नहीं है। इसका मुख्य कारण है उस समय का निर्दिष होना। उस समय के बन्धन के कारण इसमें मुहूर्त का विचार नहीं किया जाता है। इसका अधिक विवरण संस्कारवर्णन के समय में हम पढ़ चुके है।

4.3.1 समय

शास्त्र में बताया गया पहला समय है नाभिच्छेदन का पूर्व समय। अर्थात् जन्म के बाद नाभिच्छेदन के पहले इस संस्कार को करना चाहिये। इस के अभाव में सूतक के समाप्त होने के बाद इसे ग्यारहवें वा बारहवें दिन करना है। जैसे रामदैवज्ञ कहते है –

तज्जातकर्मादि शिशोर्विधेयं पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेहिन।
एकादशे द्वादशकेपि घस्रे मृदुध्रुवक्षिप्रचरोडुषु स्यात्।।

अर्थात् जातकर्मादि संस्कार जन्म से ग्यारहवें व बारहवें दिन करना चाहिये। ग्यारहवें व बारहवें दिन भी कारणान्तर से नहीं हो पाता है तो सूतक समाप्ति के बाद वही जन्मुहूर्त जिस दिन आता है उस दिन इस कार्य को करना चाहिये। जन्मुहूर्त से यह तात्पर्य है कि जन्म कालिक नक्षत्र जन्म के बाद पुनः पहली बार जिस दिन आता है उस दिन। उदाहरण के लिये जातक का जन्म स्वाती नक्षत्र में हुआ और नाभिच्छेदन के पूर्व अथवा एकादश या द्वादश दिन में यह कार्य नहीं हो पाता है तदा पुनः स्वाती नक्षत्र जिस दिन लगता है उस दिन इस संस्कार को करना है। इस सन्दर्भ में नारदसंहिता में उद्धृत श्लोक प्रमाण है।

तस्मिन् जन्ममुहूर्तें तु सूतकाले तथा शिशो।
जातकर्म च कर्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम।।

इस कथन का सारांश यह है कि शिशु के जन्म के तुरन्त बाद अथवा ग्यारहवें या बारहवें दिन, अथवा पुनः जन्म नक्षत्र प्राप्त होने पर शिशु का जातकर्म संस्कार करना चाहिये। यही जातकर्म मुहूर्त के लिये समय निर्णय का विधान है।

4.3.2 तिथिनिर्णय

पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेहिन

अर्थात् पर्वदिन तथा रिक्ता तिथि को छोड़कर अन्य तिथियों में जातकर्म संस्कार शुभ माना जाता है। चतुर्देशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा और सूर्य के संक्रमण के दिनों को पर्व कहते है। यहां दी गयी तिथियों की हमें जानकारी है। सूर्य एक राशि से जिस दिन दूसरी राशि में प्रवेश करता है उस दिन को संक्रमण दिन कहते है और दूसरी राशि में प्रवेश करने को ही संक्रान्ति कहा जाता है। गर्भाधान मुहूर्त में हम इस बात की जानकारी प्राप्त किये है।

4.3.3 नक्षत्रनिर्णय

मृदुध्रुवक्षिप्रचरोडुषु स्यात्

मृदु संज्ञक नक्षत्र, ध्रुवसंज्ञक, क्षिप्रसंज्ञक तथा चरसंज्ञक नक्षत्रों में जातकर्म शुभ होता है। मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा नक्षत्र मृदु संज्ञक है, तीनों उत्तरा और रोहिणी ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र है, हस्त, अश्विनी और पुष्प क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र है, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा चर संज्ञक नक्षत्र है। इन नक्षत्रों में यह संस्कार शुभप्रद होता है।

वसिष्ठ संहिता में भी कहा गया है –

मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु चारिक्तपर्वाख्यदिनेषु कार्यम्।
शुभग्रहाणां दिनलग्नवार्गे तज्जातकर्म त्वथ नामधेयम्।।

ये दोनों उद्धरण ऊपर के वाक्यों को बल दे रहे हैं साथ ही जातकर्म के लिये उपयुक्त लग्नादि का भी विचार प्रस्तुत कर रहे है।

4.3.4 लग्नादि विचार

शुभ ग्रहों के दिन में, शुभ ग्रहों के लग्न में तथा शुभ ग्रहों के वर्ग में जातकर्म शुभ

होता है। बुध, गुरु, शुक्र तथा चन्द्रमा शुभ ग्रह है। इनके दिनों में अर्थात् सोमवार, बुधवार, गुरुवार व शुक्रवार के दिन जातकर्म करना चाहिये। शुभ ग्रहों के लग्न में अर्थात् शुभ ग्रहों की जो राशि है उन राशियों के लग्न स्थान में रहने पर जातकर्म संस्कार करना चाहिये। षड्वर्ग, सप्तमवर्ग, दशमवर्ग और षोडशवर्ग के नाम से वर्ग चार प्रकार के होते है। इनका विवरण होराशास्त्र के प्रारम्भिक दशा में वर्णित है। राशि, होरा, द्रेष्काण, नवांश आदि राशि व भावों के जो विभाजन है उसे ही वर्ग कहा जाता है। लग्न के ये वर्ग शुभ ग्रहों की राशियों में रहने पर जातकर्म नामक संस्कार करना चाहिये। शुभ वर्ग कहने का यही आशय है।

4.3.5 जातकर्म करने का फल व प्रयोजन

यद्यपि संस्कारों के वर्णन के अवसर पर हम जातकर्म के प्रयोजन के बारे में अध्ययन किये है तथापि प्रसंगवश यहां पर कुछ जानकारी प्रस्तुत है। अभी तक जातकर्म नामक संस्कार को करने के लिये तिथि, नक्षत्र, लग्न दिन आदि का विचार किया गया है। इन सभी विचारों का आशय यह है कि जातक ग्रहदोष आदि से मुक्त होकर शारीरिक पुष्टि के साथ रहे तथा उसकी आयु लम्बी रहे। इस संस्कार के प्रयोजन में इन्हीं शब्दों का प्रयोग किये है महर्षि भृगु अपने इन वचनों में –

जातकर्म क्रियां कुर्यात्पुत्रायुः श्रीविवृद्धवे।
ग्रहदोषविनाशाय सूतिकाशुभ विच्छिदे।।
कुमारग्रहनाशाय पुसां सत्वविवृद्धवे।

4.3.6 जातकर्म मुहूर्तक विषय संक्षेप में

समय– 1. नाभिच्छेदन के पहले
2. ग्यारहवें वा बारहवें दिन
3. जन्ममुहूर्त में

तिथि – 1. पर्व एवं रिक्त संज्ञक तिथियों को छोड़कर अन्य तिथियों में

नक्षत्र – 1. मृदु संज्ञक नक्षत्रों में
2. ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में
3. शुभग्रहों के वर्ग में

फल –
1. पुत्रवृद्धि, आयुवृद्धि, श्री वृद्धि
2. ग्रह दोष नाश हेतु
3. सूतिकाशुभ विच्छेद
4. कुमारग्रहनाश
5. सत्त्ववृद्धि

4.4 नामकरण मुहूर्त

जातकर्म और नामकरण संस्कार एक साथ ही किया जाता है। इसी कारण प्रायः सभी आचार्य इनके लिये मुहूर्त का वर्णन युगपत् ही किये है। जातकर्म संस्कार के मुहूर्त के सन्दर्भ में ऊपर रामदैवज्ञ का जो वचन प्रस्तुत किया गया है उसमें लिखा हुआ है ''तज्जातकर्मादि''। यहां आदि कहने का आशय यही है कि जातकर्म नामकरण आदि शुभ कार्य व संस्कारों को इस प्रकार वर्णित काल में ही करना चाहिये।

महर्षि नारद का इस सन्दर्भ में कहना है ''सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम्।'' अर्थात् अपने कुल की परम्परा के अनुसार सूतक के समाप्ति के बाद नामकरण संस्कार करना चाहिये। सारसंग्रह में इस प्रकार दिया गया है–

एकादशेहिन विप्राणां क्षत्रियाणां त्रयोदशे।
वैश्यानां षोडशे नाम मासान्ते शूद्रजन्मनाम्।।

मनु के अनुसार

नामधेयं दशंम्यां तु द्वादश्यां चास्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जातकर्म व नामकरण संस्कार के मुहूर्त निर्णय एक जैसे ही है। अतः जातकर्म के सन्दर्भ में विचार किये गये अंशों को उसी तरह नामकरण संस्कार में भी करना चाहिये।

4.4.1 नामकरण मुहूर्त का प्रयोजन

यद्यपि अन्य स्थान में हम संस्कारों के विस्तृत वर्णन का अध्ययन किये हुये है तथापि प्रसंगवश इनका प्रयोजन उनके कालनिर्णय के साथ पुनरावृत्त करने पर अवबोध सम्यक होता है। अतः संक्षेप में शिशु का नाम रखने का क्या महत्व है उसे आचार्यों के वचनों से पुनः स्मरण करते है।

नमाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाग्नैव कीर्ति लभते मुनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलं नामकर्म।।

कार्यासिद्धि में भाग्योदय नाम से ही होता है। नाम से ही व्यक्ति कीर्ति व प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। अतः जातक का नाम रखना अत्यन्त प्रशस्त व आवश्यक है। इस प्रकार के प्रशस्त कार्य के लिये शुभ समय व निर्दोष समय व मुहूर्त का निर्णय करना अत्यन्त आवश्यक है जिसका पूर्ण विवरण हम यहाँ प्राप्त किये है। नामकरण मुहूर्त का यहाँ पर कोई वर्णन नहीं दिया गया है। जातकर्म एवं नामकरण संस्कार के मुहूर्त में कोई अन्तर नहीं रहना ही इसका कारण हैं।

4.4.2 नामकरण मुहूर्त के अंश संक्षेप में

समय – जातकर्म के साथ नामकरण मुहूर्त होता है अतः– जातकर्म मुहूर्त में कहा गया सभी विषय में भी लागू होते है।

1. नारद महर्षि के अनुसार सूतक के अन्त में स्वकुल के आचार के अनुसार करना चाहिए।

2. सारसंग्रह में – ब्राह्मणों का ग्यारहवें दिन 13वें दिन शत्रियों का, षोडशवें दिन वैश्यों तथा मास के अन्त में शूद्रों का नामकरण शुभ माना गया है।

3. मनु के अनुसार – 10वें दिन, अथवा 12वें दिन अथवा शुभ तिथि में, अथवा शुभ मुहूर्त में अथवा गुणों से युक्त शुभ नक्षत्र में नामकरण करना चाहिए।

4.4.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जन्म के बाद प्रथम संस्कार

   क. चौल ख. अन्नप्राशन

   ग. नामकरण घ. जातकर्म

2. इस तिथि में जातकर्म शुभ नहीं होता

   क. नन्दा संज्ञक ख. भद्रा संज्ञक

   ग. जया संज्ञक घ. रिक्ता संज्ञक

3. इस संज्ञक नक्षत्रों में जातकर्म शुभ नहीं है

   क. मृदु संज्ञक ख. क्षिप्रसंज्ञक

   ग. लघुसंज्ञक घ. ध्रुवसंज्ञक

4. जातकर्म इसीलिए करना चाहिए

   क. आयु और श्री की वृद्धि के लिए ख. धन धान्य की वृद्धि के लिए

   ग. भाग्य वृद्धि के लिए घ. सन्तान वृद्धि के लिए

5. नामकरण कब करना चाहिए

   क. जातकर्म के साथ ख. विवाह के समय

   ग. चौल के साथ घ. कर्णवेध के साथ

6. ''सूतकान्ते नामकरणं विधेय स्वकुलोचितम् नारद का वचन है।
7. कार्यसिद्धि में भाग्योदय नाम से होता है।
8. मास के अन्त में शूद्र का नाम करण शुभ माना गया है।
9. कुमारग्रहनाश जात कर्म का एक उद्देश्य है।
10. घस्र दिन को कहते है।

4.5 अन्नप्राशन मुहूर्त

रामदैवज्ञ अपनी मुहूर्त चिन्तामणि के संस्कार प्रकरण में इस प्रकार लिखते हैं –

रिक्तानन्दाष्टदर्श हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारां
ल्लग्नं जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च।
हित्वा षष्ठात्समे मास्यथा हि मृगदृशां पंचमादोजमासे
नक्षत्रैः स्यात्थिराख्यैः समृदुलघुचरैर्बालकान्नशनं सन्।।

4.5.1 समय

षष्ठात्समे मास्यथ हि मृगदृशां पंचमादोजमासे

बालक के लिये छठे माह से सम मासों से शुभ होता है। अर्थात् छठे मास में अथवा आठवें में अथवा दसवें में अन्नप्राशन करना शुभ है। बालिकाओं के लिये पांचवे मास से विषय संख्यक मासों में अन्नप्राशन कराना चाहिये।

4.5.2 तिथि तथा वार का निर्णय

रिक्तानन्दाष्टदर्श हित्वा, सौरिभौमार्कवारान् हित्व

चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी रिक्ता तिथि है, प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी नन्दा संज्ञक तिथिया है, अष्ट अष्टमी, दर्श अमावस्या इन तिथियों को छोड़कर अन्य तिथियाँ अन्नप्राशन शुभकर होता है।

महर्षि नारद के अनुसार–

रिक्ता तिथिक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीमपि। त्यक्त्वान्यतिथयः श्रेष्ठाः प्राशने शुभवासराः।।

कश्यप संहिता में –

द्वादशीमष्टमी रिक्ता नन्दां चैव दिनक्षयम्। सूर्यर्किभौमवारांश्च त्यक्त्वान्यशुभवासरे।।

4.5.3 नक्षत्रविचार

स्थिराख्यैः समृदुलघुचरैः

स्थिरसंज्ञक, मृदु संज्ञक, लघु संज्ञक तथा चर संज्ञक नक्षत्रों में अन्नप्राशन कराना चाहिये। स्थिर संज्ञक नक्षत्र तीनों उत्तरा और रोहिणी, मृदु संज्ञक नक्षत्र मृगशिरा रेवती चित्रा अनुराधा, लघु संज्ञक हस्त अश्विनी पुष्य, तथा चर संज्ञक नक्षत्र स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण घनिष्ठा, शतभिषा है।

4.5.4 लग्नविचार

जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिक च हित्वा

जन्मलग्न और जन्मराशि से अष्टम में स्थित राशि और उनके नवांश से युत राशि के लग्न में रहने पर उनका त्याग करना चाहिये। इसका यह तात्पर्य है –बालक की जन्मराशि से अष्टमराशि लग्न में रहने पर जन्म लग्न से अष्टम राशि लग्न स्थान में रहने पर मुहूर्त लग्न की नवांश राशि जन्मलग्न व जन्मराशि से अष्टम राशि होने पर अन्नप्राशन करना शुभप्रद नहीं होता है। अतः इन राशियों के लग्न में रहने पर अन्नप्राशन नहीं करना चाहिये। मीन मेष और वृश्चिक राशि के लग्न में रहने पर भी अन्नप्राशन नहीं करना चाहिये।

कश्यप संहिता में –

जन्मराशिविलग्नाभ्यां नैधनेशे च वर्जयेत्।

जगन्मोहन में कश्यक के अनुसार –

गोश्वकुम्भतुलाकन्या सिंहकर्किनृयुग्मगाः।
शुभदाराशयश्चैते न मेषझषवृश्चिकाः।।

4.5.4.1 लग्न से ग्रहों की अपेक्षित स्थिति

लग्न के बली रहने पर ही अभीष्टसिद्धि होती है। ग्रहों की स्थिति से ही लग्न बली हो सकता है। साथ ही विभिन्न भाव विभिन्न विषयों को व कार्य के विभिन्न आयामों को

प्रभावित करते है। अतः यह वक्ष्यमान विषय मुहूर्त बल के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।
आचार्य राम दैवज्ञ के अनुसार –

केन्द्रत्रिकोणसहजेषु शुभैः खशुद्धे लग्ने त्रिलाभरिपुगैश्च वदन्दि पापैः।
लग्नाष्टषष्ठरहितं शशिनं प्रशस्तं मैत्राम्बुपानिलजनुर्भमसच्च केचित्।।

मुहूर्त लग्न से केन्द्र अर्थात् 1, 4, 7, 10 स्थानों में, त्रिकोण अर्थात् पंचम एवं नवम स्थानों में, सहज अर्थात् तृतीय स्थान में शुभ ग्रहों के रहने पर, दशमभाव शुद्ध होने पर, त्रिलाभरिपुगैः अर्थात् तीसरे ग्यारहवें एवं छठे स्थानों में पापग्रहों के रहने पर, चन्द्रमा के लग्न, आठवें और छठे स्थानों में न रहने पर अन्नप्राशन शुभ होता है। यहाँ पर एक विषय को ध्यानपूर्वक समझना है। केन्द्र स्थानों में दशम स्थान भी एक है। किन्तु दशमभाव की शुद्धि की आवश्यकता यहाँ पर दर्शायी गयी है। शुद्धि से तात्पर्य है उस स्थान में किसी भी प्रकार के ग्रह का न रहना। अतः केन्द्र स्थानों में शुभ ग्रह के रहने पर जो शुभ फल बताया गया है वह दशम में स्थित ग्रह के लिये नहीं है। दशम में किसी भी ग्रह का रहना अन्नप्राशन के लिये शुभ नहीं है। अनुराधा, शतभिषा, स्वाती एवं जन्मनक्षत्रों को कुछ आचार्य निन्दित मानते है। किन्तु बहुमत का आचरण करना योग्य है।
दशमशुद्धि के सन्दर्भ में प्रयोगपारिजात में –

दशमस्थानगान् सर्वान् वर्जयेन्मतिमान्नरः।
अन्नप्राशनकृत्येषु मृत्युक्लेशभयावहान्।।

अर्थात् दशमस्थान में ग्रहों के रहने पर अन्नप्राशन नहीं करना चाहिये। क्योंकि दशमस्थ ग्रह मृत्युभय, क्लेश एवं भीति कारक होते है।

4.5.4.2 लग्न से ग्रहों की स्थिति का फल

अन्नप्राशन मुहूर्त के लग्न से विभिन्न स्थानों में विभिन्न ग्रहों के रहने पर उत्पन्न होने वाला फल रामदैवज्ञ के मतानुसार इस प्रकार है –

क्षीणेन्दुपूर्णचन्द्रेज्यज्ञभौमार्कार्किभार्गवैः।
त्रिकोणव्ययकेन्द्राष्टस्थितैरुक्त फलं ग्रहैः।।
त्रिकोणव्ययकेन्द्राष्टस्थितैरुक्तं फलं ग्रहैः।।
भिक्षाशी यज्ञकृद्दीर्घजीवी ज्ञानी च पित्तरुक्।
कुष्ठी चान्नक्लेशवातव्याधिमान् भोगर्भागेति।।

अन्नप्राशन के लग्न से 9, 5, 12, 1, 4, 7, 10, 8 स्थानों में से किसी भी स्थान पर क्षीण चन्द्र हो तो अन्नप्राशन करने वाला बालक भिक्षाशी होता है। अर्थात् वह बालक भीख का अन्न खाने वाला होगा। पूर्ण चन्द्र के होने पर यज्ञ करने वाला, बृहस्पति से दीर्घजीवी, बुध से ज्ञानवान्, मंगल से पित्तरोगी, सूर्य से कुष्ठरोगी, शनि से वातरोगी, शुक्र से नाना प्रकार के भोगों को भोगने वाला होता है।

4.5.5 अन्नप्राशन संक्षेप में –

समय– 1. बालक के लिऐ छठे से सममास (6 – 8 – 10 – 12 ....)

2. बालिका के लिये पंचम से विषय मास (5 – 7 – 9 – 11 ....)

तिथि 1. रिक्ता तिथि (4, 9, 14 दोनों पक्षों का)

2. नन्दा तिथि (1, 6, 11 दोनों पक्षों का)

3. अष्टमी और अमावस्या

इन तिथियों को छोड़कर अन्य तिथियों में शुभ है

वार – शनि, मंगल और रविवार को छोड़कर अन्य वारों में शुभ होता है।

नक्षत्र –1. स्थिरसंज्ञरक

2. मृदुसंज्ञक

3. लघुसंज्ञक

4. चरसंज्ञक

लग्न के सन्दर्भ में –

1. मीन मेष और वृश्चिक को छोड़कर अन्य लग्नों में
2. जातक का जन्मलग्न से अष्टमराशि लग्न स्थान में अथवा लग्न के नवांश में न रहने पर
3. जातक का जन्मराशि से अष्टमराशि लग्न स्थान में व लग्न के नवमांश में न रहने पर
4. लग्न से 1, 4, 7, 10, 3, 5, 9 स्थान शुभग्रहयुत रहने पर
5. दशमभाव शुद्ध रहने पर
6. 1, 6, 8, में चन्द्रमा के न रहने पर

4.6 कर्णवेध मुहूर्त

रोगों का निरोध करना इस संस्कार का मुख्य आशय है। इस संस्कार के लिये योग्य समय का निर्णय मुहूर्तचिन्तामणि में इस प्रकार है

हित्वैतांश्चैत्रपौषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां
युग्माब्दं जन्मतारामृतुमुनिवसुभिः सम्मिते मास्यथो वा।
जन्माहात्सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारे–
थौजाब्दे विष्णुयुग्मादितिमृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः।।

4.6.1 त्याज्य विषय

कर्णवेध संस्कार के लिये यहां प्रस्तुत किये गये समय के विभागों का त्याग करना चाहिये। चैत्रमास, पौषमास, अवमतिथि, हरिशयनकाल, जन्ममास, रिक्तातिथि का त्योग करना चाहिये। मास संक्रान्त्युपलक्षित होता है। अतः चैत्र का अर्थ है मीनार्क युक्त चैत्र। इसका यह अर्थ है सूर्य के मेष में प्रवेश करने के उपरान्त चैत्रमास भी प्राशस्त होता है। इसी तरह पौषमास का तात्पर्य धनु में स्थित सूर्य से है। अतः जब तक सूर्य धनु राशि में रहता है तब

तक पौषमास वर्जित है। उसके उपरान्त पौषमास का भी ग्रहण कर सकते है। इनकी प्रामाणिकता नीचे दिये गये व्यासमहर्षि के वचन से स्पष्ट है।

व्यास के अनुसार –

कार्तिक पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेपि वा।
कर्णवेध प्रशंसन्ति शुक्ले पक्षे शुभेहनि।।

अतः कर्णवेध संस्कार में मीनार्कयुत चैत्रमास का तथा धनुयुत पौषमास का त्याग करना चाहिये। अवमतिथि अर्थात् क्षयतिथि भी कर्णवेध के लिये उत्तम नहीं है। हरिशयनकाल में भी कर्णवेध संस्कार नहीं करना चाहिये। हरिशयन का प्रारम्भ हरिशयनेकादशी नाम से प्रसिद्ध आषाढ़ शुक्ल एकादशी को होता है तथा इसकी समाप्ति देवोत्थान एकादशी नाम से प्रसिद्ध कार्तीकशुक्ल एकादशी को होता है। इन दोनों एकादशी के अन्तराल में कर्णवेध संस्कार करना प्रशस्त नहीं माना गया है। जन्म समय से लेकर तीस दिन का जन्ममास होता है। इस समय में भी कर्णवेध शुभ नहीं है। रिक्ततिथियाँ है चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी। कर्णवेध में इन तिथियों का भी त्याग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जन्मतारा तथा जन्म से समवर्षों का भी त्याग करना चाहिये।

4.6.2 प्रशस्त समय

कर्णवेध संस्कार के लिये प्रशस्त काल इस प्रकार है। जन्म से छठे सातवें व आठवें मास में अथवा जन्मदिन से बारहवें व सोलहवें दिन में भी कर्णवेध प्रशस्त होता है। इस सन्दर्भ में वसिष्ठमुनि के वचन इस प्रकार है –

मासे षष्ठे सप्तमे वाष्टमे वा वेध्यौ कर्णौ द्वादशे षोडशेहिन। मध्ये चाहनः पूर्वभागे न रात्रौ

इन वचनों के अनुसार दिन के पूर्व भाग में यह संस्कार प्रशस्त है तथा रात्रि काल में इसका निषेध है।

4.6.3 कर्णभेद मुहूर्त के संक्षेप में –

त्याज्य –
1. चौत्र एवं पौषमास
2. अष्टम तिथि
3. हरिशयनकाल
4. जन्ममास
5. रिक्तातिथि
6. जन्मतारा
7. जन्म से समवर्ष
8. रात्रिकाल

ये सभी कर्णवेध में छोड़ना चाहिए।

4.6.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अन्नप्राशन बालिकाओं का किस मास में किया जाता है।
2. अन्नप्राशनकर्म किसे कहते है।

3. अन्नप्राशन में कौन तिथि वर्जित है।
4. अन्नप्राशन में नारद का क्या वचन है।
5. अन्नप्राशन में किन लग्नों को त्याग करना चाहिए।
6. अन्नप्राशन में किस स्थान की शुद्धि अपेक्षित है।
7. अन्नप्राशन लग्न में किन स्थानों पर क्षीणचन्द्र वर्जित है।
8. रोग का विरोध करना किस कर्म का मुख्य उद्देश्य है।
9. कर्णभेदके लिए उपयुक्त मास कौन है।
10. कर्णभेद दिन में अथवा रात्रि में प्रशस्त होता है।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.4.2 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. घ. जातकर्म 2. घ. रिक्ता संज्ञक 3. ग. लघुसंज्ञक
4. क. आयु और श्री की वृद्धि के लिये 5. क. जातकर्म के साथ
6. नारद 7. नाम 8. शूद्र
9. जातकर्म 10. दिन

4.6.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जन्म से विषम मासों में 2. पहली बार अन्न खिलाने को
3. रिक्ता संज्ञक तिथियाँ
4. रिक्ता तिथिक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीमपि। त्यक्त्वानतिथयः श्रेष्ठाः प्राशने शुभवासराः।।
5. जन्मराशि व लग्न से अष्टम लग्न तथा उसका नवांश, मीन, मेष, वृश्चिक लग्न
6. दशमस्थान 7. 9, 5, 12, 1, 4, 7, 20, 8
8. कर्णवेध 9. कार्तिक, पौष, चौत्र तथा फाल्गुन
10. दिन में

4.8 सारांश

जन्म के उपरान्त बालग्रहादि शान्ति, आयु तथा श्री वृद्धि तथा जातक के शारीरिक वृद्ध तथा पुष्टि को दृष्टि में रखते हुये जो तीन संस्कार किये जाते है उन्हें शैशव संस्कार कहते है। इनमें प्रथम है जातकर्म संस्कार। माता के गर्भ से बाहर निकला जातक गर्भ के अन्तर्गत मलिनादि से प्रभावित होने के कारण उसकी शुद्धि तथा आयु वृद्धि के लिये यह संस्कार का जाता है।

कर्म में नाम से भाग्योदय होता है। एक पहचान भी नाम से ही होता है। अतः जन्म लिये जातक को एक पहचान देने के लिये तथा उसका सभी कार्यों में सत्फल दिनाले की दृष्टि से जातक के माता और पिता उसको एक शास्त्र विहित नाम से अलंकृत करते है।

इसी संस्कार को नामकरण संस्कार कहते है। यह संस्कार का मुहूर्त का निर्णय जातकर्म के बराबर में ही है। अतः प्रायः इस संस्कार को जातकर्म संस्कार के साथ ही करते है।

गर्भ से बाहर निकला शिशु प्रारम्भिक अवस्था में मां के दूध पर ही निर्भर होता है। किन्तु कालक्रम में शरीर में वृद्धि के साथ साथ उसे दूध के अतिरिक्त अन्न की आवश्यकता होती है। इस अन्न को पहले बार देने के लिये एक शुभ समय की आवश्यकता होती है जिससे जातक जीवन भी समृद्ध अन्नवान तथा आरोग्य से युक्त हो। प्रथम बार देने वाला यह अन्न जातक को माँ के गर्भ से साथ में लाये हुये मलिनों से भी मुक्ति दिलाती है।

शरीर रोगों का आवास होता है। थोड़ा सा अवसर मिलते ही शरीर रोगों को आश्रय देना शुरू कर देता है। इस प्रकार सम्भावित रोगों को रोकने के लिये कर्णवेध संस्कार किया जाता है। अर्थात् जातक के कर्ण को सुवर्ण से वेध किया जाता है। माना जाता है कि कर्ण के उस स्थान में सुवर्ण के सम्पर्क से अनेक प्रकार के रोग शरीर में प्रवेश नहीं कर पाते है। शारीरिक स्वस्थता की दृष्टि में यह संस्कार शैशव संस्कारों में महत्वपूर्ण स्थान को प्राप्त करता है।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थकर्ता/सम्पादक	ग्रन्थ का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
रामदैवज्ञ	मुहूर्तचिन्तामणि	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	सन् 2000
श्री शिवराज	ज्योतिर्निबन्धः	आनन्दाश्रममुद्रणालय, पुण्यपत्तन	सन् 1919
विष्णुभट्ट	पुरुषार्थचिन्तामणि	निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई	सन् 1927
सरयू प्रसाद द्विवेदी	संग्रहशिरोमणि	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय	
कमलाकरभट्ट	निर्णसिन्धु	खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई	सन् 2010
काशीनाथ उपाध्याय	धर्मसिन्धु	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी	सन् 2007
डॉ. जयकृष्ण मिश्र	संस्काराणां पर्यालोचनम्	श्री जगन्नाथ संसद/विश्वविद्यालय, पुरी	सन् 2005
श्री हर्षनाथ	संस्कारदीपक	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी	सन् 2001
डॉ. भगवती सुदेश	संस्कारविमर्शः	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर	सन् 2008
कालिदास	कालामृतम्	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी	

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जातकर्म संस्कार की आवश्यकता आज की परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कीजिये
2. अन्नप्राशन संस्कार का वैद्यशास्त्रीय पक्ष क्या हो सकता है।
3. नामकरण से संबंधित आज की परम्परा पर एक प्रकाश डालिये।
4. कर्णवेध का प्रचलन आज किन प्रदेशों में देखने को मिलता है।
5. शैशव संस्कार किसे कहते है तथा उन संस्कारों के लिये शुभ समय का निर्णय कैसे किया जाता है।

खण्ड – 2
अन्य मुहूर्त्त विचार

इकाई – 1 चूड़ाकरण, विद्यारम्भ एवं उपनयन मुहूर्त

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 चूड़ाकरणसंस्कार का परिचय एवं प्रयोजन

1.3.1 चूड़ाकरणमुहूर्त्तविचार

(क) चूड़ाकरण में गुरू शुक्र का उदयास्त आदि विचार अभ्यास –प्रश्न

(ख) चूड़ाकरण में प्रशस्त वर्ष, मास, तिथि, वार, नक्षत्र आदि का –विचार

(ग) ज्येष्ठ सन्तान का ज्येष्ठ मास में मुण्डन का निषेध

(घ) माता के रजस्वला या गर्भवती रहने पर पुत्र के मुण्डन का निषेध

1.4 विद्यारम्भ

1.4.1 अक्षराम्भ मुहूर्त

1.4.2 विद्यारम्भ मुहूर्त

1.5 उपनयन

1.5.1 उपनयन में नित्य, काम्य एवं गौण काल तथा व्रात्य का लक्षण

1.5.2 उपनयन में गुरू (बल) शुद्धि–विचार

(क) उत्तम, मध्यम, एवं अधम गुरूशुद्धि

(ख) निन्दित एवं प्रशस्त गुरू का अपवाद

(ग) उपर्युक्त गुरूशुद्धि के अभाव में अष्टकवर्ग का महत्व

(घ) गोचर एवं अष्टकवर्ग दोनों के अनुसार गुरूशुद्धि के अभाव में अपवाद

1.5.3 उपनयन में गुरू शुक्र का उदयास्तादि विचार

1.5.4 उपनयन में समयशुद्धि विचार

1.5.5 उपनयन में प्रशस्त मास, तिथि, वार, नक्षत्र

1.5.6 उपनयन में निशिद्ध समय

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भग्रन्थ सूची

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

फलितज्योतिष के डिप्लोमा कोर्स के अन्तर्गत द्वितीय खण्ड में आपका स्वागत है। इस द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत सम्पत्ति आप प्रथम इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

आप जानते हैं कि गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, वपनकिया (चूड़ाकरण), कर्णावेध, व्रतादेश (उपनयन), वेदारम्भ (विद्यारम्भ), केशान्त, स्नान, उद्वाह (विवाह), विवाहाग्निपरिग्रह तथा त्रेताग्निसंग्रह ये सोलह संस्कार हैं, जिनमें चूड़ाकरण, विद्यारम्भ एवं उपनयन ये तीनों मुख्य संस्कार के रूप में प्रसिद्ध है। इन्हीं तीनों संस्कारों के मुहूर्तविषयक विवेचन आप प्रामाणिकता के साथ इस इकाई में पढ़ने जा रहे हैं।

हमारे ऋषियों मुनियों का चिन्तन हैं कि शुभमुहूर्त में किया गया कार्य मानव के अभ्युदय के लिये होता है। और यही कारण हैं कि हमारे ऋषियों ने अपने दिव्य अनुभव एवं अनुसन्धान के द्वारा जीवनोपयोगी प्रत्येक कार्य के लिये शुभाशुभ मुहूर्तों का निर्देश किया है। उन्हीं शुभाशुभ मुहूर्तों को बतलाने वाला शास्त्र मुहूर्तशास्त्र कहलाता है। उसी मुहूर्तशास्त्र में चूड़ाकरण, विद्यारम्भ एवं उपनयन के भी शुभाशुभ मुहूर्त बतलाये गये हैं, जिसका आप इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से आप उत्तम से उत्तम चूड़ाकरणमुहूर्त का ज्ञान कर सकते है, विद्यारम्भमुहूर्त का ज्ञान कर सकते हैं, तथा उत्तमोत्तम उपनयनमुहूर्त का ज्ञान कर सकते है। इस तरह उपर्युक्त तीनों मुहूर्तों के निर्णय में यह इकाई आपके लिये अत्यन्त उपयोगी होगी। उत्तम मुहूर्त का उपदेश कर आप समाज का उपकार तो करेंगे ही, आप अपने लिये प्रचुर यश भी अर्जित करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- चूड़ाकरण का शाब्दिक अर्थ जान सकेंगे।
- चूड़ाकरण के मुहूर्त निर्णय में प्रवीण हो जायेंगे।
- विद्यारम्भ के उद्देश्य के विषय में आप जान पायेंगे।
- विद्यारम्भ कब करें इसका निर्णय सहजता से कर सकेंगे।
- उपनयन पदार्थ को अच्छी तरह जान सकेंगे।
- उपनयन कब करना चाहिये यह निर्णय कर सकेंगे।

1.3 चूड़ाकरण

क. परिचय

चूड़ाकरण चूड़ा एवं करण इन दो शब्दों से बना है। चूड़ा शब्द का अर्थ शिखा या जूटिका है तथा करण शब्द करने के अर्थ में प्रयुक्त है। ''चूडायाः षिखायाः करणं प्रथमतया स्वरूपनिर्धारणं चूडाकरणम्'' यानी बालक या बालिका का प्रथमतया शिखा/जूटिका का

स्वरूप प्रदान करना चूडाकरण कहलाता है। इसमें जन्म के बाद शास्त्रोक्त मुहूर्त में शास्त्रीय विधि से बालक के सिर पर शिखा (चूडा) को छोड़कर सारे बालों को काट दिया जाता है। इसी को चूडाकरण संस्कार कहा जाता है।

ख. प्रयोजन

आप जान ही गये होंगे कि प्रथमतया शिखा का स्वरूप प्रदान करना ही चूडाकरण कहलाता है। शिखा हिन्दूधर्मानुयायियों के लिये एक महत्वपूर्ण परिचायक है। हमारे पूर्वज ऋषि, मुनियों का यह अनुसन्धानात्मक चिन्तन रहा है कि किसी भी कार्य की सफलता में समय का अत्यन्त ही महत्व होता है। यानी सही समय में, सही विधि से किया गया कार्य सफलका का द्योतक होता है। उसी सही समय का यानी सही मुहूर्त का निर्धारण हमारे मुहूर्तशास्त्रों में वर्णित है, जो मानवमात्र के लिये अनुसरणय है। चूडाकरण संस्कार के महत्व के विषय में आप आश्वलायनगृह्यसूत्र का निम्नलिखित मंत्र देख सकते हैं– ''तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोकाय स्वस्तये। इति।'' इस मंत्र में चूडाकरण संस्कार को दीर्घायु, सौन्दर्य तथा कल्याण प्रदान करने वाला बतलाया गया है। आयुर्वेद भी इसके महत्व को पुष्ट करता है कि चूडाकरण संस्कार प्रसन्नता, हल्कापन, सौभाग्य, उत्साह एवं पापशमन का कारण है। यथा –

पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम्।
हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्धनम्।। इति।।

इस तरह स्पष्ट है कि चूडाकरण विषयक मुहूर्त विचार आपके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

1.3.1 चूडाकरण मुहूर्त विचार

आप को पता है कि सामान्यतया मुहूर्त शब्द काल के एक विभाग विशेष का नाम है। जैसे– मुहूर्तो घटिकाद्वयम्। यानी दो घटी (2 24 मिनट = 48 मिनट) का एक मुहूर्त होता है। किन्तु यहाँ पर यह अर्थ अभिप्रेत नहीं है। यहाँ मुहूर्त शब्द से विहित समय अभिप्रेत है। जैसे 'चूडाकरण मुहूर्त निकालना' यानी ''चूडाकरण के लिये प्रशस्त समय का ज्ञान करना'' ऐसा समझना चाहिये।

यहाँ मुहूर्त विचार के अन्तर्गत कई बिन्दु विचारणीय होते है। जैसे गुरू शुक्र का उदयास्तदिविचार, समयशुद्धिविचार, वर्ष, अयन, मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र आदि का विचार, लग्नशुद्धि आदि। इस मुहूर्तविचार में कुछ विचार तो सामान्य रूप से सबों के लिये लागू होते हैं, लेकिन कुछ विचार देश विदेश के लिये लागू होते है। इसी क्रम में आप इस इकाई में चूडाकरण से सम्बन्धित मुहूर्तों को बिन्दुबार अध्ययन करेंगे।

(क) चूडाकरण में गुरू शुक्र का उदयास्त आदि विचार

आप जान लें कि प्रायः सभी महत्वपूर्ण शुभकर्मों में गुरू शुक्र की प्रबलता अपेक्षित होती है। कोई भी ग्रह जब उदित होता है तो सबल होता है तथा अस्त होता है तो निर्बल होता है। उसी तरह की स्थिति गुरू और शुक्र के साथ भी है। जब गुरू या शुक्र सूर्य के

समीप होता है तब प्रकाशहीन होने के कारण अस्त कहलाता है। अस्त से पूर्व क्षीणप्रकाश होने के कारण वृद्ध कहलाता है। एवं अस्त के बाद उदित होने पर प्रकाशहीन होने के कारण बालावस्था होती है। गुरू शुक्र के इन तीनों अवस्थाओं को शुभकृत्यों में त्याज्य कहा गया है। यानी गुरू एवं शुक्र यदि वृद्ध, बाल या अस्त (मृत) अवस्था में हो तो चूडाकरण आदि शुभकर्म नहीं करना चाहिये। इससे सम्बन्धित आप इसी द्वितीय खण्ड के तृतीय इकाई में अध्ययन करेंगे।

अभ्यास प्रश्न–

1. चूडाकरण आदि में गुरू शुक्र के तीन अवस्थाओं का विचार किया जाता है?
2. गुरू शुक्र की बाल, वृद्ध एवं मृत अवस्था होने के क्या कारण है?
3. ग्रह अस्त कब होता है?

(ख) चूडाकरण में प्रशस्त वर्ष, मास, तिथि, वार, नक्षत्र आदि का विचार

आप जानते हैं कि भारतीय मनीशियों ने प्रत्येक शुभाशुभ कर्म के लिये विहित वर्ष, मास, तिथि, वार, नक्षत्र आदि को अनुभव किया है तथा तदनुसार किस कार्य के लिये कौन सा समय उपयुक्त होगा यह लिख डाला है। मनीशियों के वे ही मुहूर्तविषयक विचार हमें मुहूर्तशास्त्र के रूप में प्राप्त है। महर्षियों के द्वारा बताये गये शुभमुहूर्त में निष्पादित (किया गया) कार्य सुख समृद्धिकारक होता है। इस तरह चूडाकरण के लिये जो मुहूर्त बतलाये गये हैं वे इस प्रकार है–

चूडाकरण में प्रशस्त वर्ष – जन्म समय से अथवा गर्भाधान से तीसरे आदि विषम वर्षों (3।5।7) में चूडाकरण प्रशस्त माना गया है।

चूडाकरण में प्रशस्त मास – चैत्र को छोड़कर उत्तरायण के पाँच मासों में यानी माघ, फाल्गुन, वैशाख, अग्रहण, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ इन मासों में चूडाकरण प्रशस्त माना गया है।

मास विचार में ध्यातव्य बातें – 1. उपर्युक्त मास सौरमास के अनुसार समझना चाहिये, न कि चन्द्रमास के अनुसार।

2. मेष संक्रान्ति से सौर के अनुसार वैशाख मास की शुरूआत होती है। वृष संक्रान्ति से ज्येष्ठ मास की शुरूआत होती है। इसी तरह मिथुन आदि संक्रान्ति से आषाढ़ आदि मास समझना चाहिये। सपष्टता के लिये आप निम्नलिखित सारणी का अवलोकन करें।

सौरमास– बोधक सारणी

सूर्य की क्रान्ति	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या
सौरमास	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्रपद	आश्विन
सूर्य की क्रान्ति	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
सौरमास	कार्तिक	अग्रहण	पौष	माघ	फाल्गुन	चैत्र

3. हरिशयन का त्याग – आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त भगवान् विष्णु शयन में होते है। और हरिशयन की अवधि को शास्त्रकारों ने चूडाकरण आदि शुभकृत्य/संस्कार के लिये त्याज्य माना है। अतः आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त किसी भी शुभकृत्य के लिये मुहूर्त नहीं निकालना चाहिये।

4. संक्रान्ति, मासान्त, एवं मासादि का त्याग – संक्रान्ति के दिन, संक्रान्ति से एक दिन पहले (मासान्त), एवं संक्रान्ति के एक दिन बाद (मासादि) इन तीनो दिनों में चूडाकरण आदि शुभकृत्य/संस्कार नहीं करना चाहिये। जैसे कहा भी है –

शुभे कार्य त्यजेत् सूर्यसंक्रमे व दिनत्रयम्। इति।।

चूडाकरण में प्रशस्त पक्ष – शुक्लपक्ष को तथा कृष्णपक्ष में पंचमी तिथि तक चूडाकरण के लिये प्रशस्त माना गया है।

चूडाकरण में प्रशस्त तिथियाँ – द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी एवं त्रयोदशी (2, 3, 5, 7, 10, 11, 13) तिथियों को चूडाकरण में प्रशस्त माना गया है।

चूडाकरण में प्रशस्त नक्षत्र – अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, श्रवणा, घनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती इन 12 नक्षत्रों में चूडाकरण प्रशस्त माना गया है।

जन्म नक्षत्र का त्याग – उपर्युक्त नक्षत्रों में से जन्म नक्षत्र को चूडाकरण में अप्रशस्त माना गया है। अर्थात् जन्मनक्षत्र में चूडाकरण (गुण्डनसंस्कार) नहीं करना चाहिये।

चूडाकरण में प्रशस्त वार – सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र दिनों में चूडाकरण प्रशस्त माना गया है।

चूडाकरण में प्रशस्त लग्न एवं नवांश – वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु एवं मीन इन सात लग्नों में तथा इन्हीं के नवांशो में चूडाकरण प्रशस्त माना गया है।

नोट – आपके लिये ध्यातव्य है कि, लग्नशुद्धि (लग्न एवं नवांश) का समग्र विचार विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखा जा रहा है। क्योंकि आपके लिये लग्नशुद्धिविषयक पाठ्यांश इसी (द्वितीय) खण्ड के तृतीय इकाई में निर्धारित है। अतः इस खण्ड के तृतीय इकाई में वर्णित लग्नशुद्धि के आधार पर सूक्ष्म विचार कर चूडाकरण केलिये प्रशस्त लग्न का चयन करें।

अभ्यास प्रश्न

1. चूडाकरण के लिये प्रशस्त वर्ष क्या है?
2. सौभ्यायन के कौन से मास चूडाकरण के लिये प्रशस्त माने गये है?
3. चूडाकरण कृष्ण पक्ष में कब तक प्रशस्त है?
4. ....तिथियाँ चूडाकरण के लिये प्रशस्त मानी गई है। खली स्थानों को भरें।
5. सोम, बुध .... एवं .... वारों को चूडाकरण के लिये प्रशस्त माना गया है। खाली स्थानों को भरे।
6. चूडाकरण के लिये कुल .... नक्षत्र प्रशस्ते माने गये है। संख्या लिखकर खाली स्थान को भरें।

7. वृष, मिथुन, कर्क, ... तुला, ... एवं .... इन सात लग्नों को चूडाकरण के लिये माना गया है। खाली स्थानों को भरें।

(ग) ज्येष्ठ सन्तान का ज्येष्ठ मास में मुण्डन निषेध

मुण्डन का मुहूर्त निकालते समय आपको ध्यान देना होगा कि बालक अपने माता पिता का जयेष्ठ सन्तान हैं या नहीं। यदि ज्येष्ठ सन्तान हैं तो उसका मुण्डन ज्येष्ठ एवं अग्रहण (मार्गशीर्ष) मास में नहीं होगा। क्योंकि ज्येष्ठ एवं अग्रहण मासों में ज्येष्ठ संतान का मुण्डन शास्त्रकारों में वर्जित किया है। यहाँ ज्येष्ठ संतान का तात्पर्य है प्रथम गर्भ से उत्पन्न बालक या बालिका से। जैसे रामाचार्य लिखते है–

''ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेऽपि नेश्यते।''इति।।

(घ) माता क रजस्वला या गर्भवती रहने पर पुत्र के मुण्डन का निषेध

यदि माता रजस्वला हो या प्रसूता हो तो बालक एवं बालिकाओं का मुण्डन नहीं करना चाहिये। जैसे रामाचार्य जी मुहूर्तचिन्तामणि में लिखते है –

''ऋतुमत्याः सूतिकायाः सूनोश्चौलादि नाऽऽचरेत्।'' इति।।

अपवाद – किन्तु बालक का पाँच वर्ष बीत जाने पर माता के गर्भवती होने की स्थिति में मुण्डन करना दोषकारक नहीं कहा गया है।

(ङ) अन्य त्याज्य समय– हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, मन्वादि, युगादि, गुरू शुक्र के अस्त, बाल्य, वार्धक्य, गुरू का अतिचार, सिंह मकरराश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग ये सब चूडाकरण आदि शुभसंस्कार में त्याज्य कहे गये है।

अभ्यास प्रश्न –

11. .... सन्तान का जयैष्ठ मास में मुण्डन का निषेध है। खाली स्थान को भरें।

12. मतान्तर से किस मास में ज्येष्ठ संतान का मुण्डन नहीं करना चाहिये?

13. पाँच वर्ष तक माता के रजस्वला या गर्भवती रहने पर पुत्र का मुण्डन करना चाहिये या नहीं?

(ङ.) आपकी सुविधा के लिये संक्षेप में चूडाकरण मुहूर्त का निष्कर्ष एवं चूडाकरण मुहूर्त की सारण लिख रहा हूँ। इनकी सहायता में आप सरलता से चूडाकरण का मुहूर्त निकाल सकते है

निष्कर्ष –

शुद्ध समय में, चैत्ररहित माघादि छः मासों में तथा अग्रहण मास में, (ज्येष्ठ एवं अग्रहण में ज्येष्ठ संतान को छोड़कर), विषम वर्ष में, अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, श्रवणा, धनिष्ठा शतभिषा एवं रेवता नक्षत्रों में, सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र

वारों में, 2 |3 |5 |7 |10 |11 |13 इन तिथियों में, शुक्ल पक्ष में, कृष्ण पक्ष में पंचमी तिथि तक, 2 |3 |4 |6 |7 |9 |12 इन राशियों के लग्न एवं नवमांशों में चूडाकरण शुभ कहा गया है।

चूड़ाकरण की सारणी

वर्ष	विषम (3 |5 |7 आदि)
मास	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ एवं अग्रहण (ज्येष्ठ एवं अग्रहण में ज्येष्ठ संतान को छोड़कर)
पक्ष	शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष में पंचमी तिथि तक
तिथियाँ	द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी एवं त्रयोदशी (2,3,5,7,10,11,13)
वार	सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र
नक्षत्र	अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा एवं रेवती
लग्न	वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु एवं मीन
अन्य त्याज्य समय	हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, मन्वादि, युगादि, गुरू शुक्र का अस्त, बाल, वृद्ध, गुरू के अतिचार, सिंह मकर राश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग

1.4 विद्यारम्भ

बालक या बालिका का मस्तिष्क जब शिक्षाग्रहण करने योग्य हो जाता है तब शिक्षारम्भ/विद्यारम्भ संस्कार किया जाता है। यह विद्यारम्भ दो रूप में व्यवहृत है, प्रथम अक्षरारम्भ के रूप में तथा द्वितीय विद्यारम्भ के रूप में। बालक के कोमल मस्तिष्क जब प्रथमतया अक्षर सीखना प्रारम्भ करता है उसे अक्षराम्भ कहते हैं। तथा अक्षरज्ञान परिपूर्ण हो जाने के बाद प्रथमतया जब कोई ग्रन्थ विशेष या शास्त्र विशेष पढ़ना प्रारम्भ करता है तो उसे विद्यारम्भ संस्कार कहते है।

1.4.1 अक्षरारम्भ मुहूर्त

रामाचार्य लिखते है शास्त्रोक मुहूर्त में श्रीगणेश, विष्णु, सरस्वती तथा लक्ष्मी की पूजा करके बालक का अक्षरारम्भ कराना चाहिये। इनके मत में अक्षरारम्भ के लिये निम्नलिखित वर्ष, मास, तिथि, वार, दिन, नक्षत्र एवं लग्न प्रशस्त माने गये हैं।

प्रशस्त वर्ष – जन्म से या गर्भाधान से पाँचवाँ वर्ष अक्षरारम्भ के लिये प्रशस्त माना गया है।

प्रशस्त मास – उत्तरायण सूर्य में, यानी चैत्र को छोड़कर माघ आदि छः (माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ इन पाँच) मासों के अन्दर अक्षरारम्भ प्रशस्त माना गया है।

मास विचार में ध्यातव्य बातें – 1. उपर्युक्त मास भी चूडाकरण की भाँति सौरमास के अनुसार ही समझना चाहिये, न कि चन्द्रमास के अनुसार। आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त हरिशयन होने के कारण चूडाकरण की भाँति विद्यारम्भ का भी मुहूर्त नहीं निकालना चाहिये।

शुभ पक्ष – शुक्लपक्ष को तथ कृष्णपक्ष में पंचमी तिथि तक अक्षरारम्भ के लिये प्रशस्त माना गया है

शुभ तिथियाँ – द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी (2,3,5,6,7,10,11,12) तिथियों को अक्षरारम्भ में प्रशस्त माना गया है।

शुभ नक्षत्र – अश्विनी, आर्दा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवणा, एवं रेवती इन 10 नक्षत्रों में अक्षरारम्भ प्रशस्त माना गया है।

शुभ वार – सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र दिनों में अक्षरारम्भ प्रशस्त माना गया है।

प्रशस्त लग्न एवं नवांश – वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन (2,3,6,9,12) इन पाँच लग्नों में या इनके नवांश में अक्षरारम्भ प्रशस्त माना गया है।

नोट – यहाँ भी आपके लिये ध्यातव्य है कि, लग्नशुद्धि (लग्न एवं नवांश) का समग्र विचार विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखा जा रहा है। क्योंकि आपके लिये लग्नशुद्धि विषयक पाठ्यांश इसी (द्वितीय) खण्ड के तृतीय इकाई में निर्धारित है। अतः इस खण्ड के तृतीय इकाई में वर्णित लग्नशुद्धि के आधार पर सूक्ष्म विचार कर अक्षरारम्भ के लिये प्रशस्त लग्न का चयन करें।

अन्य त्याज्य समय – हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, गुरू शुक्र के अस्त, बाल, वृद्ध, गुरू के अतिचार, सिंह मकराश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग इन समयों में अक्षरारम्भ नहीं करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न–

14. .... तथा .... की पूजा करके बालक का अक्षरारम्भ करना चाहिये। खाली स्थानों को भरें।

15. अक्षरारमी के लिये .... वर्ष प्रशस्त माना गया है। खाली स्थान को भरें।

16. उत्तरायण या दक्षिणायन अक्षरारमी के लिये प्रशस्त माना गया है?

17. द्वितीया, ... पंचमी, षष्ठी, ... दशमी, ... एवं द्वादशी तिथियों को अक्षरारम्भ में प्रशस्त माना गया है। खाली स्थानों को भरें।

18. अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, आर्दा, इनमें से किन नक्षत्रों को अक्षरारम्भ में प्रशस्त माना गया है?

19. .... एवं .... दिनों में अक्षरारम्भ प्रशस्त माना गया है। खाली स्थानों को भरें।

20. कौन से पाँच लग्न अक्षरारम्भ में प्रशस्त माने गये हैं?

निष्कर्ष–

आपकी सुविधा के लिये संक्षेप में चूडाकरण मुहूर्त का निष्कर्ष एवं चूडाकरण मुहूर्त की सारणी लिख रहा हूँ। इनकी सहायता से आप सरलता से चूडाकरण का मुहूर्त निकाल सकते है।

चैत्ररहित माघादि छः मासों में, श्रीगणेश, विष्णु, सरस्वती तथा लक्ष्मी की पूजा करके शुक्लपक्ष में पंचमी तिथि तक 2,3,5,6,7,10,11,12 तिथियों में, अश्विनी, आर्दा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवणा एवं रेवती इन 10 नक्षत्रों में सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र दिनों में 2,3,6,9,12 इन पाँच लग्नों में या इनके नवांश में, अक्षरारम्भ शुभ कहा गया है।

अक्षरारम्भ मुहूर्त की सारणी

वर्ष	पाँचवाँ
मास	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़
पक्ष	शुक्लपक्ष को तथा कृष्णपक्ष में पंचमी तिथि तक
तिथियाँ	द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी 2,3,5,6,7,10,11
वार	सोम, बुध, गुरू, शुक्र
नक्षत्र	अश्विनी, आर्दा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवणा, रेवती
लग्न	वृष, मिथुन, कन्या, धनु, मीन
अन्य त्याज्य समय	हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, गुरू शुक्र के अस्त, बाल, वृद्ध, गुरू के अतिचार, सिंह मकराष्यंषस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग

1.4.1 विद्यारम्भ मुहूर्त

शास्त्रोक्त मुहूर्त में श्रीगणेश, विष्णु, सरस्वती तथा लक्ष्मी की पूजा करने के बाद बालक का विद्यारम्भ निम्नलिखित मास, तिथि, वार, दिन एवं नक्षत्र में करना चाहिये।

प्रशस्त मास – उत्तरायण सूर्य में यानी चैत्र को छोड़कर माघ आदि छः (माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ इन पाँच) मासों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है।

मास विचार में ध्यातव्य बातें – 1. उपर्युक्त मास भी चूडाकरण की भाँति सौरमास के अनुसार ही समझना चाहिये, न कि चन्द्रमास के अनुसार। आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त हरिशयन होने के कारण चूडाकरण की भाँति विद्यारम्भ का भी मुहूर्त नहीं निकालना चाहिये।

शुभ पक्ष – शुक्ल पक्ष को तथा कृष्णपक्ष में पंचमी तिथि एक विद्यारम्भ के लिये प्रशस्त माना गया है।

शुभ तिथियाँ – द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी (2,3,5,6,10,11,12) तिथियों को विद्यारम्भ में प्रशस्त माना गया है।

शुभ नक्षत्र – अश्विनी, मृगशिरा, आर्दा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, पूर्वाषाढ़, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा एवं पूर्वभाद्रपद इन 16 नक्षत्रों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है।

शुभ वार – रवि, बुध, गुरू एवं शुक्र दिनों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है।

प्रशस्त लग्न एवं नवांश – वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन (2,3,6,9,12) इन पाँच लग्नों में या इनके नवांश में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है।

नोट – यहाँ भी आपके लिये ध्यातव्य हैं कि, लग्नशुद्धि (लग्न एवं नवांश) का समग्र विचार विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखा जा रहा है। क्योंकि आपके लिये लग्नशुद्धिविषयक पाठ्यांश इसी (द्वितीय) खण्ड के तृतीय इकाई में निर्धारित है। अतः इस खण्ड के तृतीय इकाई में वर्णित लग्न शुद्धि के आधार पर सूक्ष्म विचार कर विद्यारम्भ के लिये प्रशस्त लग्न का चयन करें।

अन्य त्याज्य समय – हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, गुरू शुक्र के अस्त, बाल्य, वार्धक्य, गुरू के अतिचार, सिंह मकराश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग इन समयों में विद्यारम्भ नहीं करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न –

21. उत्तरायण का कौन सा मास विद्यारम्भ में वर्जित हैं?
22. विद्यारम्भ के लिये शुभ पक्ष को स्पष्ट करें।
23. विद्यारम्भ के लिये द्वितीया, तृतीया ...., षष्ठी, ... एकादशी एवं .... प्रशस्त माना गया है। खाली स्थानों को भरें।
24. किन 16 नक्षत्रों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया हैं?

25. रवि, ..., गुरू एवं .... दिनों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है। खाली स्थानों को भरें।

26. किन पाँच लग्नों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया हैं?

निष्कर्ष–

चैत्ररहित माघादि छः (माघ, फाल्गुन, वैषाख, ज्येष्ठ, आषाढ़) मासों में, शुक्लपक्ष में, कृष्णपक्ष में पंचमी तिथि तक, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी तिथियों में, अश्विनी, मृगशिरा आर्दा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, पूर्वाषाढ़, श्रवणा, घनिष्ठा, शतभिषा एवं पूर्वभाद्रपद इन 16 नक्षत्रों में रवि, बुध, गुरू एवं शुक्र दिनों में, वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन इन पाँच लग्नों में या इनके नवांश में, विद्यारम्भ शुभ कहा गया है।

विद्यारम्भ मुहूर्त की सारणी

मास	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़
पक्ष	शुक्लपक्ष में कृष्णपक्ष में पंचमी तिथि तक
तिथियाँ	2,3,5,7,10,11,12
वार	रवि, बुध, गुरू एवं शुक्र
नक्षत्र	अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, पूर्वाषाढ़, श्रवणा, धनिष्ठा शतभिषा एवं पूर्वभाद्रपद
लग्न	वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन
अन्य त्याज्य समय	हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, गुरू शुक्र का अस्त, बाल, वृद्ध, गुरू के अतिचार, सिंह मकर राश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग

1.5 उपनयन

उपनयन शब्द उप+उपनयन इन दो शब्दों से बना है। उप का अर्थ है समीप तथा नयन का अर्थ है ले जाना। अर्थात् उपनयन वह कृत्य है जिसके द्वारा बालक, आचार्य के समीप ले जाया जाता हो। जैसे कहा भी है –

उप समीपे आचार्यादीनां बटोर्नयनं प्रापणमुपनयनम्। इति।।

उपनयन का अभिप्राय अत्यन्त व्यापक है। उपनयन एक ऐसा कृत्य है जिसके द्वारा व्यक्ति, गुरू, वेद, यम नियम, का व्रत और देवता के सामीप्त के लिये दीक्षित किया जाता है। –

गुरोर्व्रतानां वेदस्य यमस्य नियमस्य च।
देवतानां समीपं वा येनासौ नीयते द्विजः।। इति।

यही उपनयन संस्कार व्रतबन्ध के नाम से भी जाना जाता है। चूँकि इस संस्कार में

प्रथमतया यज्ञोपवीत धारण किया जाता है अतः इसका तीसरा नाम यज्ञोपवीत संस्कार भी है।

1.5.1 उपनयन में नित्य, काम्य एवं गौण काल तथा व्रात्य का लक्षण

उपनयन संस्कार के लिये महर्षियों ने तीन तरह के कालों का निर्देष किया है– 1. नित्य, 2. काम्य और 3. गौण। सामान्य तौर पर उपनयन के लिये जो विहित काल (वर्ष) है उसे नित्य काल कहते है। कामनाविशेष के लिये जो उपनयन काल (वर्ष) बतलाया गया है उसे काम्य काल कहते है। तथा इन दोनों के अतिरिक्त किन्तु उपनयन की समय सीमा के अन्दर का समय (वर्ष) गौण काल कहलाता है।

1. नित्य काल – गर्भाधान से अथवा जन्मकाल से ब्राह्मण का 8 (आठवाँ) वर्ष, क्षत्रिय का 11 (ग्यारहवाँ) वर्ष तथा वैश्य का 12 (बारहवाँ) वर्ष उपनयन के लिये प्रास्त माना गया है।

2. काम्य काल – गर्भाधान से अथवा जन्मकाल से ब्राह्मण के लिये ब्रह्मातेज की कामना से 5 (पाँचवाँ) वर्ष, क्षत्रिय के लिये बल की कामना से 6 (छठा) वर्ष तथा वैश्य के लिये अर्थ की कामना से 8 (आठवाँ) वर्ष उपनयन का समय प्रशस्त माना गया है।

3. गौण काल – गर्भाधान से अथवा जन्मकाल से ब्राह्मण का 16 वर्ष तक, क्षत्रिय का 22 वर्ष तक तथा वैश्य का 24 वर्ष तक उपनयन के लिये गौण काल माना गया है। अर्थात् नित्य काल अथवा काम्य काल में यदि उपनयन नहीं हो सके तो गौण काल में उपनयन कर लेना चाहिये।

4. व्रात्य लक्षण – अगर गौण काल में भी उपनयन नहीं होता है तो वह अनुपनीत बालक व्रात्य (अध्ययन, अध्यापन, भोजन, शयन, कन्यादान आदि सभी कर्मों में त्याज्य) हो जाता है। व्रात्य बालक शास्त्रोक्त व्रात्य–प्रयश्वित करने के बाद शुद्ध होता है।

1.5.2 उपनयन में गुरू (बल) शुद्धि–विचार

बालक की जन्म कुण्डली में उम्र का विचार कैसे करें यह आप जान चुके हैं। उम्रविचार के बाद उपनयन में गुरूबल का विचार करना चाहिये। इसी गुरूबलविचार को आप सम्प्रति जानने जा रहे हैं।

(क) उत्तम, मध्यम, एवं अधम गुरूशुद्धि

बालक की जन्मकुण्डली में चन्द्रमा जिस राशि में होता है वह राशि उस बालक की जन्मराशि कहलाती है। उसी जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरू की गोचरीय स्थिति के आधार पर गुरू (बल) शुद्धि का विचार किया जाता है।

1. उत्तम गुरूशुद्धि – जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरू यदि 2 ।5 ।7 ।9 ।11 वें स्थान में हो तो उपनयन के लिये उत्तम माना जाता है।

2. मध्यम (पूजोपरान्त उत्तम) गुरूशुद्धि – जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरू यदि 1 ।3 ।6 स्थानों में से कहीं पर स्थित हो तो मध्यमगुरूशुद्धि होती है। किन्तु उपनयन करना अभीष्ट हो तो धर्मशास्त्रीय विधि से गुरू की पूजा, दान, जप आदि करने से गुरूशुद्धि उत्तम हो जाती है।

3. निन्दित गुरू – जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरू आदि उपर्युक्त स्थानों से अतिरिक्त स्थानों (4 |8 |10 |12) में हो तो उपनयन के लिये अधम माना जाता है।

गुरूशुद्धि में मतान्तर –

1. उत्तम गुरूशुद्धि – जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरू यदि 2 |5 |7 |9 |11 वें स्थान में हो तो उपनयन के लिये उत्तम माना जाता है।

2. मध्यम (पूजोपरान्त उत्तम) गुरूशुद्धि – जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरू यदि 4 |10 |12 स्थान में हो तो उपनयन के लिये मध्यम माना जाता है। किन्तु उपनयन करना अभीष्ट हो तो धर्मशास्त्रीय विधि से गुरू की पूजा, दान, जप आदि करने से गुरूशुद्धि उत्तम हो जाती है।

3. निन्दित गुरू – जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरू यदि उपर्युक्त स्थानों से अतिरिक्त (1 |3 |6 |8) स्थानों में हो तो उपनयन के लिये अधम माना जाता है।

इस प्रकार अनेक स्थलों पर शास्त्रीय वचनों में आपको अन्तर दिख पड़ेंगे। ऐसी दुविधा की स्थिति मे आप को देशाचार को ध्यान में रखते हुये किसी मुहूर्त का निर्णय करना होगा।

....

27. उपनयन के लिये ब्राह्मण का..........................वाँ वर्ष, क्षत्रिय का.................वाँ वर्ष तथा वैश्य का......................वाँ वर्ष नित्य काल कहा गया है।

28. ब्राह्मण को ब्रह्मतेज की कामना से किस वर्ष उपनयन करना चाहिये?

29. क्षत्रिय का कितने वर्ष तक गौण काल माना गया है?

30. अनुपनीत बालक व्रात्य कब हो जाता है?

31. जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरू यदि .... स्थानों में हो तो उपनयन के लिये उत्तम माना जाता है। खाली स्थानों को भरें।

(ख) निन्दित एवं प्रशस्त गुरू का अपवाद –

उपर्युक्त गुरूशुद्धि के अभाव में भी उपनयन किया जा सकता है, यदि–

1. गुरू अपनी उच्च राशि (कर्क) में विद्यमान हो।
2. अथवा गुरू अपनी राशि (धनु एवं मीन) में हो।
3. अथवा गुरू अपने मित्र की राशि (मेष, सिंह, वृश्चिक) में स्थित हो।
4. अथवा गुरू अपने नवमांश में यानी धनु या मीन के नवांश में हो।
5. अथवा गुरू वर्गोत्तम नवांश में हो।

नोट – जिस किसी राशि में उसी राशि का नवांश वर्गोत्तम नवांश कहलाता है।

जैसे – मेष राशि का नवांश (यानी प्रथम नवांश) वर्गोत्तम नवांश है। वृष राशि में वृष राशि का नवांश (यानी पंचम नवांश) वर्गोत्तम नवांश है। मिथुन राशि में मिथुन राशि का नवांश (यानी नवम नवांश) वर्गोत्तम नवांश है। इसी प्रकार कर्क, सिंह, कन्या, तुला वृश्चिक,

धनु, मकर, कुम्भ, मीन, इन राशियों में (चर, स्थिर, द्विःस्वभाव राशियों में) क्रमशः प्रथम, पंचम, नवम नवांश वर्गोत्तम नवांश होते है।

प्रशस्त गुरू का अपवाद

उसी प्रकार जन्मराशि से उपनयनकालिक (गोचरीय) गुरू को शुभस्थानों में रहने के बावजूद कुछ अन्य परिस्थितिवश गुरू को शुभ नहीं माना जाता है। अर्थात् जन्मराशि से उपनयनकालिक (गोचरीय) गुरू उपर्युक्त शुभस्थान मे स्थित हो, किन्तु निम्नलिखित राशि में हो तो उपनयन में गुरू अप्रशस्त (अशुभफलदायक) हो जाता है। यथा –

1. गुरू अपनी नीच राशि (मकर) में स्थित हो।
2. अथवा गुरू अपनी शत्रु की राशि (वृष, मिथुन, कन्या, तुला) में हो।

(ग) उपर्युक्त गुरूशुद्धि के अभाव में अष्टकवर्ग का महत्व

आपने उपर्युक्त गुरूशुद्धिविचार को अच्छी तरह जान लिया है। ऊपर कहे गये नियमों के अनुसार यदि गुरूशुद्धि नहीं हो रही हो किन्तु उपनयनकाल का अतिक्रमण हो रहा हो तो अष्टकवर्ग के अनुसार गुरूबल देखना चाहिये। यानी अष्टकवर्ग के अनुसार गुरू (बल) शुद्धि हो जाने पर उपनयन का मुहूर्त निकाल देना चाहिये। आपकी सुविधा के लिये नीचे गुरू का अष्टकवर्ग समझाया जा रहा है। इसकी सहायता से आप अष्टकवर्ग के माध्यम से गुरूशुद्धि का विचार कर सकते है।

अष्टकवर्ग में दो शब्द है, अष्टक एवं वर्ग। अष्ट या अष्टक का अर्थ है आठ तथा वर्ग का अर्थ है स्थानजन्य समूह। अर्थात् जन्मकालिक आठों (सात ग्रह एवं एक लग्न) पदार्थ से कुछ सुनिश्चित स्थानों को शुभस्थान कहे गये हैं। और जन्मकुण्डली में इन शुभसंकेतों को बिन्दुओं के द्वारा संकेतित किया जाता है। अर्थात् उन आठों पदार्थ से वक्ष्यमाण संकेत के अनुसार जिन राशियों में जितने शुभसंकेत मिलते हैं उनमें उतने बिन्दुओं को लिख दी जाती है। इस तरह बिन्दुओं के संकेत से कुण्डली में स्पष्ट दिखने लगता हैं कि किस राशि में कितने बिन्दुयें है। इसी बिन्दुबोधक/शुभसंकेतबोधक कुण्डली को अष्टकवर्ग कहते है। यहाँ ध्यातव्य हैं कि चूँकि आठों पदार्थों से निर्दिष्ट (वक्ष्यमाण) स्थानों को शुभस्थान के रूप में चिन्हित किया जाता है, अतः एक राशि में अधिकतम बिन्दुओं की संख्या आठ हो सकती है। इस तरह आठ में से जितनी संख्या शुभबिंदुओं की संख्या होती है, उसके अलावा शेष संख्या अशुभ को सूचित करती है। इस अशुभ संख्या को शास्त्रकारों ने रेखा के द्वारा संकेत करने का निर्देष किया है। यानी जिस किसी राशि में विद्यमान शुभसूचक बिन्दुओं की संख्या को आठ से घटा कर शेषतुल्य अशुभसूचक रेखायें समझनी चाहिये। इस तरह अष्टकवर्ग में जिस राशि में बिन्दुओं (शुभत्व) की संख्या अधिक हो और रेखाओं की संख्या (अशुभत्व) कम हो और उसी राशि में उपनयन के समय यदि (गोचर का) गुरू विद्यमान हो तो अष्टकवर्ग के अनुसार गुरू को प्रबल माना जाता है। इस तरह अष्टकवर्ग के अनुसार गुरू प्रबल हो किन्तु उपर्युक्त गुरूशुद्धि नहीं भी हो तो उपनयन कर देना चाहिये।

चूँकि सात ग्रह (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र, शनि) एवं लग्न इन आठों के लिये जन्मकुण्डलीगत आठों (सात ग्रह एवं एक लग्न) पदार्थों से अलग अलग वक्ष्यमाण स्थानों को शुभसूचक कहा गया हैं, अतः ये अष्टकवर्ग आठ होते है। जैसे सूर्य का अष्टकवर्ग, चन्द्र का अष्टकवर्ग इत्यादि। इस तरह गुरू का भी अष्टकवर्ग होता है, जिसके अनुसार उपनयन में गुरू की प्रबलता (गुरूशुद्धि) को जाना जाता है। यह गुरू का अष्टकवर्ग आपकी सुविधा के लिये नीचे लिखा जा रहा है।

गुरू का अष्टकवर्ग –

जन्मकालिक गुण्डली में गोचरीय, गुरू, सूर्य से 2 ।3 ।4 ।7 ।8 ।9 ।10 ।11 इन स्थानों में, चन्द्रमा से 2 ।5 ।7 ।9 ।11 स्थानों में, मंगल से 1 ।2 ।4 ।7 ।8 ।10 ।11 स्थानों में, बुध से 1 ।2 ।4 ।5 ।6 ।9 ।10 ।11 स्थानों में, गुरू (अपनें) से 1 ।2 ।3 ।4 ।7 ।8 ।10 ।11 स्थानों में, शुक्र से 2 ।5 ।6 ।9 ।10 ।11 स्थानों में, शनि से 3 ।5 ।6 ।12 स्थानों में तथा लग्न से 1 ।2 ।4 ।5 ।6 ।7 ।9 ।10 ।11 स्थानों में शुभ होता है।

(घ) गोचर एवं अष्टकवर्ग दोनों के अनुसार गुरूशुद्धि के अभाव में अपवाद

जिस बालक का उपनपयन काल सम्प्राप्त हो किन्तु उस समय ना ही गोचरीय गुरूशुद्धि हो रही हो और ना ही अष्टकवर्ग से गुरूशुद्धि हो रही हो, ऐसी स्थिति में चैत्र के महीने मे मीन राशिगत सूर्य के रहने पर उपनयन का मुहूर्त निश्चय कर देना चाहिये। यथा रत्नकोष का वचन देखें –

गोचराष्टकवर्गाभ्यां यदि शुद्धिर्न लभ्यते।
तत्रोपनयनं कार्य चैत्रे मीनगते रवौ।। इति।।

1.5.3 उपनयन में गुरू शुक्र का उदयास्तादि विचार

आपको ध्यान रहें कि उपनयनमुहूर्त निर्धारण क्रम में भी गुरू शुक्र के उदय, अस्त, बाल, वृद्ध आदि का विचार करना चाहिये। चूडाकरण मुहूर्त निर्धारण क्रम में आप नें जान लिया हैं कि प्रायः सभी महत्वपूर्ण शुभकृत्यों में गुरू शुक्र की प्रबलता अपेक्षित होती है। कोई भी ग्रह जब उदित होता है तो सबल होता है तथा अस्त होता है तो निर्बल होता है। उसी तरह की स्थिति गुरू और शुक्र के साथ भी है। जब गुरू या शुक्र, सूर्य के समीप होता है तब प्रकाशहीन होने के कारण वह अस्त कहलाता है। अस्त से पूर्व क्षीणप्रकाश होने के कारण वृद्ध कहलाता है। एवं अस्त के बाद उदित होने पर प्रकाशहीन होने के कारण बाल्यावस्था होती है। गुरू शुक्र के इन तीनों अवस्थाओं को शुभकृत्यों में त्याज्य कहा गया है। यानी गुरू एवं शुक्र यदि वृद्ध, बाल या अस्त (मृत) अवस्था में हो तो उपनयन आदि शुभकृत्य नहीं करना चाहिये। इससे सम्बन्धित सूक्ष्मविचार आप इसी द्वितीय खण्ड के तृतीय इकाई में अध्ययन करेंगे।

अभ्यास प्रश्न –

32. गुरू अपनी उच्च राशि (कर्क) में विद्यमान हो तो गुरूशुद्धि .... है। खाली स्थान को भरें।

33. गुरू अपने मित्र की राशि में स्थित हो तो गुरूशुद्धि .... है। खाली स्थान को भरें।

34. गुरू अपनी .... राशि या .... की राशि में स्थित हो तो गुरूशुद्धि नहीं होती है। खाली स्थानों को भरें।

35. गोचरीय गुरूशुद्धि के अभाव में .... वर्ग के अनुसार गुरू शुद्धि देखनी चाहिये। खाली स्थान को भरें।

36. गोचर एवं अष्टकवर्ग दोनों के अभाव में उपनयन कब करना चाहिये?

1.5.4 उपनयन में समयशुद्धि विचार

जिस तरह उपनयन में गुरू शुक्र के उदयास्तादि के आधार पर समय की प्रशस्तता एवं अप्रशस्तता का विचार किया जाता है उसी तरह गुरू के अतिचार, सिंह मकर राश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग आदि के कारण भी समय की शुद्धाशुद्धि का विचार किया जाता है। इसके अनुसार जब शुद्ध समय होता है तब उपनयन आदि शुभकृत्य अप्रशस्त होता है। अर्थात् अप्रशस्त समय में उपनयन नहीं करना चाहिये। इससे सम्बन्धित समग्र विचार इसी खण्ड के अन्तिम (तृतीय) इकाई में दिया जा रहा है। अतः विस्तार भय से समयशुद्धाशुद्धि का विवेचन यहाँ नहीं किया जा रहा है। अर्थात् अतिचार, सिंह मकर राश्यशस्थ गुरू एवं गुर्वादित्य का अध्ययन आप तृतीय इकाई में करेंगे।

1.5.5 उपनयन में प्रशस्त मास, तिथि, वार, नक्षत्र

अब आप ने उपनयन के लिये निर्धारित वर्ष, गुरू शुक्र का उदयास्तादि, गुरूबल एवं उसके विकल्पों को जान लिया है। इन तीनों की दृष्टि से जब उपनयन के लिये समय अनुकूल हो तब मास, तिथि, वार, नक्षत्र आदि का भी विचार करना चाहिये। अतः आप मासादि के बारे में अध्ययन करेंगे।

उपनयन में प्रशस्त मास – उत्तरायण के छः मास, यानी और मास के अनुसार माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ ये मास उपनयन के लिये प्रशस्त कहे गये हैं।

मास विचार में ध्यातव्य बातें – उपर्युक्त मास भी चूडाकरण की भाँति सौरमास के अनुसार ही समझना चाहिये, न कि चन्द्रमास के अनुसार। सौर मास का परिचय अपने चूडाकरण मुहूर्त ज्ञान के क्रम में जान लिया है।

हरिशयन का त्याग – आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त भगवान् विष्णु शयन में होते है। और हरिशयन की अवधि को शास्त्रकारों ने उपनयन आदि शुभकृत्य/संस्कार के लिये त्याज्य माना है। अतः आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त किसी भी शुभकृत्य के लिए मुहूर्त नहीं निकालना चाहिये।

संक्रान्ति, मासान्त एवं मासाति का त्याग – संक्रान्ति के दिन, संक्रान्ति से एक दिन पहले (मासान्त), एवं संक्रान्ति के एक दिन बाद (मासादि) इन तीनों दिनों में उपनयन आदि शुभकृत्य/संस्कार नहीं करना चाहिये। जैसे कहा भी है –

शुभे कार्ये त्याजेत् सूर्यसंक्रमे च दिनत्रयम्। इति।।

उपनयन में प्रशस्त पक्ष – उपनयन में केवल शुक्ल पक्ष को ही प्रशस्त माना है।

उपनयन में प्रशस्त तिथियाँ – द्वितीया, तृतीया, पंचमी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी (2 |3 |5 |10 |11 |12) तिथियों को उपनयन में प्रशस्त माना गया है।

उक्त तिथियों में अपवीद –

उपर्युक्त प्रशस्त तिथियों में से कुछ तिथियाँ खास खास मासों में उपनयन के लिये त्याज्य कहीं गई है। जैसे, मकर में जब सूर्य हो और पौष मास हो तो एकादशी एवं द्वादशी तिथि, मकर में जब सूर्य हो और माघ मास हो तो द्वादशी तिथि, चैत्र एवं वैशाख की तृतीया तिथि, वैशाख को छोड़कर अन्य मासों की द्वितीया तिथि तथा आषाढ़ की दशमी एवं एकादशी तिथि उपनयन में निशिद्ध कही गई है।

उपनयन में प्रशस्त वार – रवि, सोम (मंगलवार, केवल सामवेदियों के लिये) बुध, गुरू एवं शुक्र दिनों में उपपनयन प्रशस्त माना गया है।

उपनयन में पूर्वाह्न का प्राशसत्य– उपनयन में पूर्वाह्न को प्रशस्त माना गया है।

उपनयन में प्रशस्त लग्न एवं नवांश – वृष, सिंह, कन्या, धनु एवं मीन इन पाँच लग्नों में तथा इनके नवांश में उपनयन प्रशस्त माना गया है।

ध्यातव्य है कि, लग्नशुद्धि का विचार विस्तार भय से यहाँ भी नहीं लिखा जा रहा है। क्योंकि आपके लिये लग्नशुद्धिविषयक पाठ्यांश इसी (द्वितीय) खण्ड के तृतीय इकाई में निर्धारित है। अतः इस खण्ड के तृतीय इकाई में वर्णित लग्नशुद्धि के आधार पर सूक्ष्म विचार कर उपनयन के लिये प्रशस्त लग्न का चयन करेंगे।

उपनयन में प्रशस्त नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, (पुनर्वसु, केवल क्षत्रिय एवं वैश्य के लिये) पुष्य, आश्लेषा पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गगुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ा, श्रवणा, घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद एवं रेवती इन 22 नक्षत्रों में उपनयन प्रशस्त कहा गया है।

अभ्यास प्रश्न–

37. उपनयन में ...., ..., ..., ..., ..., एवं .... ये मास उपनयन के लिये प्रशस्त कहे गये है। खाली स्थानों को भरें।

38. उपनयन में सौरमान के अनुसार या चान्द्रमान के अनुसार मास का ग्रहण करना चाहिये?

39. .... एकादशी के बाद .... एकादशी पर्यन्त हरिशयन होता है। हरिशयन में उपनयन त्याज्य या प्रशस्त माना है? खाली स्थानों को भरकर उत्तर दीजिये।

40. संक्रान्ति, मासान्त एवं मासादि उपनयन में ....माना गया है। खाली स्थान को भरें।

41. उपनयन में .... पक्ष को ही प्रशस्त माना है। खाली स्थान को भरें।

42. उपनयन में ...., ..., ..., ..., ..., एवं .... तिथियों को प्रशस्त माना गया है। खाली स्थानों को भरें।

43. मंगलवार किस के लिये उपनयन में प्रशस्त माना गया है?

44. पुनर्वसु नक्षत्र केवल .... एवं .... के लिये प्रशस्त कहा गया है। खाली स्थानों को भरें।

1.5.6 उपनयन में निषिद्ध समय

आपको ध्यान रखना होगा कि कुछ ऐसे समय हैं जो उपनयन में त्याज्य होते हैं। जैसे मन्वादि, युगादि, अपराहण, सायं, प्रदोष एवं अनध्याय ये सभी उपनयन में निशिद्ध कहे गये है। यहाँ आपके लिये कुछ शब्द नये है अतः इन सभी नूतन शब्दों से आपका परिचय कराया जा रहा है।

मन्वादि – मन्वन्तर चौदह है। अतः मन्वादि तिथियाँ भी चौदह कहे गये हैं। यथा–चैत्रशुक्ल की तृतीया एवं पूर्णिमा, कार्तिकशुक्ल की पूर्णिमा एवं द्वादशी, आषाढ़शुक्ल की दशमी एवं पूर्णिमा, ज्येष्ठशुक्ल एवं फाल्गुन की पूर्णिमा, आश्विनशुक्ल की नवमी, माघशुक्ल सप्तमी, पौषशुक्ल एकादशी, भाद्रपदशुक्ल तृतीया एवं श्रावण कृष्ण की अमावस्या तथा अष्टमी ये 14 तिथियाँ मन्यादि तिथियाँ हैं। यहाँ किस तिथि को कौन मन्वादि प्रारम्भ होता है इसका स्पष्ट विवरण नीचे सारिणी में देखें।

मन्वादिबोधक सारणी

क्र.सं.	मनु के नाम	प्रारम्भ तिथियाँ	क्र.सं.	मनु के नाम	प्रारम्भ तिथियाँ
1	स्वायम्भुव	चैत्रशुक्ल तृतीया	8	सावर्णि	फाल्गुनशुक्ल पूर्णिमा
2	स्वारोचिश	चैत्रशुक्ल पूर्णिमा	9	दक्षसावर्णि	आश्विनशुक्ल नवमी
3	औत्तम	कार्तिकशुक्ल पूर्णिमा	10	ब्रह्मसवर्णि	माघशुक्ल सप्तमी
4	तामस	कार्तिकशुक्ल द्वादशी	11	धर्मसावर्णि	पौषशुक्ल एकादशी
5	रैवत	आषाढ़शुक्ल दशमी	12	रूद्रसावर्णि	भाद्रपदशुक्ल तृतीया
6	चाक्षुष	आषाढ़शुक्ल पूर्णिमा	13	इन्द्रसावर्णि	श्रावणकृष्ण अमावस्या
7	वैवस्वत	ज्येष्ठशुक्ल पूर्णिमा	14	दैवसावर्णि	श्रावणकृष्ण अष्टमी

युगादि – युगादि तिथियाँ चार हैं। कार्तिकशुक्ल नवमी सत्ययुगादि तिथि है। वैशाखशुक्ल तृतीया त्रेतायुगादि तिथि है। भाद्रकृष्ण त्रयोदशी द्वापरयुगादि तिथि है। तथा माघकृष्ण अमावस्या कलियुगादि तिथि है।

युगादिबोधक सारणी

क्र.सं.	युगादि का नाम	आरम्भ तिथि
1	सत्ययुगादि	कार्तिकशुक्ल नवमी
2	त्रेतायुगादि	वैशाखशुक्ल तृतीया
3	द्वापरयुगादि	भाद्रकृष्ण त्रयोदशी
4	कलियुगादि	मघकृष्णा अमावस्या

प्रदोश – तृतीया तिथि में यदि एक पहर रात्रि के भीतर चतुर्थी तिथि हो तो प्रदोश कहलाता है।

षष्ठी तिथि में यदि डेढ़ पहर रात्रि के भीतर सप्तमी तिथि हो तो प्रदोष कहलाता है।

द्वादशी तिथि में यदि मध्य रात्रि के भीतर त्रयोदशी तिथि हो तो प्रदोश कहलाता है।

नोट – चूँकि चार पहर का दिन तथा चार पहर की रात्रि होती है। अतः दिन या रात्रि के चतुर्थ भाग को पहर कहते है। इसलिये आप यदि दिनमान को चार से भागा देंगे तो दिन के एक पहर का मान हो जायेगा। तथा रात्रिमान को चार से भागा देंगे तो रात्रि के एक पहर का मान हो जायेगा।

अनध्याय – ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की द्वितीया, पौश शुक्ल पक्ष की एकादशी, माघ शुक्ल की द्वादशी, आषाढ़ शुक्ल पक्ष की दशमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, प्रतिपदा, अष्टमी और संक्रान्ति ये सब व्रतबन्ध में अनध्याय है।

निष्कर्ष–

शुद्धसमय में, ब्राह्मण के लिये 5 से 16 वर्ष तक, क्षत्रिय के लिये 11 से 22 वर्ष तक, वैष्व के लिये 12 से 24 वर्ष तक, सौरक्र से माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ मासों में, शुक्ल पक्ष में, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी तिथियों में, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, (पुनर्वसु, केवल क्षत्रिय एवं वैष्य के लिये) पुष्य, आश्लेषा पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवणा, घनिष्ठा शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद एवं रेवती नक्षत्रों में, रवि, सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र (मंगलवार, केवल सामवेदियों के लिये) दिनों में, वृष, सिंह, कन्या, धनु एवं मीन लग्नों में या इनके नवांश में, हरिशयन, संक्रान्ति मासान्त, मासादि, गुरू शुक्र के उदय, अस्त, बाल, वृद्ध, गुरू के अतिचार, सिंह मकराश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग, मन्वादि, युगादि, अपराहण, सायं, प्रदोष एवं अनध्याय को छोड़कर उपनयन शुभ कहा गया है। गुरूशुद्धि :– रामाचार्य के मत में, उत्तम– 2 |5 |7 |9 |11 स्थानों में, पूजोपरान्त उत्तम– 1 |3 |6 स्थानों में, निन्दित– 4 |8 |10 |12 स्थानों में, मतान्तर से, उत्तम– 2 |5 |7 |9 |11 स्थानों में, पूजोपरान्त उत्तम– 4 |10 |12 स्थानों में, निन्दित– 1 |3 |6 |8 स्थानों में।

उपनयन मुहूर्त की सारणी

वर्ष	ब्राह्मण के लिये 5 से 16 वर्ष तक, क्षत्रिय के लिये 11 से 22 वर्ष तक, वैश्य के लिये 12 से 24 वर्ष तक
मास	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़
पक्ष	शुक्लपक्ष
तिथियाँ	2 |3 |5 |10 |11 |12
वार	रवि, सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र (मंगलवार केवल सामवेदियों के लिये)
नक्षत्र	अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, (पुनर्वसु केवल क्षत्रिय एवं वैश्य के लिये), पुष्य, आश्लेषा पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवणा, घनिष्ठा शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद एवं रेवती
लग्न	वृष, सिंह, कन्या, धनु, मीन
अन्य त्याज्य समय	हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, मासादि, गुरू शुक्र के उदय, अस्त, बाल, वृद्ध, गुरू के अतिचार, सिंह मकराष्यंषस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग, मन्वादि, युगादि, अपराहण, सायं, प्रदोष एवं अनध्याय

अभ्यास प्रश्न

45. मन्वादि तिथियाँ कितनी है?

46. चैत्रशुक्ल की किन तिथियों में मन्वादि होते हैं?

47. आषाढ़शुक्ल की दशमी मन्वादि तिथि हैं या नहीं?

48. फाल्गुनशुक्ल की .... तथा आश्विनशुक्ल की .... तिथि मन्वादि तिथियाँ है। खाली स्थानों को भरें।

49. माघशुक्ल ...., पौशशुक्ल .... श्रावण कृष्ण की .... तथा अष्टमी ये तिथियाँ मन्वादि तिथियाँ है। खाली स्थानों को भरें।

50. युगादि तिथियाँ कितनी है?

51. सत्ययुगादि तिथि .... मास की .... तिथि है। खाली स्थानों को भरें।

52. वैशाखशुक्ल तृतीया .... युगादि तिथि है तथा भाद्रकृष्ण त्रयोदशी .... युगादि तिथि है। खाली स्थानों को भरें।

53. तृतीया तिथि में यदि .... प्रहर रात्रि के भीतर चतुर्थी तिथि हो तो प्रदोष कहलाता है। खाली स्थान को भरें।

54. द्वादशी तिथि में यदि .... रात्रि के भीतर त्रयोदषी तिथि हो तो प्रदोष कहलाता है। खाली स्थान को भरें।

1.6 सारांश

आपने इस इकाई में चूडाकरण मुहूर्त, विद्यारम्भ मुहूर्त तथा उपनयन मुहूर्त के बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन कर लिया है। यहाँ सारांश के रूप में इन तीनों के मुहूर्तों को संक्षेप में सारिणी के माध्यम से लिख रहा हूँ। सुविधा की दृष्टि से यह सारिणी आपके लिये उपयोगी होगी।

संस्कारों के नाम	चूडाकरणमुहूर्त	अक्षरारम्भमुहूर्त	विद्यारम्भमुहूर्त	उपनयनमुहूर्त
वर्ष	विषम (3 ।5 ।7 आदि)	पाँचवाँ वर्ष	....	ब्राह्मण के लिये 5 से 16 वर्ष तक क्षत्रिय के लिये 11 से 22 वर्ष तक वैश्य के लिये 12 से 24 वर्ष तक
मास	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़	माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़
पक्ष	शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष में पंचमी तिथि तक	शुक्लपक्ष को तथा कृष्णपक्ष में पंचमी तिथि तक	शुक्लपक्ष को तथा कृष्णपक्ष में पंचमी तिथि तक	शुक्लपक्ष
तिथियाँ	द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी एवं त्रयोदशी	द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी	द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी	द्वितीया, तृतीया, पंचमी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी
वार	सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र	सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र	रवि, बुध, गुरू एवं शुक्र	रवि, सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र (मंगलवार, केवल सामवेदियों के लिये
नक्षत्र	अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, श्रवणा, घनिष्ठा शतभिषा एवं रेवती	अश्विनी, आर्दा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवणा एवं रेवती	अश्विनी, मृगशिरा, आर्दा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, पूर्वाषाढ़, श्रवणा, घनिष्ठा शतभिषा एवं पूर्वभाद्रपद	अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा (पुनर्वसु, केवल क्षत्रिय एवं वैश्य के लिये), पुष्य, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवणा,

				घनिष्ठा शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद एवं रेवती
लग्न	वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु एवं मीन	वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन	वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन	वृष, सिंह, कन्या, धनु एवं मीन
अन्य त्याज्य समय	हरिशयन संक्रान्ति, मासान्त, मन्वादि, युगादि, गुरू शुक्र के उदय, अस्त, बाल, वृद्ध गुरू के अतिचार, सिंह मकराश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग	हरिशयन संक्रान्ति, मासान्त, मासादि, युगादि, गुरू शुक्र के उदय, अस्त, बाल, वृद्ध गुरू के अतिचार, सिंह मकराश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग	हरिशयन संक्रान्ति, मासान्त मासादि गुरू शुक्र के उदय, अस्त, बाल, वृद्ध गुरू के अतिचार, सिंह मकराश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग	हरिशयन संक्रान्ति, मासान्त, मासादि, गुरू शुक्र के उदय, अस्त, बाल, वृद्ध गुरू के अतिचार, सिंह मकराश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग, मन्वादि, युगादि, अपराहण, सायं, प्रदोष एवं अनध्याय
गुरूशुद्धि				रामाचार्य के मत में...... .. उत्तम–2 |5 |7 |9 |11 स्थानों में, पूजोपरान्त उत्तम 1 |3 |6 स्थानों में, निन्दित– 4 |8 |10 |12 स्थानों में मतान्तर से............... उत्तम–2 |5 |7 |9 |11 स्थानों में, पूजोपरान्तउत्तम–4 |10 |12 स्थानों में निन्दित – 1 |3 |6 |8 स्थानों में

1.7 शब्दावली

1. चूडाकरण – प्रथमतया शिखा/जूटिका का स्वरूप प्रदान करना चूडाकरण कहलाता है।
2. मुहूर्त – सामान्यतया दो घटी का एक मुहूर्त होता है। यहाँ मुहूर्त शब्द से विहित–समय/प्रशस्तसमय अभिप्रेत है।
3. अस्त – चन्द्र आदि ग्रह सूर्य के समीप होता है तब प्रकाशहीन होने के कारण अस्त कहलाता है।
4. वृद्ध – अस्त से पूर्व क्षीणप्रकाश होने के कारण ग्रह वृद्ध कहलाता है।

5. बालावस्था – अस्त के बाद जब ग्रह उदित होता है तब पर प्रकाशहीन होने के कारण ग्रहों की बालावस्था होती है।

6. सौरमास – सूर्य की संक्रान्ति पर्यन्त और मास कहलाता है।

7. हरिशयन – आषाढ़शुक्ल एकादशी से कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त हरिशयन कहलाता है।

8. संक्रान्ति – सूर्य जब एक राशि से दूसरी राशि में संक्रमण (गमन) करता है यानी प्रवेश करता है उसे संक्रान्ति कहते है।

9. मासान्त – संक्रान्ति से एक दिन पूर्व का दिन मासान्त कहलाता है।

10. मासादि – संक्रान्ति से एक दिन बाद का दिन मासादि कहलाता है।

13. गुर्वादित्ययोग – गुरू एवं सूर्य जब किसी एक राशि में होते है उसे गुर्वादित्ययोग कहते है।

14. नित्यकाल – उपनयन के लिये जो विहित काल (वर्ष) है उसे नित्य काल कहते है।

15. काम्यकाल – कामना विशेष के लिये जो उपनयन काल (वर्ष) बतलाया गया है उसे काम्य काल कहते है।

16. गौणकाल – नित्य एवं काम्य काल के अतिरिक्त किन्तु उपनयन की समय सीमा के अन्दर का समय (वर्ष) गौण काल कहलाता है।

17. व्रात्यलक्षण – अगर गौण काल में भी उपनयन नहीं होता है तो वह अनुपनीत बालक व्रात्य कहलाता है।

18. गुरूशुद्धि – जन्म राशि से गोचरीय गुरू के प्रशस्त स्थानों में रहने पर गुरूशुद्धि कहलाती है।

20. समयशुद्धि – गुरू के अतिचार, सिंह मकर राश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग आदि नहीं रहने पर शुद्धसमय कहलाता है।

21. मन्वादि – चैत्रशुक्ल तृतीया, चैत्रशुक्ल पूर्णिमा, कार्तिकशुक्ल पूर्णिमा, कार्तिकशुक्ल द्वादशी, आषाढ़शुक्ल दशमी, आषाढ़शुक्ल पूर्णिमा, ज्येष्ठशुक्ल पूर्णिमा, फाल्गुनशुक्ल पूर्णिमा, आश्विनशुक्ल नवमी, माघशुक्ल सप्तमी, पौषशुक्ल एकादशी, भाद्रपदशुक्ल तृतीया, श्रावणकृष्ण अमावस्या एवं श्रावणकृष्ण अष्टमी ये 14 मन्वादि तिथिया है।

22. युगादि – कार्तिकशुक्ल नवमी, वैशाखशुक्ल तृतीया, भाद्रकृष्ण त्रयोदशी एवं माघकृष्ण अमावस्या ये चार युगादि तिथियाँ कहलाती है।

23. वर्गोत्तम नवांश – जिस किसी राशि में उसी राशि का नवांश वर्गोत्तम नवांश कहलाता है।

24. अष्टकवर्ग – आठ वर्ग (स्थानसमूह) के आधार पर निर्मित, शुभाशुभसंकेतबोध कुण्डली को अष्टकवर्ग कहते है।

25. गोचरीयग्रह – इष्टकालिक ग्रह को गोचरीय ग्रह कहते है।

26. वक्ष्यमाण – जिस विषय को आगे कहा जाना है उसे वक्ष्यमाण कहते है।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वृद्ध, बाल एवं अस्त (मृत) अवस्था का।

2. जब गुरू या शुक्र सूर्य के समीप होता है तब प्रकाशहीन होने के कारण अस्त कहलाता है। अस्त से पूर्व क्षीणप्रकाश होने के कारण वृद्ध कहलाता है। एवं अस्त के बाद उदित होने पर प्रकाशहीन होने के कारण बालावस्था होती है।

3. जब ग्रह सूर्य के समीप होता है तब प्रकाशहीन होने के कारण अस्त हो जाता है।

4. चूडाकरण के लिये विषम वर्ष यानी 3, 5, 7 आदि वर्ष प्रशस्त है।

5. सौम्यायन के माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ ये पाँच मास चूडाकरण के लिये प्रशस्त माने गये है।

6. चूडाकरण कृष्ण पक्ष में पंचमी तिथि एक प्रशस्त है।

7. द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी एवं त्रयोदशी तिथियों को चूडाकरण में प्रशस्त माना गया है।

8. सोम, बुध .... गुरू .... एवं .... शुक्र .... वारों को चूडाकरण के लिये प्रशस्त माना गया है।

9. चूडाकरण के लिये 12 नक्षत्र प्रशस्त माने गये है।

10. वृष, मिथुन, कर्क, ... कन्या......... तुला, ...धनु......... एवं .... मीन......... इन सात लग्नों को चूडाकरण के लिये प्रशस्त माना गया है।

11. ....ज्येष्ठ......... सन्तान का ज्येष्ठ मास में मुण्डन का निषेध है।

12. मतान्तर से मार्गशीर्ष मास में ज्येष्ठ संतान का मुण्डन नहीं करना चाहिये।

13. नहीं करना चाहिये।

14. ....श्रीगणेश.......विष्णु.........सरस्वती.........तथा.........लक्ष्मी की पूजा करके बालक का अक्षरारम्भ कराना चाहिये।

15. अक्षरारम्भ के लिये .... पाँचवाँ............ वर्ष प्रशस्त माना गया है।

16. उत्तरायण को अक्षरारम्भ के लिये प्रशस्त माना गया है।

17. द्वितीया, ... तृतीया ...., पंचमी, षष्ठी, ... सप्तमी........, दशमी, ... एकादशी........... एवं द्वादशी तिथियों को अक्षरारम्भ में प्रशस्त माना गया है।

18. अश्विनी, एवं, आर्दा, नक्षत्रों को अक्षरारम्भ में प्रशस्त माना गया है।

19. सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र दिनों में अक्षरारम्भ प्रशस्त माना गया है।

20. वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन ये पाँच लग्न अक्षरारम्भ में प्रशस्त माने गये है।

21. उत्तरायण का चैत्र मास विद्यारम्भ में वर्जित है।

22. शुक्लपक्ष को तथा कृष्णपक्ष में पंचमी तिथि तक विद्यारम्भ के लिये प्रशस्त माना गया है।

23. विद्यारम्भ के लिये द्वितीया, तृतीया, ... पंचमी............., दशमी,...........एकादशी एवं............ द्वादशी .... प्रशस्त माना गया है।

24. अश्विनी, मृगशिरा, आर्दा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, पूर्वाषाढ़, श्रवणा, घनिष्ठा, शतभिषा एवं पूर्वभाद्रपद इन 16 नक्षत्रों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है।
25. रवि, ... बुध ...., गुरू एवं शुक्र .... दिनों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है।
26. वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन इन पाँच लग्नों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है।
27. उपनयन के लिये ब्राह्मण का...........8............वाँ वर्ष, क्षत्रिय का ....11........वाँ वर्ष तथा वैश्य का............12...........वाँ वर्ष नित्य काल कहा गया है।
28. ब्राह्मण को ब्रह्मतेज की कामना से 5 वें वर्ष में उपनयन करना चाहिये।
29. क्षत्रिय का 22 वर्ष तक गौण काल माना गया है।
30. अनुपनीत बालक गौण काल के बाद व्रात्य हो जाता है।
31. जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरू यदि 2 |5 |7 |9 |11 वें स्थान में हो तो उपनयन के लिये उत्तम माना जाता है।
32. गुरू अपनी उच्च राशि (कर्क) में विद्यमान हो तो गुरूशुद्धि .... होती .... है।
33. गुरू अपने मित्र की राशि में स्थित हो तो गुरूशुद्धि................ होती .... है।
34. गुरू अपनी..............नीच............राशि या .... शत्रु .... की राशि में स्थित हो तो गुरूशुद्धि नहीं होती है।
35. गोचरीय गुरूशुद्धि के अभाव में .... अष्टक .... वर्ग के अनुसार गुरू शुद्धि देखनी चाहिये।
36. गोचर एवं अष्टकवर्ग दोनों के अभाव में उपनयन मीन में सूर्य के रहने पर चैत्र मास में करना चाहिये।
37. उपनयन में..............माघ .... फाल्गुन, ..., ... चैत्र..........., ... वैशाख ...., ... ज्येष्ठ .... एवं .... आषाढ़ .... ये मास प्रशस्त कहे गये है।
38. उपनयन में सौरमान के अनुसार मास का ग्रहण करना चाहिये।
39. .... आषाढ़शुक्ल .... एकादशी के बाद .... कार्तिकशुक्ल .... एकादशी पर्यन्त हरिशयन होता है। हरिशयन में उपनयन त्याज्य माना है।
40. संक्रान्ति, मासान्त एवं मासादि उपनयन में .... त्याज्य .... माना गया है।
41. उपनयन में .... शुक्ल .... पक्ष को ही प्रशस्त माना है।
42. उपनयन में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी .... तिथियों को प्रशस्त माना गाय है।
43. मंगलवार सामवेदियों के लिये उपनयन में प्रशस्त माना गया है।
44. पुनर्वसु नक्षत्र केवल .... क्षत्रिय .... एवं .... वैश्य .... के लिये प्रशस्त कहा गया है।
45. मन्वादि तिथियाँ 14 है।
46. चैत्रशुक्ल की तृतीया एवं पूर्णिमा तिथियों में मन्वादि होते हैं।

47. आषाढ़शुक्ल की दशमी मन्वादि तिथि है।
48. फाल्गुन की .... पूर्णिमा .... तथा आश्विनशुक्ल की .... नवमी .... तिथियाँ मन्वादि तिथियाँ है।
49. माघशुक्ल .... सप्तमी, ... पौषशुक्ल .... एकादशी .... श्रावण कृष्ण की .... अमावस्या .... तथा अष्टमी ये तिथियाँ मन्वादि तिथियाँ है।
50. युगादि तिथियाँ 4 है।
51. सत्ययुगादि तिथि .... कार्तिकशुक्ल .... मास की .... नवमी .... तिथि है।
52. वैशाखशुक्ल तृतीया .... त्रेता .... युगादि तिथि है तथा भाद्रकृष्ण त्रयोदशी .... द्वापर .... युगादि तिथि है।
53. तृतीया तिथि में यदि .... एक .... प्रहर रात्रि के भीतर चतुर्थी तिथि हो तो प्रदोष कहलाता है।
54. द्वादशी तिथि में यदि .... मध्य .... रात्रि के भीतर त्रयोदशी तिथि हो तो प्रदोष कहलाता है।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मुहूर्तचिन्तामणि – रामदैवज्ञ
ज्योतिष चन्द्रिका – रेवतीरमण झा
विश्वविद्यालय पंचांग– रामचन्द्र झा, कामेश्वरसिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय
मनुस्मृति– गोपालशास्त्री नेने
समयशुद्धिविवेक – सीताराम झा
हिन्दू संस्कार – राजबली पाण्डेय
लघुजातक– वराहमिहिर
व्यवहार रत्न– भानुनाथ शर्मा

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मुहूर्तचिन्तामणि– शुभाशुभप्रकरण, नक्षत्रप्रकरण, संस्कारप्रकरण, संक्रान्तिप्रकरण।
2. मुहूर्तमार्त्तण्ड– नक्षत्रप्रकरण, संस्कारप्रकरण।
3. मुहूर्तपारिजात– परिचयप्रकाण्ड, संस्कारप्रकाण्ड।
4. मुहूर्तप्रकाश– संज्ञाप्रकरण, त्याज्यप्रकरण, संस्कारप्रकरण।
5. भारतीय कुण्डलीविज्ञान, मीठालाल हिम्मतराम ओझा– कुण्डलीविज्ञान भाग–1।
6. बृहज्जातक– अष्टकवर्ग। इत्यादि।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चूडाकरण में प्रशस्त मास, तिथि, लग्न एवं वारों को लिखिये।

2. विद्यारम्भ किस अयन मे, किन तिथियों में किन नक्षत्रों में तथा किन वारों में प्रशस्त कहा गया है?

3. उपनयन के लिये गुरूशुद्धिविचार करते हुये, तीनों वर्णों के लिये त्यि, काम्य एवं गौण काल को स्पष्ट कीजिये।

4. युगादि एवं मन्वादि तिथियों को स्पष्ट करें।

इकाई – 2 विवाह मुहूर्त्त

पाठ संरचना

2.1 प्रस्तावना

फलितज्योतिष डिप्लोमा कोर्स के पंचमपत्र में द्वितीय खण्ड के द्वितीय इकाई में आपका स्वागत है। इससे पूर्व प्रथम इकाई में आप ने चूडाकरणमुहूर्त, विद्यारम्भमुहूर्त एवं उपनयनमुहूर्त के विषय में अच्छी तरह जान लिया है। उसी क्रम में पहले आपने गुरू शुक्र का उदायस्त आदि विचार, ज्येष्ठ सन्तान का ज्येष्ठ मास में मुण्डन का निषेधविषयक विचार तथा माता के रजस्वला या गर्भवती रहने पर पुत्र के मुण्डन का विचार जाना है। तत्पश्चात् अक्षरारम्भ मुहूर्त एवं विद्यारम्भ मुहूर्त को तो जाना ही है, आपनें उपनयन के लिये नित्य, काम्य एवं गौण काल को तथा व्रात्य का लक्षण भी जान लिया है। इसके बाद उपनयन में गुरू (बल) शुद्धि–विचार, निन्दित एवं प्रशस्त गुरू का अपवाद, उपर्युक्त गुरूशुद्धि के अभाव में अष्टकवर्ग का महत्व, गोचर एवं अष्टकवर्ग दोनों के अनुसार गुरूशुद्धि के अभाव में अपवाद, उपनयन में गुरू शुक्र का उदयास्तादि विचार तथा उपनयन में समय शुद्धि विचार भी सूक्ष्म रूप से आपने अध्ययन कर लिया है। इसके बाद अन्त मे उपनयन के लिये प्रशस्त मास, तिथि, वार, नक्षत्र तथा उपनयन में निषिद्ध समय को भी जान लिया है। इस प्रकार पूर्व इकाई के अध्ययन से आप ने उत्तम चूडाकरणमुहूर्त, विद्यारम्भमुहूर्त तथा उपनयनमुहूर्त के विषय में बहुत कुछ अध्ययन कर लिया है।

अब आप इस द्वितीय इकाई में मुख्य रूप से विवाह मुहूर्तू के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। आप जानते हैं कि विवाह संस्कार सभी संस्कारों में अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार है। अतः इसके मुहूर्त निर्धारण में भी बहुत सारी बातों बातों पर ध्यान देना होता है। जैसे त्रिबलशुद्धि, समयशुद्धाशुद्धि विचार, प्रशस्त मास, तिथि, दिन, नक्षत्र आदि का विचार, लत्ता, पात, युति, वेध, जामित्र, बाण, खार्जूर (एकार्गल), उपग्रह, क्रान्तिसाम्य (महापात) तथा दगधतिथि दश दाषों का विचार इत्यादि विषयों को आप विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। इसके बाद लत्तादि दोषों के अपवाद, देश भेद से दोषों का परिहार, दोषसमुदाय के लिये विशेष परिहार को जानेंगे। तत्पश्चात् आप लत्तादि दोषों के आधार पर विवाह–रेखा–निर्धारण करना सीखेंगे। इसके बाद आप विवाह में त्रिज्येष्ठ विचार तथा त्रिज्येष्ठ का परिहार को जानकर परिस्थिति विशेष में दो शुभकर्मों (विवाह आदि) का निषेधविषयक अध्ययन करेंगे। तत्पश्चात् इस इकाई के अन्त में संकीर्ण विवाह मुहूर्त, गान्धर्व विवाहा मुहूर्त, विवाह में गोधूलि विचार तथा ऋतु भेद से गोधूलि का समय जानेंगे।

इस तरह यह इकाई भी आपके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इसमें सन्देह नहीं। इस इकाई के अध्ययन से आप समाज में विवाह के लिये शुभफलदायी मुहूर्त का निर्धारण कर सकेंगे। अतः इस इकाई का भी मनोयोग से अध्ययन करें।।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- विवाह पदार्थ से परिचित हो सकेंगे।
- विवाह में त्रिबलशुद्धि विचार करने में सक्षम हो पायेंगे।

- विवाह के लिये प्रशस्त मास, दिन, वार, नक्षत्र आदि का निश्चय कर पायेंगे।
- विवाह में विचारणीय लत्ता, पात, महापात, खर्जूर आदि विविध दोषों के विचार में समर्थ हो जायेंगे।
- विवाह में विचारणीय त्रिज्येष्ठादि विचार करने में भी दक्ष हो जायेंगे।

2.3 विवाह पदार्थ विवेचन

आप जानते हैं कि स्त्री एवं पुरूष के पवित्र बन्धन का नाम विवाह है। विवाह का दूसरा नाम पाणिग्रहण भी है। चूँकि विवाह संस्कार में वर शास्त्रीय विधि से अग्नि को साक्षी मानकर जीवन भी के लिये वधू का हाथ थाम लेते हैं, अतः इसे पणिग्रहण संस्कार भी कहते हैं।

विवाह संस्कार का हिन्दू संस्कारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह के साथ ही मनुष्य का गार्हस्थजीवन प्रारम्भ हो जाता है। स्मृतियों का मानना है कि जिस प्रकार समस्त जीव–जन्तु अपने जीवन के लिये वायु पर आश्रित है उसी प्रकार सम्पूर्ण (चारों) आश्रम गृहस्थाश्रम पर आश्रित है। गृहस्थ ज्ञान तथा अन्न से अन्य तीनों आश्रमों को सहायता करता है, अतः गृहस्थ अन्य तीनों आश्रमियों से श्रेष्ठ है। यही कारण है कि मनु ने गृहस्थाश्रम को इहलोक तथा परलोक दोनों के लिये साधक बतलाया है। जैसे भगवान् मनु लिखते है –

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।
यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।।
स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं यो धार्यो दुर्बलेन्द्रियैः।। इति।।

इस तरह स्पष्ट है कि विवाह संस्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार है। इसके महत्वपूर्ण होने के कारण ही महर्षियों ने इस संस्कार के लिये भी गम्भीरतया मुहूर्तविचार करने का निर्देश किया है। सम्प्रति आप उसी मुहूर्त विचार को विस्तृती रूप से अध्ययन करने जा रहे है।

2.4 विवाह में रवि–चन्द्र–गुरूबल विचार

आप जानते हैं कि सारा जगत ग्रह के प्रभाव से प्रभावित है। उसमें भी सूर्य, चन्द्र और गुरू अपने आप में अलग महत्व रखते है। प्रभाव की दृष्टि से ही चिन्तक मनीशियों ने मुहूर्त विचार में सूर्य, चन्द्र एवं गुरू को एक अलग महत्व दिया है। चूँकि ज्योतिशास्त्र में सूर्य को आत्मा, चन्द्र को मन तथा गुरू को कालपुरूष का ज्ञान कहा गया है, अतः इन

तीनों महत्वपूर्ण तत्वों की अनुकूलता विवाह आदि शुभकृत्यों में महर्षियों ने आवश्यक बतलाया है। इस सम्बन्ध में शास्त्रकारों का मत है कि विवाह के समय कन्या के लिये गुरूबल, वर के लिये रवि बल तथा दोनों के लिये चन्द्रबल का विचार करना चाहिये। उन्हीं तीनों विचारों को सम्प्रति आप अध्ययन करने जा रहे हैं।

2.4.1 विवाह में गुरूशुद्धि विचार

यह गुरू बल विचार आप ने उपनयन मुहूर्त के अध्ययन क्रम में जान लिया है। तथापि आप की सुविधा के लिये यहाँ भी लिख रहा हूँ।

(क) कन्या की जन्मकुण्डली में चन्द्रमा जिस राशि में होता है वह राशि उस कन्या की जन्मराशि कहलाती है। उसी जन्मराशि से विवाहकालिक गुरू की गोचरीय स्थिति के आधार पर गुरू (बल) शुद्धि का विचार किया जाता है।

1. उत्तम गुरूशुद्धि – जन्मराशि से विवाह कालिक गुरू यदि 2 ।5 ।7 ।9 ।11 वें स्थान में हो तो विवाह के लिये उत्तम माना जाता है।

2. मध्यम (पूजोपरान्त उत्तम) गुरूशुद्धि – जन्मराशि से विवाहकालिक गुरू यदि 1 ।3 ।6 स्थानों में से कहीं पर स्थित हो तो मध्यमगुरूशुद्धि होती है। किन्तु विवाह करना अभीष्ट हो तो धर्मशास्त्रीय विधि से गुरू की पूजा, दान, जप आदि करने से गुरूशुद्धि उत्तम हो जाती है।

3. निन्दित गुरू – जन्मराशि से विवाहकालिक गुरू यदि उपर्युक्त स्थानों (4 ।8 ।10 ।12) में हो तो विवाह के लिये अधम माना जाता है।

2.4.2 गुरूशुद्धि में मतान्तर –

1. उत्तम गुरूशुद्धि – जन्मराशि से विवाहकालिक गुरू यदि 2 ।5 ।7 ।9 ।11 वें स्थान में हो तो विवाह के लिये उत्तम माना जाता है।

2. मध्यम (पूजोपरान्त उत्तम) गुरूशुद्धि – जन्मराशि से विवाहकालिक गुरू यदि 4 ।10 ।12 स्थानों में हो तो विवाह के लिये मध्यम माना जाता है। किन्तु विवाह करना अभीष्ट हो तो धर्मशास्त्रीय विधि से गुरू की पूजा, दान, जप आदि करने से गुरूशुद्धि उत्तम हो जाती है।

3. निन्दित गुरू – जन्मराशि से विवाहकालिक गुरू यदि उपर्युक्त स्थानों से अतिरिक्त (1 ।3 ।6 ।8) स्थानों में हो तो विवाह के लिये अधम माना जाता है।

इस प्रकार अनेक स्थलों पर शास्त्रीय वचनों में आपको अन्तर दिख पड़ेंगे। ऐसी दुविधा की स्थिति में आप को देशाचार को ध्यान में रखते हुये किसी मुहूर्त का निर्णय करना होगा।

2.4.3 निन्दित एवं प्रशस्त गुरू का अपवाद –

ऊपर आपने जन्मराशि से विवाहकालिक (गोचरीय) गुरू के अशुभस्थान को जान लिया है। कभी कभी उक्त अशुभस्थान में स्थित गुरू भी अन्य परिस्थिति वश अनुकूलफलदायी हो जाते हैं। अर्थात् जन्मराशि से विवाहकालिक गुरू उपर्युक्त अशुभस्थान में स्थित हो, किन्त निम्नलिखित राशि अथवा नवांश में हो तो विवाह के लिये गुरू प्रशस्त

(शुभफलदायक) हो जाता है।

(क) निन्दित गुरू का अपवाद

उपर्युक्त गुरूशुद्धि के अभाव में भी विवाह किया जा सकता है, यदि–

1. गुरू अपनी उच्च राशि (कर्क) में विद्यमान हो।
2. अथवा गुरू अपनी राशि (धनु या मीन) में हो।
3. अथवा गुरू अपने मित्र की राशि (मेष, सिंह, वृश्चिक) में स्थित हो।
4. अथवा गुरू अपने नवमांश में यानी धनु या मीन के नवांश में हो।
5. अथवा गुरू वर्गोत्तम नवांश में हो।

नोट – जिस किसी राशि में उसी राशि का नवांश वर्गोत्तम नवांश कहलाता है।

जैसे – मेष राशि में मेष राशि का नवांश (यानी प्रथम नवांश) है। वृष राशि में वृष राशि का नवांश (यानी पंचम नवांश) वर्गोत्तम नवांश है। मिथुन राशि में मिथुन राशि का नवांश (यानी नवम नवांश) वर्गोत्तम नवांश है। इसी प्रकार कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, इन चर, स्थित, द्विःस्वभाव राशियों में क्रमशः प्रथम, पंचम, नवम नवमांश वर्गोत्तम नवांश होते है।

(ख) प्रशस्त गुरू का अपवाद

जन्मराशि से विवाहकालिक (गोचरीय) गुरू को शुभस्थानों में रहने के बावजूद कुछ अन्य परिस्थिति वश गुरू को शुभ नहीं माना जाता है। अर्थात् जन्मराशि से विवाहकालिक (गोचरीय) गुरू उपर्युक्त शुभस्थान में स्थित हो, किन्तु निम्नलिखित राशि में हो तो विवाह में गुरू अप्रशस्त (अशुभफलदायक) हो जाता है। यथा –

1. गुरू अपी नीच राशि (मकर) में स्थित हो।
2. अथवा गुरू अपनी शत्रु की राशि (वृष, मिथुन, कन्या, तुला) में हो।

2.4.4 विवाह में रविबल एवं चन्द्रबल विचार

आप को पता ही है कि विवाह में कन्या के लिये गुरूबल, वर के लिये रवि बल तथा दोनों के लिये चन्द्रबल अपेक्षित होता है। इसमें आपने गुरूबल विचार तो जान ही लिया है, अब आप को रवि बल एवं चन्द्रबल विचार को जानना है। इन दोनों विचारों को (साथ में गुरूबल को भी) जानने के लिये नीचे सारिणी लिख रहा हूँ। इस सारिणी के माध्यम से आप सुगमता से रविबल, चन्द्रबल एवं गुरूबल जान सकेंगे।

रविचन्द्रगुरूशुद्धिचक्रम्

ग्रहाः	रविः	चन्द्रः	गुरूः
शुभस्थानानि	3 |6 |10 |11	3 |6 |7 |10 |11	2 |5 |7 |9 |11
पूज्यस्थानानि	1 |2 |5 |7 |9	1 |2 |5 |9	1 |3 |6 |10
निन्दितस्थानानि	4 |8 |12	4 |8 |12	4 |8 |12

उदाहरण– 1. कल्पना किया कि किसी वर की जन्मराशि कर्क है। विवाहकालिक (गोचरीय) सूर्य मिथुन में है। यहाँ कर्क से मिथुन बारहवीं राशि होने के कारण सूर्य जन्म राशि से बारहवें स्थान में हो गया। ऊपर चक्र में 12 यह संख्या रवि के नीचे निन्दितस्थानानि के सामने लिखा है। अतः वर के लिये सूर्यबल नहीं हुआ।

2. इसी तरह कल्पना किया, विवाहकालिक (गोचरीय) चन्द्र मेष में है। यहाँ कर्क से मेष दशवीं राशि होने के कारण चन्द्र जन्म राशि से दसवें स्थान में हो गया। ऊपर चक्र में 12 यह संख्या रवि के नीचे निन्दितस्थानानि के सामने लिखा है। अतः वर के लिये सूर्यबल नहीं हुआ।

इसी तरह अन्य वर या कन्या का भी गुरूबल अथवा रविबल–चन्द्रबल विचार करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न–

1. गुरूशुद्धि विचार किस राशि से किया जाता है?
2. उत्तम गुरूशुद्धि कब होती है?
3. निन्दित गुरू कब होता है?
4. निन्दित गुरू के किसी दो अपवादों को लिखें।
5. गुरू अपने मित्र की राशि में स्थित हो तो गुरूशुद्धि के अभाव में विवाह किया जा सकता हैं या नहीं?
6. वर्गोत्तम नवांश क्या है?
7. वृष राशि में .... नवांश वर्गोत्तम नवांश है, तथा मिथुन राशि में .... नवांश वर्गोत्तम नवांश है। खाली स्थानों को भरिये।
8. गुरू अपनी .... राशि में स्थित हो तो तथा अपनी .... की राशि में हो तो प्रशस्त गुरू में भी विवाह नहीं करना चाहिये। खाली स्थानों को भरिये।
9. जन्म राशि से रवि के 3 ।6 ।10 ।11 स्थानों में रहने पर .... तथा चन्द्रमा के .... स्थानों में रहने पर अशुभ होता है। खाली स्थानों को भरिये।

2.4.5 गोचर (रवि–चन्द्र–गुरू) शुद्धि का अपवाद

(क) गोचरबल के अभाव में अष्टकवर्ग का महत्व– कुछ आचार्यों का मानना हैं कि यदि गोचर (रवि–चन्द्र–गुरू) शुद्धि नहीं हो रही हो किन्तु विवाह करना आवश्यक हो तो अष्टकवर्ग के अनुसार रवि–चन्द्र–गुरू शुद्धि देखना चाहिये। यानी अष्टकवर्ग के अनुसार रवि–चन्द्र–गुरू शुद्धि हो जाने पर विवाह का मुहूर्त निकाल देना चाहिये। इससे पूर्व उपनयन मुहूर्त विचार के क्रम में आपने गुरू का अष्टकवर्ग विचार अच्छी तरह जान लिया है। उसी तरह बृहज्जातक आदि होरा ग्रन्थों से सूर्य एवं चन्द्र का भी अष्टकवर्ग जानकर तदनुसार रवि–चन्द्र शुद्धि देखना चाहिये। यथा राजमार्तण्डकार लिखते हैं –

अष्टकवर्गविशुद्धेषु गुरूशीतांशुभानुषु।
व्रतोद्वाहौ च कर्तव्यौ गोचरेण कदापि न।। इति।।

(ख) अवथाविशेष में गोचर (रवि–चन्द्र–गुरू) शुद्धि का त्याग

यदि कन्या की अवस्था (उम्र) शास्त्रसम्मत अवस्था (दस वर्ष) से अधिक हो जाय तो गुरू (बल) शुद्धि की आवश्यकता नहीं होती है। अर्थात् गुरूशुद्धि के अभाव में भी कन्या का विवाह कर देना चाहिये। जैसे महर्षि व्यास कहते हैं –

दसवर्षव्यतिक्रान्ता कन्याशुद्धिविवर्जिता।
तस्यास्तारेन्दुलग्नानां शुद्धौ पाणिग्रहो मतः।। इति।।

यहाँ शास्त्रकारों ने रजोदर्शन से पूर्व विवाह करने पर विशेष बल दिया है। इसलिये गुरूशुद्धि का विचार करना भी रजोदर्शन से पूर्व ही अभिप्रेत है। अर्थात् रजस्वला के बाद गुरूशुद्धि के अभाव में भी गुरू का अपेक्षित पूजन करके कन्या का विवाह कर देना चाहिये। जैसे ज्योतिर्निबन्धकार लिखते हैं –

रजस्वला यदा कन्या गुरूशुद्धिर्न चिन्तयेत्।
अष्टमेऽपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात्।। इति।।

2.5 विवाह में गुरू शुक्र का उदयास्तादि विचार

आपको ध्यान रहें कि विवाहमुहूर्त निर्धारण क्रम में भी गुरू शुक्र के उदय, अस्त, बाल, वृद्ध आदि का विचार करना चाहिये। चूडाकरण मुहूर्त निर्धारण क्रम में आप ने जान लिया हैं कि प्रायः सभी महत्वपूर्ण शुभकृत्यों में गुरू शुक्र की प्रबलता अपेक्षित होती है। कोई भी ग्रह जब उदित होता है तो सबल होता है तथा अस्त होता है तो निर्बल होता है। उसी तरह की स्थिति गुरू और शुक्र के साथ भी है। जब गुरू या शुक्र, सूर्य के समीप होता है तब प्रकाशहीन होने के कारण वह अस्त कहलाता है। अस्त से पूर्व क्षीणप्रकाश होने के कारण वृद्ध कहलाता है। एवं अस्त के बाद उदित होने पर प्रकाशहीन होने के कारण बालावस्था होती है। गुरू शुक्र के इन तीनों अवस्थाओं को शुभकृत्यों में त्याज्य कहा गया है। यानी गुरू एवं शुक्र यदि वृद्ध, बाल या अस्त (मृत) अवस्था में हो तो विवाह आदि शुभकृत्य नहीं करना चाहिये। इससे सम्बन्धित सूक्ष्मविचार आप इसी द्वितीय खण्ड के तृतीय इकाई में अध्ययन करेंगे।

2.6 विवाह में समयशुद्धि विचार

जिस तरह विवाह में गुरू शुक्र के उदयास्तादि के आधार पर समय की प्रशस्तता एवं अप्रशस्तता का विचार किया जाता है उसी तरह गुरू के अतिचार, सिंह–मकर राश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग आदि के कारण भी समय की शुद्धाशुद्धि का विचार किया जाता है। इसके अनुसार जब शुद्ध समय होता है तब विवाह आदि शुभकृत्य प्रशस्त होता है, जब अशुद्ध समय होता है तब विवाह आदि शुभकृत्य अप्रशस्त होता है। अर्थात् अप्रशस्त समय में विवाह नहीं करना चाहिये। इससे सम्बन्धित समग्र विचार इसी खण्ड के अन्तिम (तृतीय) इकाई में दिया जा रहा है। अतः विस्तार भय से समयशुद्धाशुद्धि का विवेचन यहाँ नहीं किया जा रहा है। अर्थात् अतिचार, सिंह–मकर राश्यघ्शस्थ गुरू एवं गुर्वादित्य का अध्ययन आप तृतीय इकाई में करेंगे।

अभ्यास प्रश्न–

10. रजस्वला के बाद गुरूशुद्धि के अभाव में भी गुरू का अपेक्षित पूजन करके कन्या का विवाह करना चाहिये या नहीं?

11. गुरू अपनी उच्च राशि में विद्यमान हो तो गुरूशुद्धि .... है। खाली स्थान को भरें।

12. गुरू अपने मित्र की राशि में स्थित हो तो गुरूशुद्धि .... है। खाली स्थान को भरें।

13. गोचरीय गुरूशुद्धि के अभाव में .... वर्ग के अनुसार गुरू शुद्धि देखनी चाहिये। खाली स्थान को भरें।

2.7 विवाह में प्रशस्त मास, तिथि, वार, नक्षत्र

आप ने चूडाकरण, विद्यारम्भ एवं उपनयन के विचार क्रम में जिस तरह विहित मास, तिथि, नक्षत्र आदि का विचार करना सीख लिया है, उसी प्रकार अब आप विवाह के लिये प्रशस्त, मास, तिथि, नक्षत्र आदि को जानेंगे।

विवाह में प्रशस्त मास – शास्त्रकारों ने माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ एवं मार्गशीर्ष (अग्रहण) इन छः मासों को विवाह के लिये प्रशस्त कहा है।

मास विचार में सौर ग्राह्म – उपर्युक्त मास भी चूडाकरण की भाँति सौरमास के अनुसार ही समझना चाहिये, न कि चन्द्रमास के अनुसार। सौर मास का परिचय आपने चूडाकरण मुहूर्त ज्ञान के क्रम में जान लिया है।

विवाह मे जन्ममास का त्याग – आद्यगर्भ से उत्पन्न पुत्र–पुत्री का विवाह जन्म मास में निशिद्ध है।

हरिशयन का त्याग – आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त भगवान् विष्णु शयन में होते है। हरिशयन की अवधि को शास्त्रकारों ने विवाह आदि शुभकृत्य/संस्कार के लिये त्याज्य माना है। अतः आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त किसी भी शुभकृत्य के लिये मुहूर्त नहीं निकालना चाहिये।

संक्रान्ति, मासान्त एवं मासादि का त्याग – संक्रान्ति के दिन, संक्रान्ति से एक दिन पहले (मासान्त) एवं संक्रान्ति के एक दिन बाद (मासादि) इन तीनों दिनों में विवाह आदि शुभकृत्य/संस्कार नहीं करना चाहिये। जैसे कहा भी है –

शुभे कार्ये त्यजेत् च दिनत्रयम्। इति।।

विवाह में प्रशस्त पक्ष – विवाह में शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष दोनों को प्रशस्त कहा गया है।

विवाह में प्रशस्त तिथियाँ – प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी एवं पूर्णिमा (1 |2 |3 |5 |6 |7 |8 |10 |11 |12 |13 |15) इन तिथियों को विवाह में प्रशस्त माना गया है।

विवाह मे प्रशस्त वार – रवि, सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र दिनों में विवाह प्रशस्त माना गया है।

तिथि–वार के विषय में विशेष–कुछ आचार्यों का मानना हैं कि विवाह में अन्य तत्वशोधन की अपेक्षा तिथि–वार का विचार उतना महत्व नहीं रखता। यानी तिथि–वार से सम्प्राप्त विविध सिद्धियोगों में दुष्ट तिथि एवं दुष्ट वार का दोष नहीं होता है। उदाहरण के रूप में सत्यमुक्तावली का यह वचन द्रष्टव्य है –

शनैश्वरदिने चैव यदि रिक्तातिथिर्भवेत्।
तस्यां विवाहिता कन्या पतिसन्तानवर्द्धिनी।। इति।।

इस तरह के द्वन्द्व की स्थिति में शास्त्र एवं देशाचार दोनों को ध्यान में रखकर विवाह का मुहूर्त सुनिश्चित करना चाहिये।

विवाह में प्रशस्त लग्न – वृष, मिथुन, कन्या, तुला, धनु एवं मीन इन छः लग्नों में विवाह प्रशस्त माना गया है।

ध्यातव्य है कि, लग्नशुद्धि का विचार विस्तार भय से यहाँ भी नहीं लिखा जा रहा है। क्योंकि आपके लिये लग्नशुद्धिविषयक पाठ्यांश इसी (द्वितीय) खण्ड के तृतीय इकाई में निर्धारित है। अतः इस खण्ड के तृतीय इकाई में वर्णित लग्नशुद्धि के आधार पर सूक्ष्म विचार कर विवाह के लिये प्रशस्त लग्न का चयन करेंगे।

विवाह में प्रशस्त नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, मघा, उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढ़, श्रवणा, घनिष्ठा उत्तराभाद्रपद एवं रेवती इन 15 (पंचषलाका वेधरहित) नक्षत्रों में विवाह प्रशस्त कहा गया है।

विवाह मुहूर्त सारणी

मास	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ एवं मार्गशीर्ष
पक्ष	शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष

2.8.1 लत्ता दोष –

पूर्णचन्द्रमा अपने अधिष्ठित नक्षत्र से पीछे 22 वें नक्षत्र को, बुध अपने अधिष्ठित नक्षत्र से पीछे 7 वें नक्षत्र को, शुक्र अपने अधिष्ठित नक्षत्र से पीछे 5 वें नक्षत्र को और राहु अपने अधिष्ठित नक्षत्र से पीछे 9 वें नक्षत्र को लात मारता है। इसी प्रकार सूर्य अपने अधिष्ठित नक्षत्र से आगे 12 वें नक्षत्र को, मंगल अपने अधिष्ठित नक्षत्र से आगे तृतीय नक्षत्र को, गुरू अपने अधिष्ठित नक्षत्र से आगे 6 ठें नक्षत्र को तथा शनि अपने अधिष्ठित नक्षत्र से आगे 8 वें नक्षत्र को लात मारता है। किसी ग्रह से लात मारा हुआ नक्षत्र विवाह के लिये शुभफलप्रद नहीं होता है।

शास्त्रकारों ने इनके अशुभ फल भी अलग अलग तरह के प्रतिपादन किये हैं, जो नीचे चक्र में आप देख सकते हैं।

लत्तादोषबोधक चक्रम्

ग्रहाः	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	राहुः
ग्रह से नक्षत्र की दूरी	12	22	3	7	6	5	8	9
दिशा	आगे	पीछे	आगे	पीछे	आगे	पीछे	आगे	पीछे
फलम्	धननाश	भय	मृत्यु	भय	बन्धुनाश	कार्यहानि	कुलक्षय	मरण

उदाहरण – कल्पना कीजिये सूर्य अश्विनी नक्षत्र पर है और विवाह उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र में करने की इच्छा है। यहाँ अश्विनी (सूर्य के नक्षत्र) में उत्तराफाल्गुनी आगे बारहवाँ नक्षत्र है। अतः उत्तराफाल्गुनी लत्तादोषयुक्त हो गया। फलतः इस नक्षत्र में विवाह नहीं किया जा सकता। इसी तरह अन्य अभीष्ट नक्षत्रों के विषय में भी लत्तादोष का विचार करके दोषरहित नक्षत्र को ही विवाह में ग्रहण करना चाहिये।

2.8.2 पात दोष

आप जानते हैं कि विष्कम्भादि अठाईस योग हैं। इनमें हर्षण, वैधृति, साध्य, व्यतिपात, गण्ड और शूल ये छः ऐसे योग हैं जिसके अन्त में रहने वाला नक्षत्र पात नामक दोष से दूषित हो जाता है। अर्थात् हर्षण, वैधृति, साध्य, व्यतिपात, गण्ड और शूल इन छः योगों का अन्त जिस नक्षत्र में होता है वह पात से दूषित होता है। अतः विवाह में प्रशस्त नक्षत्र होते हुए भी यदि उस नक्षत्र में उपर्युक्त छः योगों में से किसी योग का अन्त होता हो तो उस नक्षत्र को पात दोषयुक्त होने के कारण विवाह में त्याज्य समझना चाहिये।

2.8.3 युति दोष

जिस नक्षत्र में विवाह हो उसी नक्षत्र में यदि कोई ग्रह हो तो, उस ग्रह की युति का दोष समझा जाता है। चन्द्रमा अपने उच्च में, मित्र के घ में या स्वक्षेत्री हो तो युति दोष नहीं होता है, किन्तु श्रेष्ठ होता है। सूर्य, मंगल, शुक्र, शनि, राहु, केतु की युति दारिद्रय, मृत्यु आदि भयप्रद मानी गयी है। स्पष्टता के लिये नीचे चक्र का अवलोकन करें।

ग्रह–चन्द्र युति–फलबोधक–चक्र

सूर्य चन्द्र	मंगल चन्द्र	बुध चन्द्र	गुरू चन्द्र	शुक्र चन्द्र	शनि चन्द्र	राहु चन्द्र	केतु चन्द्र
निर्धनता	घात रोग	सन्तान–हानि	सौभाग्य	सौतियाभाव	गृहत्याग	कलह	कष्ट, दैन्य
अशुभ	अशुभ	अशुभ (मतान्तर से शुभ)	शुभ	अशुभ	अशुभ	अशुभ	अशुभ

शुक्र की युति विशेष करके वर्जित है। यह गौड देश में अति निन्दित है।

अभ्यास प्रश्न–

21. पूर्णचन्द्रमा अपने अधिष्ठित नक्षत्र से पीछे .... वें नक्षत्र को तथा बुध अपने अधिष्ठित नक्षत्र से .... 7 वें नक्षत्र को लात मारते हैं। खाली स्थान को भरिये।

22. मंगल अपने अधिष्ठित नक्षत्र से आगे .... नक्षत्र को लात मारता है।

23. सूर्य .... नक्षत्र पर हो तो उत्तराफाल्गुनी लत्तादोषयुक्त होता है। खाली स्थान को भरिये।

24. किन छः योगों का अन्त नक्षत्र में होने से नक्षत्र पातदोष से दूषित हो जाता है?

25. चन्द्रमा अपने .... में, मित्र के घर में या .... हो तो युति दोष नहीं होता है। खाली स्थानों को भरिये।

26. ...., ..., ... शनि, राहु केतु की युति दारिद्रय, मृत्यु आदि भयप्रद मानी गयी है। खाली स्थानों को भरिये।

27. युतिदोष .... देश में अति निन्दित है। खाली स्थान को भरें।

2.8.4 वेध दोष

आप जानते हैं कि पंचषलाका का शाब्दिक अर्थ होता है पाँ शलाका से बना हुआ चक्र। अर्थात् मुख्यतया पाँच खड़ी एवं पाँच पड़ी रेखा से निर्मित चक्र को पंचषलाका चक्र कहते है। इस चक्र में आगे कहे हुये निर्देश के अनुसार नक्षत्रों को लिखा जाता है, और तत्पश्चात् उसमें वेध का विचार किया जाता है। इसी वेध विचार को पंचशलाका वेध कहते हैं।

पंचषलाका वेध – रोहिणी–अभिजित्, मृगशिरा–उत्तराषाढ़, आर्द्रा–पूर्वाषाढ़, पुनर्वसु–मूल, पुष्य–ज्येष्ठा, आश्लेषा–धनिष्ठा, मघा–श्रवणा, पूर्वाफाल्गुनी–अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी–रेवती, हस्त–उत्तराभाद्रपद, चित्रा–पूर्वाभाद्रपद, स्वाती–शतभिषा, विशाखा–कृत्तिका तथा अनुराधा–भरणी, इन दो दो नक्षत्रों में परस्पर वेध होता है। इन दोनों नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र पर कोई ग्रह हो तो दूसरा नक्षत्र विद्ध कहलाता है। इस पंचशलाका चक्र के अनुसार विवाह नक्षत्र का क्रूरग्रह द्वारा वेध हो जाने पर वह नक्षत्र विवाह के लिये सर्वथा त्याज्य माना जाता है। परन्तु बुध, गुरू आदि सौम्य ग्रहों का चरण बेध अशुभ माना जाता है। जैसे नारद का वचन देखें– ''पादमेक शुभैर्विद्धमशुभेनैव कृत्स्नतः'' इति।।

तिथियाँ	प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी एवं पूर्णिमा (1 ।2 ।3 ।5 ।6 ।7 ।8 ।10 ।11 ।12 ।13 ।15)
वार	रवि, सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र
नक्षत्र	अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, मघा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा मूल, उत्तराषाढ़, श्रवणा, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद एवं रेवती
लग्न	वृष, मिथुन, कन्या, तुला, धनु, मीन
गुरूशुद्धि	रामाचार्य के मत में, उत्तम–2 ।5 ।7 ।9 ।11 स्थानों में, पूजोपरान्त

उत्तम–1 ।3 ।6 स्थानों में,
निन्दित – 4 ।8 ।10 ।12 स्थानों में,
मतान्तर से ....
उत्तम–2 ।5 ।7 ।9 ।11 स्थानों में, पूजोपरान्तउत्तम–4 ।10 ।12 स्थानों में,
निन्दित – 1 ।3 ।6 ।8 स्थानों में

अन्य त्याज्य समय	हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, मासादि, गुरू शुक्र के उदय, अस्त, बाल, वृद्ध, गुरू के अतिचार, सिंह मकराष्यंषस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग

अभ्यास प्रश्न

14. विवाह में माघ, फाल्गुन, ..., ज्येष्ठ, ... एवं .... ये छः मास प्रशस्त कहे गये है। खाली स्थानों को भरें।
15. विवाह में आद्यगर्भ से उत्पन्न पुत्र–पुत्री का विवाह .... मास में निशिद्ध है। खाली स्थान को भरें।
16. हरिशयन की अवधि को शास्त्रकारों ने विवाह आदि शुभकृत्य/संस्कार के लिये .... माना है। खाली स्थान को भरे।
17. संक्रान्ति के दिन, संक्रान्ति से एक दिन .... (मासान्त), एवं संक्रान्ति के एक दिन .... (मासादि) इन तीनों दिनों में विवाह आदि शुभकृत्य/संस्कार नहीं करना चाहिये।
18. विवाह में प्रतिपदा, ..., ..., पंचमी, षष्ठी, ..., अष्टमी, ... एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी एवं .... इन तिथियों को विवाह में प्रशस्त माना गया है। खाली स्थानों को भरिये।
19. विवाह में रवि, ..., ..., गुरू एवं .... दिनों में विवाह प्रशस्त माना गया है। खाली स्थानों को भरिये।
20. विवाह में ...., ..., ..., मघा, उत्तराफाल्गुनी, ..., चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, ... श्रवणा, धनिष्ठा उत्तराभाद्रपद एवं रेवती ये 15 नक्षत्र प्रशस्त कहे गये है। खाली स्थानों को भरिये।

2.8 विवाह में लत्ता, पात, युति, वेध, जामित्र, बाण, खार्जूर (एकार्गल), उपग्रह, क्रान्तिसाम्य (महापात) एवं दग्धतिथि, इनद स दोषों का विचार।

ऊपर आपने विवाह के लिये शुद्धसमय, विवाह में विहित मास, तिथि, नक्षत्र को जान लिया है। अब इसी क्रम में लत्ता, पात, क्रान्तिसाम्य (महापात), खार्जूर आदि दस दोषों को आप जानेंगे। क्योंकि विवाहमुहूर्त के निर्धारण में इन दोषों का विचार आवश्यक होता है। अतः इन दोषों का विवेचन नीचे क्रमशः किया जा रहा है।

चरण वेध – ग्रह प्रथम चरण में हो तो दूसरे नक्षत्र के प्रथम चरण में वेध होता है। यदि ग्रह द्वितीय चरण में हो तो दूसरे नक्षत्र के तृतीय चरण में, तथा ग्रह यदि तृतीय चरण में हो तो दूसरे नक्षत्र के द्वितीय चरण में वेध होता है। स्पष्टता के लिये पंचशलाका चक्र का अवलोकन करें –

पंचशलाका वेध चक्र
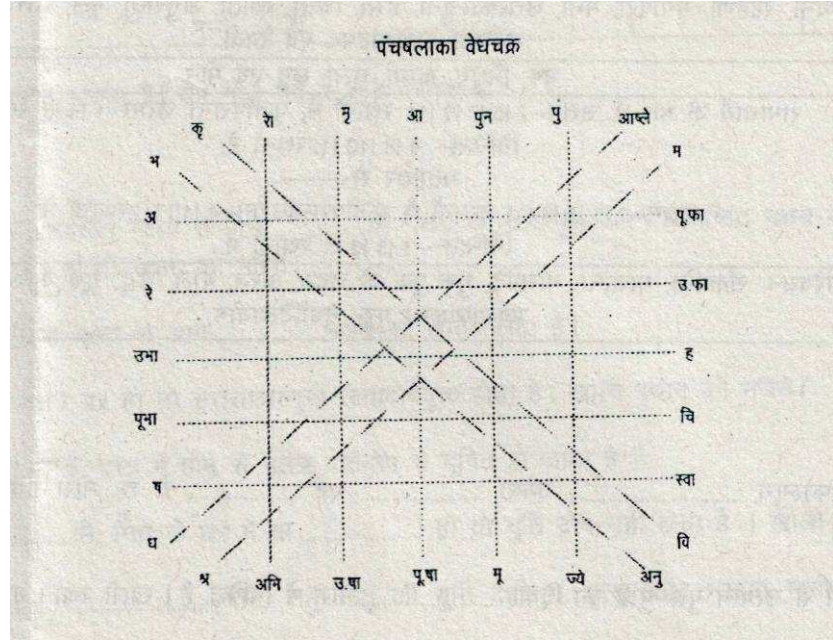
उदाहरण – कल्पना कीजिये मंगल भरणी नक्षत्र पर है और विवाह अनुराधा नक्षत्र में करने की इच्छा है। यहाँ पंचशलाका वेध चक्र में अनुराधा और भरणी का परस्पर वेध बनने के कारण भरणीनक्षत्र पर स्थित मंगल अनुराधा नक्षत्र को वेध कर रहा है। फलतः इस अनुराधा नक्षत्र में विवाह नहीं किया जा सकता। इसी तरह अन्य अभीष्ट नक्षत्रों के विषय में भी वेध का विचार करके पापवेधरहित नक्षत्र को ही विवाह में ग्रहण करना चाहिये।

2.8.5 जामित्र दोष

आप जानते हैं कि जामित्र शब्द जाया अर्थात् पत्नी का पर्यायवाची शब्द है। कुण्डली में लग्न से सप्तम स्थान को जाया/पति भाव या जामित्रभाव कहते है। यानी सप्तम भाव का दुषित होना जाया/पति के लिये अच्छा नहीं कहा जा सकता। यही कारण हैं कि ऋषियों ने विवाहलग्न या विवाहकालिक चन्द्रमा से सातवें स्थान में ग्रहस्थिति के आधार पर जामित्र दोष का प्रतिपादन किया है।

विवाहलग्न या विवाहकालिक चन्द्रमा से सातवें स्थान में कोई ग्रह पड़े तो जामित्र दोष होता है। यह जामित्र दोष विवाह में अति अशुभ माना जाता है।

सूक्ष्म जामित्र दोष – विवाहलग्न या चन्द्रमा जिस नवांश पर हो उससे 55 वाँ नवांश पर कोई ग्रह रहे तो सूक्ष्म जामित्र दोष होता है। यह सूक्ष्म जामित्र दोष भी विवाह में अशुभ माना जाता है।

यहाँ ध्यातव्य है कि किसी भी राशि से सातवीं राशि में समान संख्यक नवांश 55 वाँ नवांश होता है। जैसे मेष राशि के प्रथम नवांश से 55 वाँ नवांश तुला का प्रथम नवांश है। मेष राशि के द्वितीय नवांश से 55 वाँ नवांश तुला का द्वितीय नवांश है। उसी तरह वृष राशि के प्रथम नवांश से 55 वाँ नवांश वृश्चिक का प्रथम नवांश है। वृष राशि के द्वितीय नवांश से 55 वाँ नवांश वृश्चिक का द्वितीय नवांश है। इसी तरह सभी राशियों में समझना चाहिये।

2.8.6 बाण दोष

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से अभीष्ट (विवाह) समय तक जितनी तिथियाँ बीत गई हों, उस तिथि संख्या में विवाह की लग्न की संख्या को जोड़कर 9 का भाग देने से यदि 8 शेष बचे तो रोग, यदि 2 शेष बचे तो अग्नि, यदि 4 शेष बचे तो राज, यदि 6 शेष बचे तो चौर, और यदि 1 शेष बचे तो मृत्युवाण होता है। यह दाक्षिणात्य (महाराष्ट्र) में प्रसिद्ध है। अन्य देशों में इसे नहीं विचार करना चाहिये।

प्राचीन मत में वाणदोष – विवाह कालिक स्पष्ट सूर्य के बीते हुये अंशों की संख्या (गतसूर्यांश) को पाँच स्थानों में रखकर क्र से 6 |3 |1 |8 |4 को जोड़कर 9 का भाग देने से जिस स्थान में पाँच शेष बचे उस स्थान में क्रम से रोग, अग्नि, नृप, चौर और मृत्यू ये पाँच बाणदोष होते है। यहाँ पाँचों शेषों के योग में 9 का भाग देने से पाँच शेष बचे तो सशल्य मृत्युबाण होता है। आसानी से समझने की दृष्टि से आपके लिये नीचे उदाहरण दिया जा रहा है।

उदाहरण – कल्पना किया कि विवाह लग्न के समय सूर्य मेष राशि के 20 अंश का भाग कर इक्कीसवें अंश पर विद्यमान है। यानी सूर्य का गतांश 20 हुआ। अतः सूर्य के गतांश 20 को 5 स्थानों में रखकर क्रम से 6 |3 |1 |8 |4 जोड़ दिया।

सूर्यांश–	20	20	20	20	20
क्षेपक–	+6	+3	+1	+8	+4
योग –	26	23	21	28	24

पाँचों स्थानों में 9 का भाग देने से क्रम से 8 |5 |3 |1 |6 शेष बचते हैं। यहाँ दूसरे स्थान में पाँच शेष बचा है, अतः अग्नि बाण हुआ। यह अग्नि बाण (आगे निर्दिष्ट चक्र के अनुसार) गृहाच्छादन में त्याज्य होता है। यानी इसके अनुसार विवाह के लिये कल्पिक समय में बाण दोष तो नहीं हुआ। परन्तु सभी शेषों के योग = 8+5+3+1+6 = 23 में 9 का भाग देने से 5 शेष बचा। अतः इसके अनुसार सशल्य बाण हुआ। फलतः कल्पित विवाह का समय ग्रह्म नहीं हुआ।

वाण दोषों के तीन परिहार – 1. रात में चौर एवं रोग बाण, दिन में राजबाण, सर्वदा अग्निबाण, और दोनों सन्ध्याओं में मृत्युबाण शुभ नहीं होता है।

2. शनि वार को राज बाण, बुधवार को मृत्यु बाण, मंगलवार को अग्निबाण एवं चौरबाण, रविवार को रोगबाण हो तो कोई शुभकार्य नहीं करना चाहिये।

3. उपनयन में रोग बाण, गृहाच्छादन में अग्निबाण, नृपसेवा में राजबाण, यात्रा में चौरबाण तथा विवाह में मृत्युबाण को त्याग देना चाहिये।

आपकी सुविधा के लिये नीचे सारणी दी जा रही है, जिसकी सहायता से आप आसानी से बाण का ज्ञान तो कर ही सकते हैं साथ में बाण का प्रभावी समय, प्रभावी वार, तथा त्याज्य कृत्य, ये तीनों तरह के परिहार जान सकते है।

बाण पंचक सारणी

बाण	रोगबाण	अग्निबाण	नृपबाण	चौरबाण	मृत्युबाण
शेषांक	8	2	4	6	1
प्रभावी समय	रात में	सर्वदा	दिन में	रात में	दोनों सन्ध्याओं में
प्रभावी वार	रविवार	मंगलवार	शनिवार	मंगलवार	बुधवार
त्याज्य कृत्य	उपनयन	गृहाच्छादन	राजसेवा	यात्रा	विवाह

2.8.7 खार्जूर (एकार्गल) दोष

विवाह के समय व्याघात, गण्ड, व्यतिपात, विश्कम्भ, शूल, वैधृति, वज्र, परिध, अतिगण्ड इन योगों में से कोई योग हों और सूर्य के नक्षत्र से विषम (1 ।3 ।5 ।7 ।9 ।11 ।13 ।15 ।17 ।19 ।21 ।23 ।25 ।27) नक्षत्र पर चन्द्रमा हो तो खार्जूर नामक दोष होता है। यह दोष भी विवाह में निन्दित कहा गया है। इसी दोष को एकार्गल दोष भी कहते है। ध्यान रहें कि यहाँ अभिजित सहित नक्षत्र ग्राह्य है। अर्थात् सूर्य के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र को गिनते समय अभिजित नक्षत्र को भी गिनना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न –

28. रोहिणी और .... में तथा .... और उत्तराभाद्रपद में परस्पर वेध होता है। खाली स्थानों को भरें।

29. यदि ग्रह द्वितीय चरण में हो तो दूसरे नक्षत्र के .... चरण में वेध होता है। खाली स्थान को भरें।

30. विवाहलग्न या विवाहकालिक चन्द्रमा से सातवें स्थान में कोई ग्रह पड़े तो .... दोष होता है। खाली स्थान को भरें।

31. सूक्ष्म जामित्र दोष कब होता है?

32. खार्जूर नामक दोष कब होता है?

2.8.8 उपग्रह दोष

विवाह के समय जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से 5 ।7 ।8 ।10 ।14 ।15 ।18 ।19 ।21 ।22 ।23 ।24 ।25 वें नक्षत्र पर चन्द्रमा हो तो उपग्रह नाम का दोष होता है।

यह उपग्रहदोष कुरू (कुरूक्षेत्र) और वाहलिक (आगरा प्रान्त) में विवाहादि शुभकार्य में त्याज्य माना गया है।

2.8.9 क्रान्तिसाम्य (महापात) दोष

सिंह–मेष, वृष–मकर, तुला–कुम्भ, कन्या–मीन, कर्क–वृश्चिक एवं धनु–मिथुन, इन दो दो राशियों में परस्पर सूर्य और चन्द्रमा के रहने पर क्रान्तिसाम्य नामक दोष होता है। यह विवाह लग्न के अवसर पर हो तो अनिष्टकारक होता है। स्पष्टता के लिये नीचे चक्र का अवलोकन करें।
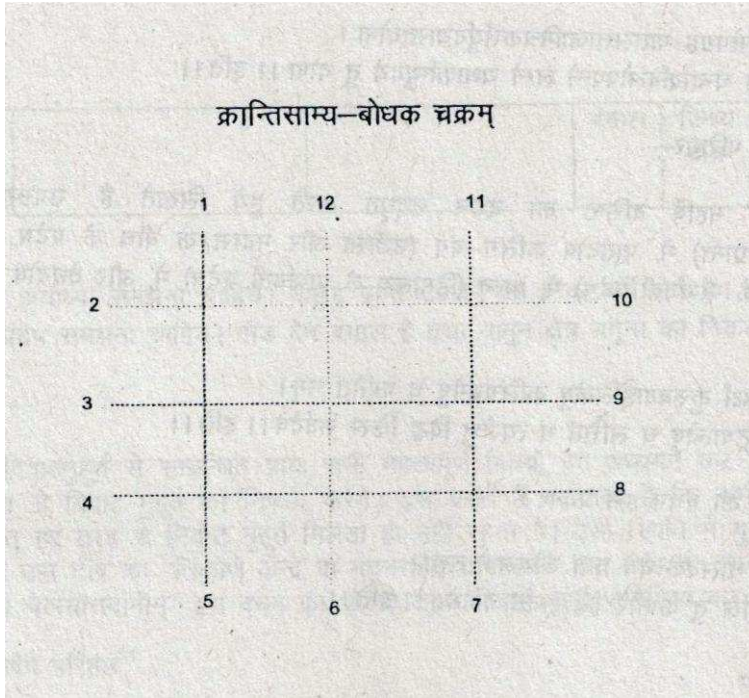
2.8.10 दग्धतिथि दोष

सूर्य धनु या मीन में हो तो द्वितीया तिथि, वृष या कुम्भ में हो तो चतुर्थी तिथि, कर्क या मेष में हो तो षष्ठी तिथि, कन्या या मिथुन में हो तो अष्टमी तिथि, सिंह या वृश्चिक में हो तो दशमी तिथि, तथा सूर्य मकर या तुला में हो तो द्वादशी तिथि दग्ध तिथि होती है। यह विवाह में निषिद्ध है। आप की सुविधा के लिये इसे चक्र के रूप में भी लिखा जा रहा है –

सूर्य राशि	धनु–मीन	वृष–कुम्भ	कर्क–मेष	कन्या–मिथुन	सिंह–वृश्चिक	मकर–तुला
दग्धतिथि	2	4	6	8	10	12

2.9 लत्तादि दोषों के अपवाद

आपने उपर्युक्त दोषों के बारे में अध्ययन कर लिया है। इन दोषों का विचार करने से पूर्व निम्नलिखित अपवादों पर भी ध्यान देना चाहिये। यदि अपवाद के आधार पर किसी दोष का विचार अपेक्षित नहीं हो तो वह विचार नहीं करना चाहिये।

(क) सूर्य और चन्द्रमा का प्रबल होना–

रामाचार्य लिखते हैं, विवाह समय में सूर्य और चन्द्रमा दोनों बली हों (अपनी उच्च राशि में, अपनी राशि में, अपने मित्र की राशि में, अपने मूलत्रिकोण में, अपने नवांश में, वर्गोत्तम नवांश में अथवा मित्र के द्वारा देखा जाता हो) तो एकार्गल, उपग्रह, पात, लत्ता, जामित्र, कर्तरी, उदयास्त आदि सभी दोष वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्य के उदय होने पर रात्रि नष्ट हो जाती है।

एकार्गलोपग्रह पातलत्तजामित्रकर्त्तर्युदयास्तदोषाः।
नश्यन्ति चन्द्रार्कबलोपपन्ने लग्ने यथार्काभ्युदये तु दोषाः।। इति।।

(ख) देश भेद से दोषों का परिहार–

दैवज्ञ रामाचार्य महर्षि वसिष्ठ का वचन उद्धृत करते हुये लिखते हैं, उपग्रहदोष कुरूक्षेत्र और बाह्लीक (कश्मीर/आगरा प्रान्त) में, पातदोष कलिंग–बंग (उड़ीसा और मद्रास के बीच के प्रदेश, बंगाल, अयोध्या) में लत्तादोष सौराष्ट्र (सूरत के पार्श्ववर्ती प्रदेश) में, शाल्व (हिमालय के पार्श्ववर्ती प्रदेश) में, और वेधदोष सर्वत्र (सभी देशों में) वर्जित है। यथा –

उपग्रहर्क्षं कुरूबवाह्लिकेषु कलिंगबंगेषु च पातितं भम्।
सौराष्ट्रशाल्वेषु च लत्तितं भं त्यजेत्तु विद्धं किल सर्वदेशे।। इति।।

इस प्रसंग में विवाह पटल का वचन इस प्रकार है –

लत्ता मालवके देशे पातं कोशलके तथा।
एकार्गलं तु कश्मीरे वेधं सर्वत्र वर्जयेत्।। इति।।

वराहमिहिर लिखते है –

युति दोषों भेद् गौडे जामित्रस्य च यामुने।
वेधदोषस्तु विन्ध्याख्ये देशे नान्येशु केशु च।। इति।।

मुहूर्तगणपतिकार लिखते हैं –

''लत्तोपग्रहपातेषु त्याज्यानैवाड्घ्रयोः परे।।'' अर्थात् लत्ता, उपग्रह तथा पात दोष से दूषित नक्षत्र चरण ही त्याज्य है।

आप की सुविधा के लिये इन तीनों मतों को एक साथ नीचे सारणी में दर्शाया जा रहा है। यहाँ सारणी देखने से आसानी से समझ सकते हैं कि किस देश में कौन सा दोष वर्जित करना चाहिये? इन मतों को देशाचार के अनुसार लागू करना चाहिये।

दोषों के नाम वसिष्ठ/रामाचार्य का मत	लत्ता	पात	युति	वेध	जामित्र	खर्जूर (एकार्गल)
	सौराष्ट्र (सूरत, काठियावाड), शाल्व (हिमालय के पार्श्ववर्ती प्रदेश)	कलिंग (उड़ीसा और मद्रास के बीच का प्रदेश)		सर्वत्र		
विवाह पटल के अनुसार	उज्जैन आदि प्रदेश	अयोध्या क्षेत्र		सर्वत्र		कश्मीर
वराहमिहिर के अनुसार			बंगाल	विन्ध्य क्षेत्र	यमुना प्रान्तीय देश	

ध्यातव्य – कोशल शब्द से अयोध्या समझना चाहिये। मालव प्रान्त उज्जैन का निकटवर्ती क्षेत्र है। कुरू शब्द से कुरूक्षेत्र एवं बांगर के निकटवर्ती प्रदेश समझना चाहिये। गौड देश बंगाल है तथा यामुन क्षेत्र यमुना का निकटवर्ती क्षेत्र है।

(ग) अन्तिम परिहार

ऊपर आप ने विवाहमुहूर्त से सम्बन्धित प्रायः सभी महत्वपूर्ण विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब इसके आधार पर आप गम्भीरता से विवाह मुहूर्त का निश्चय करेंगे। इस प्रसंग में ध्यातव्य है कि कभी कभी विवाह करना अत्यावश्यक होता है किन्तु हर तरह से निर्दुष्ट मुहूर्त मिलता ही नहीं रहता है। ऐसी स्थिति में गुण की अपेक्षा अर्धाल्प दोष वाले मुहूर्त में अथवा उस दोष का ''त्रिकोणे केन्द्रे वा मदनरहिते दोषतक'' इस तरह के वचनों से परिहार देखकर अथवा ''अयोगे सुयोगोऽपि चेत्स्यात्तदानीम्'' इस वचन का आश्रय लेकर विवाह मुहूर्त सुनिश्चित कर देना चाहिये।

1. दोषसमुदाय के लिये विशेष परिहार

त्रिकोणे केन्द्रे वा मदनरहिते दोषतकं
हरेत् सौम्यः शुक्रो द्विगुणमपि लक्षं सुरगुरूः।
भवेदाये केन्द्रेऽड्गप उत लवेशो यदि तदा
समूहं दोशाणां दहन इव तूलं श्वमयति।। इति।।

अर्थात् विवाह लग्न से त्रिकोणं (9 ।5) में या सप्तम रहित केन्द्र (1 ।4 ।10) में बुध हो तो 100

दोषों को नष्ट करता है। उक्तस्थानों (1 |4 |5 |9 |10) में शुक्र हो तो बुध की अपेक्षा दूनें (अर्थात् 200) दोषों को नष्ट करता है। यदि उक्त स्थानों में बृहस्पति हो तो एक लाख (100000) दोषों को नष्ट करता है। यदि विवाह लग्न का स्वामी अथवा नवांश का स्वामी 11वें या केन्द्र (1 |4 |7 |10) में हो तो दोषों का समूह वैसे ही नष्ट हो जाता है, जैसे रूई के पहाड़ को अग्नि जलाकर नष्ट कर देती है।

2. परिहार का अन्तिम विकल्प

अयोगे सुयोगोऽपि चेत्स्यात्तदानीमयोगं निहत्यैश सिद्धिं तनोति।
परे लग्नशुद्ध्या कुयोगादिनाशं दिनार्द्धोत्तरं विष्टिपूर्वं च शस्तम्।। इति।।

अर्थात् कुयोगों के बीच यदि सुयोग भी हो तो वह सुयोग कुयोगों के अशुभ फल को नष्ट करके अपने सुयोग का ही शुभफल देता है। कुछ आचार्यों का कहना है कि जिस कार्य के लिये जैसी लग्नशुद्धि कही गयी है वैसी लग्नशुद्धि रहने पर कुयोग के दुष्फल नष्ट हो जाते हैं। कुछ आचार्यों के मत में दिन के आधे के बाद भद्रा आदि कुयोगों का दुष्ट फल नष्ट हो जाता है।

2.10 लत्तादि दोषों के आधार पर विवाह–रेखा–निर्धारण

आपने ऊपर के दस दोषों का अध्ययन कर लिया है। इन दशों दोषों के शुभाशुभत्त्वों को पंचांगों में विवाह मुहूर्तों के साथ सीधी खड़ी रेखाओं के द्वारा तथा टेढ़ी खड़ी रेखाओं के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। अर्थात् विवाह लग्न में जिन दोषों का अभाव उनके क्रम प्राप्त स्थानों पर ऊर्ध्व (|) रेखाएँ, तथा लग्न में जो जो दोष विद्यमान होते हैं उनके स्थानों पर अवग्रह (ऽ) के सदृष टेढ़ी खड़ी रेखाएँ लिखी जाती है। जैसे किसी विवाह लग्न के आगे (।।ऽ।।ऽ।ऽ।) इस प्रकार रेखाएँ लिखी हुई हैं। इसका मतलब यह हुआ कि यह लग्न लत्तादि दोषों में से केवल तृतीय (युति), सप्तम (एकार्गल) तथा नवम (क्रान्तिसाम्य) दोषों से युक्त हैं तथा अन्य दोषों का अभाव है। लौकिक भाषा में इन्हीं रेखाओं की संख्या के आधार पर विवाह लग्न की प्रशस्तता या अप्रशस्तता बतलाई जाती है। जैसे उपर्युक्त मुहूर्त को सात रेखाओं का विवाहलग्न कहा जाता है। प्रायः दस रेखाओं का लग्न अत्युत्तम, नौ रेखाओं का श्रेष्ठ, सात आठ रेखाओं का माध्यम तथा उससे कम रेखाओं का लग्न निन्द्य समझा जाता है।

2.11 विवाह मे त्रिज्येष्ठ विचार

विवाह मुहूर्त निर्धारण करते समय आपको यह भी ध्यान देना होगा कि वर एवं कन्या दोनों यदि ज्येष्ठ (प्रथम गर्भ से उत्पन्न) हों तो ज्येष्ठ मास में उन पर वधू का विवाह मुहूर्त नहीं निकालना चाहिये। क्योंकि तीन ज्येष्ठ होना अनिष्टकारक होता है। जैसे रामाचार्य लिखते हैं –

ज्येष्ठद्वन्द्वं मध्यमं सम्प्रदिष्टं त्रिज्येष्ठं चेन्नैव युक्त कदापि।
केचित्सूर्य वह्निगं प्रोज्झ्य चांहुर्नैवान्योऽन्यं ज्येष्ठयोः स्याद् विवाहः।। इति।।

अर्थात् वर, कन्या और ज्येष्ठ मास, इन तीनों में दो ज्येष्ठ हो तो विवाह मध्यम होता है। किन्तु तीनों ज्येष्ठ हों तो अनिष्टकारक होता है।

2.11.1 त्रिज्येष्ठ का परिहार

कुछ (भारद्वाज आदि) आचार्यों का मानना है कि ज्येष्ठ मास (वृष राशिगत सूर्य के समय) में केवल कृत्तिका नक्षत्र स्थित सूर्य के समय (अर्थात् कृत्तिका के 2,3,4 चरणों पर जब सूर्य रहता है, तब) ज्येष्ठ वर एवं कन्या का विवाह त्याज्य है। शेष रोहिणी और मृगशिरा के प्रथम एवं द्वितीय चरण में सूर्य के रहने पर विवाह शुभ ही होता है।

कुछ अन्य आचार्यों का मत है कि किसी भी मास में ज्येष्ठ (आद्यगर्भोत्पन्न) वर एवं ज्येष्ठ (आद्यगर्भोत्पन्न) कन्या का विवाह शुभ नहीं होता है

2.12 परिस्थिति विशेष में दो शुभकर्मों (विवाह आदि) का निषेध –

1. अपने कुल में तीन पुरूष के भीतर पुत्र विवाह के बाद 6 (छः) महीने तक पुत्री अथवा छोटे सहोदर का विवाह नहीं करना चाहिये।

2. पुत्र या पुत्री के विवाह के बाद तीन कुल के भीतर 6 (छः) महीने तक मुण्डन नहीं करना चाहिये।

3. दो सगे भाइयों या बहनो का विवाह 6 (छः) महीने के भीतर नहीं करना चाहिये।

4. यदि एक गर्भ से दोनों (जुड़वें भाई–बहन) की उत्पत्ति हो तो दोनों का समान संस्कार एक दिन या एक मण्डप में हो सकता है।

5. शुभकार्य (विवाह, उपनयन, मुण्डन) के बाद छः मास तक श्राद्धकर्म नहीं करना चाहिये।

6. दो सगे भाइयों को दो सभी बहन से विवाह नहीं करना चाहिये। किन्तु पिता के एक होने पर भी भिन्न मातृज होने पर विवाह किया जा सकता है।

7. विवाह का निश्चय हो जाने के बाद वधू या वर के कुल में तीन पुरूष के भीतर किसी की मृत्यु हो जाय तो उस (मृत्यु) के एक महीने के बाद विवाह करना उचित है।

किन्तु किसी (मेघातिथि आदि) आचार्य के मत में अत्यावश्यक स्थिति में एक मास के बाद अथवा मरणाशौच व्यतीत हो जाने पर जप, पाठ, होमादि के द्वारा तथा द्रव्य, वस्त्र, गोदानादि के द्वारा शान्ति करके शुभकार्य किया जा सकता है। यथा ज्योतिःप्रकाशेऽपि–

प्रातिकूल्येऽपि कर्तव्यो विवाहो मासमन्तरा।
शान्ति विधाय गा दत्वा वाग्दानादि चरेद् बुधः।। इति।।

अभ्यास प्रश्न–

33. विवाह के समय जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से .... |......................... |........................ |......................... |......................... |......................... |......................... |......................... |......................... |......................... |......................... |......................... |............ वें नक्षत्रों पर चन्द्रमा हो तो उपग्रह नाम का दोष होता है। खाली स्थानों को भरें।

34. क्रान्तिसाम्य का दूसरा नाम क्या है?

35. वर, कन्या और मास तीनों ज्येष्ठ हों तो विवाह अनिष्टकारक होता है या शुभकारक होता है?

36. अपने कुल में तीन पुरूष के भीतर पुत्र विवाह के बाद कितने समय तक पुत्री अथवा छोटे सहोदर का विवाह नहीं करना चाहिये?

37. दो सगे भाइयों को दो सगी बहन से विवाह करना चाहिये या नही?

2.13 संकीर्ण विवाह मुहूर्त

आप को ध्यान में रखना हैं कि ऊपर जो विवाह मुहूर्त बतलाये गये हैं वे सभी वर्णों के लिये अनिवार्य नहीं है। यहाँ शास्त्रकारों ने अनुसूचित जाति के लिये तथा अनुसूचित जनजाति के लिये बहुत कुछ नियमों में शिथिलता वरतते हुये लिखते हैं –

कृष्णे पक्षे सौरिकुजार्केऽपि च वारे
वर्ज्ये नक्षत्रे यदि वा स्यात् करपीडा।
संङ्कीर्णानां तर्हि सुतायुर्धनलाभ–
प्रीतिप्राप्त्यै सा भवतीह स्थितिरेशा।। इति।।

अर्थात् कृष्णपक्ष में शनि, मंगल और सूर्य वार में तथा अप्रशस्त (अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा पूर्वफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़, श्रवणा, धनिष्ठा शतभिषा तथा पूर्वभाद्रपद इन 16) नक्षत्रों में भी हीन जातियों का विवाह हो तो पुत्र, आयु, धनलाभ तथा पति पत्नी में परस्पर प्रेम की प्राप्ति होती है।

2.14 गान्धर्व विवाह मुहूर्त

आप जानते ही हैं कि युवक युवती का परस्पर धनिष्ठ प्रेमबन्धन विवाह का रूप धारण कर लेता है और पति पत्नी के रूप में परस्पर बंध जाते हैं। इसी विवाह को गान्धर्व विवाह कहते है। आज–कल इस विवाह को न्यायालय ने भी मान्यता दे रखी है। अर्थात् इस विवाह को न्यायालय में पंजीकृत करने से ''पंजी विवाह'' कहलाता है। सम्प्रति इस विवाह में किसी मुहूर्त की आवश्यकता नहीं पड़ती है, किन्तु शास्त्रकारों ने दाम्पत्य जीवन को सुखमय होने की अपेक्षा से इस विवाह में भी त्रिपदी चक्र के द्वारा नक्षत्रशोधन का निर्देष दिया है। यथा–

गान्धर्वादिविवाहेऽर्काद् वेद 4 नेत्र 2 गुणे 3 न्दवः 1।
कु 1 युगा 4 ङ्गा 6 गिन 3 भू 1 रामा 3 स्त्रिपद्यामशुभाः शुभाः।।

अर्थात् गान्धर्व आदि विवाह में सूर्याधिष्ठित नक्षत्र से 4 नक्षत्र अशुभ, उसके बाद 2 नक्षत्र शुभ, फिर 3 नक्षत्र अशुभ 1 नक्षत्र शुभ, पुनः 1 नक्षत्र अशुभ, 4 नक्षत्र शुभ, उसके बाद 6 नक्षत्र अशुभ, 3 नक्षत्र शुभ, फिर 1 नक्षत्र अशुभ तथा अन्तिम 3 नक्षत्र शुभ होते है। अर्थात् गान्धर्व आदि विवाह में उक्त विधि से अशुभ नक्षत्रों को छोड़कर शुभ नक्षत्रों में विवाह करना चाहिये। सुविधा की दृष्टि से त्रिपदी चक्र का अवलोकन करें।

2.14.1 त्रिपदी चक्र

सूर्यनक्षत्र से चन्द्रनक्षत्र की संख्या

	4	2	3	1	1	4	6	3	1	3
फल	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ

2.15 विवाह में गोधूलि विचार

गोधूलि से तात्पर्य उस काल से है जब सूर्यास्त के समय चर कर लौटते हुये गौ आदि पशुओं के पैरों से धूली उछलकर आकाश में छा गई हो। ज्योतिषशास्त्र में इस पुण्य वेला को इतना शक्तिमान् बतलाया गया है कि वह (गोधूलि लग्न) विवाहादि मंगल कार्यों में विभिन्न दोषों को नष्टप्राय कर देता है। जैसे आचार्य रामाचार्य लिखते हैं –

नास्यामृक्षं न तिथिकरणं नैव लग्नस्य चिन्ता

नो वा वारो न च लवविधिर्नो मुहूर्तस्य चर्चा।।

नो वा योगों न मृतिभवनं नैव जामित्रदोषः

गोधूलिः सा मुनिभिरूदिता सर्वकार्येशु शस्ता।। इति।।

अर्थात् गोधूलि के समय नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न, वार, नवांश, मुहूर्त, योग, मृत्युभाव, जामित्रदोष आदि किसी दोष का विचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस गोधूलि समय को मुनियों ने समस्त कार्यों में प्रशस्त कहा है।

वस्तुतः यह श्लोक गोधूलि के विषय में स्तुत्यर्थवाद है। ऐसा नहीं समझना चाहिये कि सब कुछ गोधूलि ही है। यथासम्भव अखिलदोष परिहारपूर्वक प्रशस्त घटीलग्न ग्रहण करना चाहिये। यदि कन्या पूर्णयौवन सम्पन्न हो किन्तु अन्य मुहूर्त का संकोच हो, लग्नशुद्धि अप्राप्त हो तब गोधूलि समय का सहारा लेना चाहिये। जैसे दैवज्ञमनोहर में लिखते हैं –

लग्नशुद्धिर्यदा नास्ति कन्या यौवनशालिनी।
तदा वै सर्ववर्णानां लग्नं गोधूलिकं शुभम्।। इति।।

किन्तु ज्योतिर्निबन्ध में यह गोधूलि लग्न केवल शूद्रादि वर्णों क लिये ही प्रशस्त कहा गया है। यथा –

घटीलग्नं यदा नास्ति तदा गोधूलिकं शुभम्।
शूद्रादीनां बुधाः प्राहुर्न द्विजानां कदाचन।। इति।।

इस तरह गोधूलि के विषय में शास्त्रों में और भी विस्तृत विचार उपलब्ध है जो सभी यहाँ विस्तार भय से नहीं लिखा जा रहा है। अतः इसके विषय में सूक्ष्मतया विचार कर देश, काल, परिस्थिति को ध्यान में रखते हुये शास्त्रमर्यादा के अनुसार कोई निर्णय देना चाहिये।

2.15.1 ऋतु भेद से गोधूलि का समय

गोधूलि के काल प्रमाण के विषय में शास्त्रों में अनेक मत देखते को मिलते हैं। इनमें आचार्य वराहमिरि ने ऋतुभेद के अनुसार गोधूलि काल को इस तरह निर्देषित किया है। यथा–

गोधूलिं त्रिविधां वदन्ति मुनयो नारीविवाहादिके
हेमन्ते शिशिरे प्रयाति मृदुतां पिण्डीकृते भास्करे।
ग्रीष्मेऽर्द्धास्तमिते वसन्तसमये भानौ गते दृश्यताम्
सूर्ये चास्तमुपागते भवति प्रावृट्षरत्कालयोः।। इति।।

1. हेमन्त एवं शिशिर ऋतु (सौर क्रम से मार्गशीर्ष, पौश, माघ, फाल्गुन मासों) में सूर्य के गोलाकार एवं सूर्य के सुखपूर्वक दिखाई पड़ने पर गोधूलि काल होता है।
2. वसना एवं ग्रीष्म ऋतु (सौर क्रम से चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ मासों) में सूर्यबिम्ब के आधा अस्त हो जाने पर गोधूलि काल होता है।
3. वर्षा एवं शरद ऋतु (श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक मासों) में सम्पूर्ण सूर्यबिम्ब के अस्त हो जाने पर गोधूलि काल होता है।

अभ्यास प्रश्न–

38. भरणी एवं कृत्तिका नक्षत्र में संकीर्ण जातियों का विवाह प्रशस्त है या नहीं?
39. गान्धर्व विवाह में किस चक्र के द्वारा नक्षत्रशोधन करना चाहिये?
40. शिशिर ऋतु में गोधूलि काल कब होता है?
41. सम्पूर्ण सूर्यबिम्ब के अस्त हो जाने पर किन दो ऋतुओं में गोधूलि काल होता है?

2.16 सारांश

विवाह संस्कार सभी संस्कारों में अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार है। इसके मुहूर्त निर्धारण में त्रिबलशुद्धि, समयशुद्धाशुद्धि विचार, प्रशस्त मास, तिथि, दिन, नक्षत्र आदि का विचार, लत्ता, पात, महापात, खर्जूर आदि विविध दोषों का विचार, त्रिज्येष्ठादि का विचार इत्यादि मुख्य विचार है। इनमें रविचन्द्रगुरूशुद्धि का विचार निम्न चक्र के अनुसार करना चाहिये।

1. रविचन्द्रगुरूशुद्धिचक्रम्

ग्रहाः	रवि	चन्द्र	गुरू
शुभस्थानि	3 |6 |10 |11	3 |6 |7 |10 |11	2 |5 |7 |9 |11
पूज्यस्थानानि	1 |2 |5 |7 |9	1 |2 |5 |9	1 |3 |6 |10
निन्दितस्थानानि	4 |8 |12	4 |8 |12	4 |8 |12

2. कुछ आचार्यों का मानना है कि यदि गोचर (रवि–चन्द्र–गुरू) शुद्धि नहीं हो रही हो किन्तु विवाह करना आवश्यक हो तो अष्टकवर्ग के अनुसार रवि–चन्द्र–गुरू शुद्धि देखना चाहिये।

3. रजस्वला के बाद गुरूशुद्धि के अभाव में भी गुरू का अपेक्षित पूजन करके कन्या का विवाह कर देना चाहिये।

4. गुरू एवं शुक्र यदि वृद्ध, बाल या अस्त (मृत) अवस्था में हो तो विवाह आदि शुभकृत्य नहीं करना चाहिये। गुरू के अतिचार, सिंह मकर राश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग आदि के कारण भी समय की शुद्धाशुद्धि का विचार किया जाता है। इसके अनुसार जब शुद्ध समय होता है तब विवाह आदि शुभकृत्य प्रशस्त होता है, जब अशुद्ध समय होता है तब विवाह आदि शुभकृत्य अप्रशस्त होता है। अर्थात् अप्रशस्त समय में विवाह नहीं करना चाहिये।

5. सौरमास के अनुसार माघ, फाल्गुन, वैषाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ एवं मार्गशीर्ष (अग्रहण) इन छः मासों को विवाह के लिये प्रशस्त कहा है। विवाह में शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष दोनों को प्रशस्त कहे गये है।

6. प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी एवं पूर्णिमा इन तिथियों को विवाह में प्रशस्त माना गया है।

7. रवि, सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र दिनों में विवाह प्रशस्त माना गया है।

8. वृष, मिथुन, कन्या, तुला, धनु एवं मीन इन छः लग्नों में विवाह प्रशस्त माना गया है।

9. अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, मघा, उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढ़, श्रवणा, धनिष्ठा उत्तरभाद्रपद एवं रेवती इन 15 नक्षत्रों में विवाह प्रशस्त कहा गया है।

10. विवाह में लत्ता, पात, युति, वेध, जामित्र, बाण, खार्जूर, उपग्रह, क्रान्तिसाम्य, दग्धतिथि इन दस दोषों का विचार आवश्यक होता है।

11. रामाचार्य लिखते है, विवाह समय में सूर्य और चन्द्रमा दोनों बली हों तो एकार्गल, उपग्रह, पात, लत्ता, जामित्र, कर्तरी, उदयास्त आदि सभी दोष नष्ट हो जाते हैं।

12. दैवज्ञ रामाचार्य महर्षि वसिष्ठ का वचन उद्धृत करते हुये लिखते हैं कि, उपग्रहदोष कुरूक्षेत्र और बाह्लीक (कश्मीर/आगरा प्रान्त) में, पातदोष कलिंग–बंग (उड़ीसा और मद्रास के बीच के प्रदेश, बंगाल, अयाध्या) में लत्तादोष सौराष्ट्र (सूरत के पार्श्ववर्ती प्रदेश) में, शाल्व (हिमालय के पार्श्ववर्ती प्रदेश) में, और वेधदोष सर्वत्र (सभी देशों में) वर्जित है।

13. कभी कभी विवाह करना अत्यावश्यक होता है किन्तु हर तरह से निर्दुष्ट मुहूर्त मिलता ही नहीं रहता है। ऐसी स्थिति में गुण की अपेक्षा अर्धाल्प दोष वाले मुहूर्त में अथवा उस दोष का ''त्रिकोणे केन्द्रे वा मदनरहिते दोषशतक'' इस तरह के वचनों से परिहार देखकर अथवा ''अयोगे सुयोगोऽपि चेत्स्यात्तदानीम्'' इस वचन का आश्रय लेकर विवाह मुहूर्त सुनिश्चित कर देना चाहिये।

14. वर, कन्या और ज्येष्ठ मास, इन तीनों में दो ज्येष्ठ हो तो विवाह मध्यम होता है। किन्तु तीनों ज्येष्ठ हों तो अनिष्टकारक होता है।

15. शास्त्रकारों ने अनुसूचित जाति के लिये तथा अनुसूचित जनजाति के लिये

बहुत कुछ नियमों में शिथिलता वरतते हुये लिखते हैं कि कृष्णपक्ष में शनि, मंगल और सूर्य वार में तथा अप्रशस्त नक्षत्रों में भी हीन जातियों का विवाह हो तो पुत्र, आयु, धनलाभ तथा पति पत्नी में परस्पर प्रेम की प्राप्ति होती है।

16. गान्धर्व आदि विवाह में सूर्याधिष्ठित नक्षत्र से 4 नक्षत्र अशुभ, उसके बाद 2 नक्षत्र शुभ, फिर 3 नक्षत्र अशुभ, 1 नक्षत्र शुभ, पुनः 1 नक्षत्र अशुभ, 4 नक्षत्र शुभ, उसके बाद 6 नक्षत्र अशुभ, 3 नक्षत्र शुभ, फिर 1 नक्षत्र अशुभ तथा अन्तिम 3 नक्षत्र शुभ होते है। अर्थात् गान्धर्व आदि विवाह में उक्त विधि से अशुभ नक्षत्रों को छोड़ कर शुभ नक्षत्रों में विवाह करना चाहिये।

17. गोधूलि के समय नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न, वार, नवांश, मुहूर्त, योग, मृत्युभाव, जामित्रदोष आदि किसी दोष का विचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस गोधूलि समय को मुनियों से समस्त कार्यों में प्रशस्त कहा है।

यदि कन्या पूर्णयौवन सम्पन्न हो किन्तु अन्य मुहूर्त का संकोच हो, लग्नशुद्धि अप्राप्त हो तब गोधूलि समय का सहारा लेना चाहिये। किन्तु ज्योतिर्निबन्ध में यह गोधूलि लग्न केवल शूद्रादि वर्णों के लिये ही प्रशस्त कहा गया है।

2.17 शब्दावली

1. वर्गोत्तम नवांश = जिस किसी राशि में उसी राशि का नवांश वर्गोत्तम नवांश कहलाता है। अथवा चर, स्थिर, द्विःस्वभाव राशियों में क्रमशः प्रथम, पंचम, नवम नवमांश वर्गोत्तम नवांश होते हैं।

2. शीतांशु = चन्द्रमा। 3. भानुः = सूर्य। 4. गोचरः = तत्कालिक ग्रहस्थिति। 5. पाणिग्रहः = विवाह। 6. अर्चना = पूजा।

7. अस्त = जब गुरू या शुक्र (या चन्द्रादि छः ग्रह), सूर्य के समीप होता है तब प्रकाशहीन होने के कारण वह अस्त कहलाता है।

8. वृद्ध = अस्त से पूर्व क्षीणप्रकाश होने के कारण वृद्ध कहलाता है।

9. बाल = अस्त के बाद उदित होने पर प्रकाशहीन होने के कारण बालावस्था होती है।

10. रिक्तातिथि = 4 |9 |14 तिथियाँ रिक्त तिथियाँ है।

11. लत्ता दोष = ग्रह अपने अधिष्ठित नक्षत्र से पिछले अथवा अगले नक्षत्र को लात मारता है। किसी ग्रह से लात मारा हुआ नक्षत्र विवाह के लिये शुभफलप्रद नहीं होता है। इसी को लत्ता दोष कहते है।

12. पात दोष = हर्षण, वैधृति, साध्य, व्यतिपात, गण्ड और शूल इन छः योगों का अन्त जिस नक्षत्र में होता है वह पातदोष से दूषित होता है। पात दोषयुक्त होने के कारण वह नक्षत्र विवाह में त्याज्य होता है।

13. युति दोष = जिस नक्षत्र में विवाह हो उसी नक्षत्र में यदि कोई ग्रह हो तो उस ग्रह की युति का दोष समझा जाता है।

14. पंचशलाका वेध = मुख्यतया पाँच खड़ी एवं पाँच पड़ी रेखा से निर्मित चक्र को

पंचशलाका चक्र कहते है। इस चक्र में कहे हुये निर्देष के अनुसार नक्षत्रों को लिखा जाता है, और तत्पश्चात् उसमें वेध का विचार किया जाता है। इसी वेध विचार को पंचषलाका वेध कहते है।

15. चरण वेध = ग्रह प्रथम चरण में हो तो दूसरे नक्षत्र के प्रथम चरण में वेध होता है। यदि ग्रह द्वितीय चरण में हो तो दूसरे नक्षत्र के तृतीय चरण में, तथा ग्रह यदि तृतीय चरण में हो तो दूसरे नक्षत्र के द्वितीय चरण में वेध होता है।

16. जामित्र दोष = विवाहलग्न या विवाहकालिक चन्द्रमा से सातवें स्थान में कोई ग्रह पड़े तो जामित्र दोष होता है।

17. सूक्ष्म जामित्र दोष = विवाहलग्न या चन्द्रमा जिस नवांश पर हो उससे 55 वाँ नवांश पर कोई ग्रह रहे तो सूक्ष्म जामित्र दोष होता है।

18. मृत्यु बाण = शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से अभीष्ट (विवाह) समय तक जितनी तिथियाँ बीत गई हों, उस तिथि संख्या में विवाह लग्न की संख्या को जोड़कर 9 का भाग देने से यदि 8 शेष बचे तो रोग, यदि 2 शेष बचे तो अग्नि, यदि 4 शेष बचे तो राज, यदि 6 शेष बचे तो चौर, और यदि 1 शेष बचे तो मृत्युवाण होता है।

19. खार्जूर (एकार्गल) दोष = विवाह के समय व्याघात, गण्ड, व्यतिपात, विष्कम्भ, शूल, वैधृति, वज्र, परिध, अतिगण्ड इन योगों में से कोई योग हों और उस सूर्य के नक्षत्र से विषम (1 ।3 ।5 ।7 ।9 ।11 ।13 ।15 ।17 ।19 ।21 ।23 ।25 ।27) नक्षत्र पर चन्द्रमा हो तो खार्जूर नामक दोष होता है। इसी दोष को एकार्गल दोष भी कहते हैं।

20. उपग्रह दोष = विवाह के समय जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से 5 ।7 ।8 ।10 ।14 ।15 ।18 ।19 ।21 ।22 ।23 ।24 ।25 वें नक्षत्र पर चन्द्रमा हो तो उपग्रह नाम का दोष होता है।

21. क्रान्तिसाम्य (महापात) दोष = सिंह–मेष, वृष–मकर, तुला–कुम्भ, कन्या–मीन, कर्क–वृश्चिक, एवं धनु–मिथुन इन दो दो राशियों में परस्पर सूर्य और चन्द्रमा के रहने पर क्रान्तिसाम्य नामक दोष होता है।

22. दगधतिथि = सूर्य धनु या मीन में हो तो द्वितीया तिथि, वृष या कुम्भ में हो तो चतुर्थी तिथि, कर्क या मेष में हो तो षष्ठी तिथि, कन्या या मिथुन में हो तो अष्टमी तिथि, सिंह या वृश्चिक में हो तो दशमी तिथि, तथा सूर्य मकर या तुला में हो तो द्वादशी तिथि दग्ध तिथि होती है।

23. सुरगुरू = बृहस्पति। 24. अङ्.गप = लग्नेशः। 25. लवेश = नवमांशेशः। 26. विष्टि = भद्रा। 27. खार्जूर = एकार्गल। 28. वह्नि = कृत्तिका। 29. प्रोज्झ्य = घटाकर। 30. प्रातिकूल्य = अनुकूल नहीं होना। 31. करपीड़ा = विवाह।

32. गान्धर्व विवाह = युवक युवती का परस्पर घनिष्ठ प्रेमबन्धन विवाह का रूप धारण कर लेता है और पति पत्नी के रूप में परस्पर बँध जाते है। इसी विवाह को गान्धर्व विवाह कहते है।

33. वेद = 4। 34. नेत्र = 2। 35. गुण = 3। 36. इन्दु = 1। 37. कु = 1। 38. युग = 4। 39. अड्.ग = 6। 40. अग्नि = 3। 41. भू = 1। 42. रामा = 3। 43. याम = प्रहर।

44. गोधूलि = गोधूलि से तात्पर्य उस काल से है जब सूर्यास्त के समय चर कर लौटते हुये गौर आदि पशुओं के पैरों से धूली उछलकर आकाश में छा गई हो।

45. ऋृक्ष = नक्षत्र। 46. मृतिभवन = अष्टमभाव। 47. जामित्र = सप्तमभाव। 48. शस्त = प्रशस्त। 49. योवनशालिनी = युवती।

50. वसन्त = सौर क्रम से चैत्र एवं वैशाख मास।

51. ग्रीष्म ऋतु = सौर क्रम से ज्येष्ठ एवं आषाढ़ मास।

52. प्रावृट् = वर्षा ऋतु = सौर क्रम से श्रावण एवं भाद्रपद मास।

53. शरत्काल = सौर क्रम से आश्विन एवं कार्तिक मास।

54. हेमन्त = सौर क्रम से मार्गशीर्ष एवं पौष मास।

55. शिशिर = सौर क्रम से माघ एवं फाल्गुन मास।

56. व्रतोद्वाहौ = व्रत + उद्वाह = उपनयन एवं विवाह।

2.18 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कन्या की जन्मराशि से विवाहकालिक गुरू की गोचरीय स्थिति के आधार पर गुरू (बल) शुद्धि का विचार किया जाता है।

2. जन्मराशि से विवाह कालिक गुरू यदि 2 ।5 ।7 ।9 ।11 वें स्थान में हो तो विवाह के लिये उत्तम माना जाता है।

3. जन्मराशि से विवाकालिक गुरू यदि (4 ।8 ।10 ।12) स्थानों में हो तो विवाह के लिये अधम माना जाता है।

4. क. गुरू अपनी उच्च राशि (कर्क) में विद्यमान हो।
   ख. अथवा गुरू अपनी राशि (धनु एवं मीन) में हो।

5. गुरू अपने मित्र की राशि (मेष, सिंह, वृश्चिक) में स्थित हो तो गुरूशुद्धि के अभाव में विवाह किया जा सकता है।

6. जिस किसी राशि में उसी राशि का नवांश वर्गोत्तम नवांश कहलाता है।

7. वृष राशि में पंचम नवांश वर्गोत्तम नवांश है तथा मिथुन राशि में नवम नवांश वर्गोत्तम नवांश है।

8. गुरू अपनी नीच राशि (मकर) में स्थित हो तो तथा अपनी शत्रु की राशि (वृष, मिथुन, कन्या, तुला) में हो तो प्रशस्त गुरू में भी विवाह नहीं करना चाहिये।

9. जन्म राशि से रवि के 3 ।6 ।10 ।11 स्थानों में रहने पर शुभ तथा चन्द्रमा के 4 ।8 ।12 स्थानों में रहने पर अशुभ होता है।

10. रजस्वला के बाद गुरूशुद्धि के अभाव में भी गुरू का अपेक्षित पूजन करके कन्या का विवाह कर देना चाहिये।

11. गुरू अपनी उच्च राशि (कर्क) में विद्यमान हो तो गुरूशुद्धि होती है।

12. गुरू अपने मित्र की राशि में स्थित हो तो गुरूशुद्धि होती है।
13. गोचरीय गुरूशुद्धि के अभाव में अष्टकवर्ग के अनुसार गुरूशुद्धि देखनी चाहिये।
14. विविह में माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ एवं मार्गशीर्ष (अग्रहण) इन छः मासों को विवाह के लिये प्रशस्त कहा है।
15. विवाह में आद्यगर्भ से उत्पन्न पुत्र–पुत्री का विवाह जन्म मास में निषिद्ध है।
16. हरिशयन की अवधि को शास्त्रकारों ने विवाह आदि शुभकृत्य/संस्कार के लिये त्याज्य माना है।
17. संक्रान्ति के दिन, संक्रान्ति से एक दिन पहले (मासान्त) एवं संक्रान्ति के एक दिन बाद (मासादि) इन तीनों दिनों में विवाह आदि शुभकृत्य/संस्कार नहीं करना चाहिये।
18. विवाह में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी एवं पूर्णिमा इन तिथियों को विवाह में प्रशस्त माना गया है।
19. विवाह में रवि, सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र दिनों में विवाह प्रशस्त माना गया है।
20. विवाह में अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, मघा, उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढ़, श्रवणा, धनिष्ठा उत्तराभाद्रपद एवं रेवती ये 15 नक्षत्र विवाह में प्रशस्त कहे गये है।
21. पूर्णचन्द्रमा अपने अधिष्ठित नक्षत्र से पीछे 22 वें नक्षत्र को तथा बुध अपने अधिष्ठित नक्षत्र से पीछे 7 वें नक्षत्र को लात मारते है।
22. मंगल अपने अधिष्ठित नक्षत्र से आगे तृतीय नक्षत्र को लात मारता है।
23. सूर्य अश्विनी नक्षत्र पर हो तो उत्तरफाल्गुनी लत्तादोषयुक्त होता है।
24. हर्षण, वैधृति, साध्य, व्यतिपात, गण्ड और शूल इन छः योगों का अन्त नक्षत्र में होने से वह नक्षत्र पात से दूषित हो जाता है।
25. चन्द्रमा अपने उच्च में मित्र के घर में या स्वक्षेत्री हो तो युति दोष नहीं होता है।
26. सूर्य, मंगल, शुक्र, शनि, राहु, केतु की युति दारिद्र्य, मृत्यु आदि भयप्रद मानी गयी है।
27. युतिदोष गौड़ दोष में अति निन्दित है।
28. रोहिणी और अभिजित् में तथा हस्त और उत्तराभाद्रपद में परस्पर वेध होता है।
29. यदि ग्रह द्वितीय चरण में हो तो दूसरे नक्षत्र के तृतीय चरण में वेध होता है।
30. विवाहलग्न या विवाहकालिक चन्द्रमा से सातवें स्थान में कोई ग्रह पड़े तो जामित्र दोष होता है।
31. विवाहलग्न या चन्द्रमा जिस नवांश पर हो उससे 55 वाँ नवांश पर कोई ग्रह रहे तो सूक्ष्म जामित्र दोष होता है।
32. विवाह के समय व्याघात, गण्ड, व्यतिपात, विश्कम्भ, शूल, वैधृति, वज्र, परिघ, अतिगण्ड इन योगों में से कोई योग हों और उस सूर्य के नक्षत्र से विषम (1 |3 |5 |7 |9 |11 |13 |15 |17 |19 |21 |23 |25 |27) नक्षत्र पर चन्द्रमा हो तो खार्जूर नामक दोष होता है।

33. विवाह के समय जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से 5 |7 |8 |10 |14 |15 |18 |19 |21 |22 |23 |24 |25 वें नक्षत्र पर चन्द्रमा हो तो उपग्रह नाम का दोष होता है।

34. क्रान्तिसाम्य का दूसरा नाम महापात है।

35. वर, कन्या और मास तीनों ज्येष्ठ हों तो विवाह अनिष्टकारक होता है।

36. अपने कुल में तीन पुरूष के भीतर पुत्र विवाह के बाद 6 (छः) महीने तक पुत्री अथवा छोटे सहोदर का विवाह नहीं करना चाहिये।

37. दो सगे भाइयों को दो सगी बहन से विवाह नहीं करना चाहिये।

38. भरणी एवं कृत्तिका नक्षत्र में संकीर्ण जातियों का विवाह प्रशस्त है।

39. गान्धर्व विवाह में त्रिपदी चक्र के द्वारा नक्षत्रशोधन करना चाहिये।

40. शिशिर ऋतु में सूर्य के गोलाकार एवं के सुखपूर्वक दिखाई पड़ने पर गोधूलि काल होता है।

41. वर्षा एवं शरद ऋतु में सम्पूर्ण सूर्यबिम्ब के अस्त हो जाने पर गोधूलि काल होता है।

2.19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मनुस्मृति – पं0 गोपालशास्त्री नेने

मुहूर्तचिन्तामणि– विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी

ज्योतिष चन्द्रिका – रेवतीरमण झा

समयशुद्धि विवेक – सीताराम झा

व्यवहार रत्न – भानुनाथ शर्मा

2.20 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मुहूर्तचिन्तामणि – शुभाशुभप्रकरण, नक्षत्रप्रकरण, संस्कारप्रकरण, संक्रान्तिप्रकरण, गोचरप्रकरण।
2. मुहूर्तभाव्रण्ड – नक्षत्रप्रकरण, संस्कारप्रकरण आदि।
3. मुहूर्तपारिजात – परिचयप्रकाण्ड, संस्कारप्रकाण्ड आदि।
4. मुहूर्तप्रकाश – संज्ञाप्रकरण, त्याज्यप्रकरण, संस्कारप्रकरण आदि।
5. भारतीय कुण्डलीविज्ञान, मीठालाल हिम्मतराम ओझा – कुण्डलीविज्ञान भाग–1।
6. बृहज्जातक – अष्टकवर्ग। इत्यादि।

2.21 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विवाह में प्रशस्त मास, तिथि, लग्न एवं वारों को लिखिये।
2. विवाह में विचारणीय दस दोषों के नाम लिखकर पंचषलाका वेध का वर्णन करें।
3. विवाह में रविबल, चन्द्रबल तथा गुरूबल इन तीनों बलों में से किसके लिये कौन कौन सा बल अपेक्षित होता है, यह बतलाकर उत्तमगुरूशुद्धि को स्पष्ट करें।
4. विवाह में गोधूलि के महत्व एवं उसके मानों को स्पष्ट करें।

इकाई – 3 मुहूर्त में लग्नशुद्धि, गुरू–शुक्र एवं देवशयन विचार

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 लग्नशुद्धि
3.4 गुरू–शुक्रास्त दोषनिर्णय
    3.4.1 ग्रहों के कालांश
    3.4.2 गुरू शुक्र के बाल्य एवं वार्धक्य का समय
3.5 गुरू–शुक्र और समयशुद्धि
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 सन्दर्भग्रन्थसूची
3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

फलितज्योतिष डिप्लोमा कोर्स के पंचमपत्र में द्वितीय खण्ड के तृतीय इकाई मे आपका स्वागत है। इससे पूर्व द्वितीय इकाई में आप ने मुख्य रूप से विवाह मुहूर्त के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त किया है। इस क्रम में आप ने त्रिबलशुद्धि, विवाह में प्रशस्त मास, तिथि, दिन, नक्षत्र आदि का विचार, लत्ता, पात, युति, वेध, जामित्र, बाण, खार्जूर (एकार्गल), उपग्रह, क्रान्तिसाम्य (महापात) तथा दग्धतिथि इत्यादि विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर लिया है। इसके बाद लत्तादि दोषों के अपवाद, देश भेद से दोषों का परिहार, दोषसमुदाय के लिये विशेष परिहार को भी जान लिया है। तत्पश्चात् आप ने लत्तादि दोषों के आधार पर विवाह–रेखा–निर्धारण करना सीख लिया है। इसके बाद आप विवाह में त्रिज्येष्ठ विचार तथा त्रिज्येष्ठ का परिहार को भी जानकर परिस्थितिविशेष में दो शुभकर्मों (विवाह आदि) का निषेधविषयक विचार का अध्ययन कर लिया है। इस तरह पूर्व इकाई तो आपके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण था ही, यह वर्तमान इकाई भी आपके लिये महत्वपूर्ण ही है।

इस इकाई में आप सर्वप्रथम सर्वदोषनिवारक लग्नशुद्धि को जानेंगे। तत्पश्चात् चूडाकरण में लग्नशुद्धि, विद्यारम्भ में लग्नशुद्धि, अक्षरारम्भ में लग्नशुद्धि, उपनयन में लग्नशुद्धि तथा विवाह में लग्नशुद्धि का अध्ययन करेंगे। लग्नशुद्धि का अध्ययन के बाद, आप गुरू–शुक्रास्त दोषनिर्णय, ग्रहों के कालांश तथा गुरू शुक्र के बाल्य एवं वार्धक्य का विचार जानेंगे। इसके बाद अतिचार विचार के क्रम में, देशभेद से गुरू मर्यादा विचार, नर्मदोत्तरभाग में गुरूचार की मर्यादा, अतिचार का स्पष्ट लक्षण तथा लुप्तसंवत्सर दोष का अपवाद के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक जानेंगे। तत्पश्चात् सिंहस्थगुरू का विचार, मकरस्थ गुरूविचार, गुर्वादित्य एवं विश्वघस्र दोष को पढ़ेंगे। इसके बाद सबसे अन्त में हरिशयन आदि अन्य त्याज्य समय को भी जानेंगे।

इस तरह यह इकाई भी आपके लिये अत्यन्त उपयोगी होगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप

- सर्वदोषनिवारक लग्नशुद्धि को जानने में सक्षम हो सकेंगे।
- चूडाकरण, विद्यारम्भ एवं उपनयन के लिये लग्नशुद्धि विचार करने में सक्षम हो पायेंगे।
- विवाह मे लग्नशुद्धि विचार कर पायेंगे।
- गुरू–शुक्रास्त दोषनिर्णय के विचार में समर्थ हो जायेंगे।
- गुरू शुक्र के बाल्य एवं वार्धक्य विचार करनें में भी दक्ष हो जायेंगे।
- अतिचार विचार में दक्ष हो जायेंगे।
- सिंहस्थ एवं मकरस्थ गुरूविचार कर सकेंगे।

➢ गुर्वादित्य दोष, विश्वघस्र दोष एवं हरिशयन आदि अन्य त्याज्य समय को जान पायेंगे।

3.3 लग्नशुद्धि

आप जानते हैं कि सनातन धर्मावलम्बी ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता है। वह किसी भी कार्य की सफलता या असफलता में ईश्वर की भूमिका को स्वीकार करता है। उस ईश्वर का लक्षण वेदः उपनिषद्, स्मृति, पुराण, इतिहास आदि प्राचीन शास्त्रों में महर्षियों ने तथा पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी समान ही बतलाये हैं। सब के मत में वह ईश्वर सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा महान से महान है। निराकार होता हुआ भी साकार है निर्गुण होता हुआ भी सगुण है। स्थिर होता हुआ भी चंचल है। बिना हाथ का भी कर्म करने वाला है तथा बिना पैर का भी चलने वाला है। वस्तुतः ये सब लक्षण काल में ही घटित होते है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा भी है– ''कालः कलयताम्यम्'' ''कालोऽस्मि लोकक्षयकृत प्रवृद्धः।'' भगवान् सूर्यांषपुरूष ने भी सूर्य सिद्धान्त में कहा है ''लोकानामन्तकृत् कालः कालेऽन्यः कलनात्मकः। ''इत्यादि। और भी द्रष्टव्य है – ''कालः पचाति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना। कान्ते सपक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत।। '' इति ।। इस तरह स्पष्ट हैं कि काल ही ईश्वर है जिसके अनन्द भेद हैं। उसी अनन्तरूप परमात्मा (काल) के महत्व पर आधारित यह ज्योतिषशास्त्र है, जो कालतन्त्र के नाम से भी जाना जाता है। इसी कालतन्त्र के अन्तर्गत आप विविध संस्कारों के लिये शुभाशुभ मुहूर्त को जानने में प्रवृत्त हैं।

वैसे तो मुहूर्त शब्द दो घटी का वाचक हैं, किन्तु यहाँ मुहूर्त शब्द सामान्यतया कालविशेष के लिये प्रयुक्त होता है। अर्थात् वह कालविशेष जिसमें किया हुआ कार्य शुभफलदायक होता है, अभीष्टफलदायक होता है। इसी कालविशेष को ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जानना ही लोकभाषा में मुहूर्त निकालना कहलाता है।

इस कालतन्त्र ज्योतिषशास्त्र में काल के अनेक अंग बताये गये हैं, जिनमें पाँच अंगों की प्रधानता है, वर्ष, मास, दिन, लग्न एवं मुहूर्त। काल के ये पाँच अंग उत्तरोत्तर बली होते हैं। यथा–

वर्ष मासं दिनं लग्नं मुहूर्तश्वेति पंचमम्।
कालस्याङ्गानि मुख्यानि प्रबलान्युत्तरोत्तरम्।। इति।।

यही कारण हैं कि ज्योतिष शास्त्र में लग्नशुद्धि का अतिशय महत्व दिया गया है। अर्थात् लग्न की शुद्धि से वर्ष, मास, तिथि, नक्षत्र, वारादि सम्बन्धी सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। यथा लग्न की प्रशंसा करते हुये लल्लाचार्य कहते है–

न तिथिर्न च नक्षत्रं न योगो नैन्दवं बलम्।
लग्नमेव प्रशंसन्ति गर्ग–नारक–कश्यपाः।। इति।।

अर्थात् किसी भी कार्य में गर्ग, नारद, कश्यप् आदि महर्षियों ने वर्ष, मास, नक्षत्रादि की अपेक्षा लग्न को अतिशय महत्व दिया है। इसी महत्व की दृष्टि से ज्योतिषशास्त्र में लग्न को जीव, चन्द्रमा को मन तथा तिथि–नक्षत्रादि अन्य विषय को शरीर कहा गया है। यानी

जीव के पुष्ट होने से शरीर, मन आदि सभी के सभी पुष्ट हो जाते हैं, तथा नष्ट होने से सब नष्ट हो जाते हैं। यथा–

लग्नं जीवो मनश्वचन्द्रः शरीरं तिथिभादिकम्।
पुष्टे जीवेऽखिले पुष्टं नष्टे नष्टं विदुर्बुधाः।। इति।।

जिस प्रकार जन्मलग्न से प्राणी का शुभ अथवा अशुभ फल जानते हैं उसी प्रकार किसी भी कार्य के आरम्भकलिक लग्न से शुभ अथवा अशुभ फल जानना चाहिये। इस प्रकार स्पष्ट हैं कि सभी कार्यों में लग्नबल का विचार अवश्य करना चाहिये।

आपको पता हो कि इस लग्नशुद्धिविचार में कार्य भेद से कुछ कुछ भिन्नता होती है, किन्तु जहाँ महर्षियों ने अलग से जिस कार्य के लिये लग्नशुद्धि की चर्चा नहीं की हैं वहाँ निम्नलिखित प्रकार से लग्नशुद्धि देखनी चाहिये।

3.3.1 सर्वदोषनिवारक लग्नशुद्धि–

व्ययाष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभदृग्यते।
चन्द्रे त्रिषड्दशायस्थे सर्वारम्भः प्रसिद्ध्यति।।

अर्थात् अपनी अपनी जन्मराशि से 3।6।10।11 वीं राशि लग्न हो और लग्न से 8।12 वें स्थान में कोई ग्रह नहीं हो तथा लग्न पर शुभग्रहों की दृष्टि अथवा योग हो, चन्द्रमा 3।6।10।11 में हो तो वह समय सभी कार्यों के लिये प्रशस्त होता है। अर्थात् ऐसे लग्न में कार्य आरम्भ करने से निश्चित रूप से शुभ फल ही होते है।

पुनश्य –

त्रिषट्खायर्क्षक श्रेष्ठ निन्द्यं द्वादशमष्टमम्।
जन्मभादन्यलग्नानि मध्यमानि विदुर्बुधाः।। इति।।

अर्थात् जन्म राशि से लग्न यदि 3।6।10।11 वीं राशि हो तो श्रेष्ठ, 8।12 वीं राशि हो तो नेष्ट तथा अन्य (1।2।5।7।9) राशि हो तो लग्नशुद्धि मध्यम होती है। इस तरह किसी भी कार्य में आप लग्नशुद्धि का विचार करके फिर मुहूर्त को सुनिश्चित करेंगे।

3.3.2 चूडाकरण में लग्नशुद्धि

सामान्य रूप से आप ने लग्नशुद्धि को जान लिया है, अब आप कार्य विशेष के लिये शास्त्रोक्त लग्नशुद्धि को जानेंगे। अर्थात् आपने प्रथम इकाई में चूडाकरण मुहूर्त विचार के क्रम में चूडाकरण के लिये विहित वर्ष, मास, तिथि, नक्षत्र आदि का अध्ययन कर लिया है। किन्तु लग्नशुद्धि की जानकारी बाकी है। अतः सम्प्रति आप चूडाकरण के लिये लग्नशुद्धि को जानने जा रहे हैं।

आचार्य रामाचार्य कहते हैं कि चूडाकरण उस समय करना चाहिये जब –

- वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु या मीन लग्न हो।
- वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु या मीन लग्न का नवांश हो।
- जन्मराशि या जन्म लग्न से आठवीं राशि का लग्न नहीं हो।
- लग्न से आठवें स्थान में कोई शुभग्रह या पापग्रह न हो।

- (पराशर मुनि के मत में अष्टम में शुक्र की स्थिति अशुभ नहीं होती है)
- लग्न से 3।6।11 स्थानों में पापग्रह (सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु) हो।
- चूडाकरणकालिक लग्न से केन्द्र (1।4।7।10) में क्षीण चन्द्रमा, मंगल, शनि एवं सूर्य नहीं हो।
- चूडाकरणकालिक लग्न से केन्द्र (1।4।7।10) में बुध, गुरू एवं शुक्र विद्यमान हो।
- चूडाकरणकालिक नक्षत्र से 2।4।6।8।9 वीं तारा (नक्षत्र) हो।

किन्तु दुष्ट तारा (1।3।5।7 वीं तारा) होने पर भी मुण्डन शुभ होता है यानी मुण्डन किया जा सकता है, यदि–

- चूडाकरणकालिक लग्न से चन्द्रमा त्रिकोण (5।9) में हो।
- या चन्द्रमा अपनी उच्च (वृष) राशि में हो।
- या चन्द्रमा शुभग्रह (गुरू, शुक्र) के घर में हो।
- या चन्द्रमा अपने मित्र (सूर्य, बुध) के वर्ग में हो।
- या चन्द्रमा अपने ही वर्ग में हो।
- अथवा चन्द्रमा गोचर में शुभस्थान में हो और शुभग्रह की राशि में हो।

अभ्यास प्रश्न

1. जन्मराशि से 3।6।10।11 वीं राशि लग्न हो और लग्न से 6।12 वें स्थान में कोई ग्रह नहीं हो वह समय सभी कार्यों के लिये प्रशस्त होता हैं या नहीं?
2. वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु या मीन लग्न हो तो चूडाकरण उस समय करना चाहिये या नहीं?
3. पराशर मुनि के मत में अष्टम में शुक्र की स्थिति अशुभ होती हैं या नहीं?
4. चूडाकरणकालिक नक्षत्र से ...., ..., ..., ..., एवं ...., वीं तारा प्रशस्त होती है। रिक्तस्थानों को पूरा करें।
5. चूडाकरणकालिक लग्न से चन्द्रमा 5 एवं .... में हो तो दुष्ट तारा होने पर भी मुण्डन शुभ होता है। रिक्तस्थान को पूरा करें।
6. चन्द्रमा सूर्य एवं .... के वर्ग में हो तो दुष्ट तारा होने पर भी मुण्डन शुभ होता है। रिक्तस्थान को पूरा करें।
7. चन्द्रमा गोचर में शुभस्थान में हो तो कैसे ग्रह की राशि में रहने पर दुष्ट ताराजन्य दोष नहीं होता हैं?

3.3.3 विद्यारम्भ/अक्षरारम्भ में लग्नशुद्धि

आपने प्रथम इकाई में अक्षरारम्भ एवं विद्यारम्भ मुहूर्त विचार के क्रम में विहित वर्ष,

मास, तिथि, नक्षत्र आदि का अध्ययन कर लिया है। किन्तु लग्नशुद्धि की जानकारी बाकी है। सम्प्रति आप उसी लग्नशुद्धि को जानने जा रहे हैं।

(क) अक्षरारम्भ में लग्नशुद्धि –

अक्षरारम्भ तब करना चाहिये जब –

- वृष, मिथुन, कन्या, धनु या मीन लग्न हो।
- या वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन का नवांश हो।
- अक्षरारम्भ कालिक लग्न से अष्टम शुद्ध (अष्टम में कोई ग्रह नहीं) हो।
- अक्षरारम्भ के समय कुम्भ का नवांश नहीं हो।
- अक्षरारम्भ कालिक लग्न से सप्तम में बुध, दसवें में गुरू तथा लग्न में शुक्र हो।
- लग्न बली हो।

(ख) विद्यारम्भ में लग्नशुद्धि

विद्यारम्भ तब करना चाहिये जब–

- वृष, मिथुन, कन्या, धनु या मीन लग्न हो।
- वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन का नवांश हो।
- विद्यारम्भकालिक लग्न से अष्टम शुद्ध (अष्टम में कोई ग्रह नहीं) हो।
- विद्यारम्भकालिक लग्न से केन्द्र (1 |4 |7 |10) एवं त्रिकोण (9 |5) में शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरू, शुक्र) हों।
- विद्यारम्भकालिक लग्न से उपचय (3 |6 |11) में पापग्रह हों।

अभ्यास प्रश्न

8. किन लग्नों में अक्षरारम्भ करना चाहिये?
9. अक्षरारम्भ कालिक लग्न से सप्तम में ...., दसवें, में .... तथा लग्न में .... हो तो प्रशस्त होता है। रिक्तस्थानों को पूरा करें।
10. अक्षरारम्भ के समय कुम्भ का नवांश प्रशस्त होता हैं या नहींत्र
11. विद्यारम्भकालिक लग्न से अष्टम में कोई ग्रह नहीं हो तो विद्यारम्भ करना चाहिये या नहीं?
12. विद्यारम्भकालिक लग्न से उपचय में पापग्रह या शुभग्रह का होना शुभ होता है?

3.3.4 उपनयन में लग्नशुद्धि

आपने प्रथम इकाई में उपनयन मुहूर्त विचार के क्रम में उपनयन के लिये विहित वर्ष, मास, तिथि, नक्षत्र आदि का अध्ययन कर लिया है। किन्तु लग्नशुद्धि की जानकारी

बाकी है। अतः सम्प्रति आप उपनयन में लग्नशुद्धि को जानने जा रहे हैं। बालक का उपनयन ऐसे लग्न में करना चाहिये जब –

- उपनयनकालिक लग्न से 6 ।8 ।12 स्थानों शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरू, शुक्र) नहीं हों, किन्तु (1 ।2 ।3 ।4 ।5 ।7 ।9 ।10 ।11) स्थानों में शुभग्रह हो।
- उपनयनकालिक लग्न से उपचय (3 ।6 ।11) में पापग्रह हो।
- उपनयन के समय शुक्लपक्ष का चन्द्रमा वृषराशि या कर्कराशि का होकर लग्न में स्थित हो।

उपनयन कालिक लग्न से कुछ ऐसी ग्रहस्थितियाँ होती हैं जो बटु (बालक) की उन्नति में बाधक होती है। अतः आचार्य रामदैवज्ञ में लग्नभंग योग को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि बालक का उपनयन ऐसे समय में निश्चित करना चाहिये जब –

- उपनयनलग्न से छठे और आठवें स्थान में चन्द्र, गुरू एवं शुक्र स्थित होकर लग्न का स्वामी न हो।
- बारहवें स्थान में चन्द्रमा और शुक्र न हो।
- लग्न से आठवें एवं पाँचवें स्थान में पापग्रह (सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु) न हो।

3.3.5 विवाह में लग्नशुद्धि

आपने द्वितीय इकाई में विवाह मुहूर्त विचार के क्रम में विवाह के लिये विहित वर्ष, मास, तिथि, नक्षत्र आदि का अध्ययन कर लिया है। किन्तु लग्नशुद्धि की जानकारी बाकी है। अतः सम्प्रति आप विवाह में लग्नशुद्धि को जानने जा रहे हैं। विवाह ऐसे लग्न में करना चाहिये जब –

- वृष, मिथुन, कन्या, तुला, धनु या मीन लग्न हो।
- शुभग्रह विवाहलग्न से 1 ।4 ।5 ।7 ।9 ।10 स्थानों में स्थित हों।
  विशेष – विवाह कालिक लग्न से 1 ।4 ।5 ।7 ।9 ।10 स्थानों में यदि गुरू या शुक्र स्थित हो तो समग्र दोष नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् वह लग्न अत्यन्त उत्तम माना जाता है।
- पपग्रह विवाहलग्न से 3 ।6 ।11 में स्थित हों।

अभ्यास प्रश्न

13. उपनयनकालिक लग्न से ...., ..., ... स्थानों शुभग्रह नहीं हों तो बालक का उपनयन करना चाहिये?

14. उपनयन के समय शुक्लपक्ष का चन्द्रमा वृष राशि या कर्क राशि का होकर .... में स्थित हो तो शुभ होता है। खाली स्थान को भरें।

15. विवाहलग्न से ...., ..., ..., ... एवं .... स्थानों में शुभग्रह का होना अच्छा होता है। रिक्तस्थान को पूरा करें।

16. पापग्रह विवाहलग्न से ...., ... एवं .... में स्थित हो तो अच्छा होता है। रिक्तस्थानों को पूरा करें।

3.4 गुरू–शुक्रास्त दोषनिर्णय

आपने प्रथम इकाई में तथा द्वितीय इकाई मे चूडाकरण, विद्यारम्भ, उपनयन एवं विवाह मुहूर्त के अध्ययन के क्रम में जान लिया हैं कि गुरू शुक्र के अस्त, बाल एवं वृद्ध ये तीनों अवस्थायें शुभ कर्मों में त्याज्य हैं। परन्तु वे गुरू एवं शुक्र कब और कितने समय तक अस्त, बाल या वृद्ध होते हैं यह जानना बाकी है। सम्प्रति आप उसी विषय को जानने जा रहे हैं।

आप जानते ही हैं कि ग्रहों में सूर्य का ही अपना प्रकाश है, यानी सूर्य अत्यन्त प्रकाशवान् ग्रह है। किन्तु शेष चन्द्र, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र और शनि में अपना प्रकाश नहीं है। ये सभी ग्रह सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। सूर्य को अत्यन्त प्रकाशवान होने के कारण कोई भी ग्रह जब सूर्य के निकट चला जाता है त बवह ग्रह लुप्तकिरण (तेजोविहीन) होने के कारण 'अस्त' कहलाता है। अस्त से पूर्व ग्रह क्षीणरश्मि होने के कारण 'वृद्ध' कहलाता है, तथा अस्त के बाद (उदय होने पर) वह ग्रह क्षीण प्रकाशवान होने के कारण 'बाल' कहलाता है। यथा –

लुप्तांषुः सूर्यसान्निध्यात् खेटोऽस्त इति कथ्यते।
क्षीणो वृद्धस्ततः पूर्व पश्चात् क्षीणस्तु बालकः।। इति।।

गुरू शुक्र के वार्द्धक्य, बाल्य और अस्त के समय उपनयन, यज्ञ, विवाह, वधूप्रवेश, द्विरागमन आदि मंगल कार्य नहीं करना चाहिये। यथा –

वार्धकेऽस्ते तथा बाल्ये समये गुरूशुक्रयोः।
व्रतयज्ञविवाहादि मंगलं परिवर्जयेत्।। इति।।

3.4.1 ग्रहों के कालांश

आप जानते हैं कि सारे ग्रह बिम्ब एक जैसे नहीं है। अर्थात् कोई ग्रह बहुत बड़ा हैं तो कोई अत्यन्त छोटा है। कोई मध्यम आकार का है। इनके आकार में भिन्नता होने के कारण अस्त होने के समय सूर्य से उनकी दूरी में भी भिन्नता होती है। यानी कोई सूर्य से कुछ दूर रहने पर ही अस्त हो जाते है, तो कोई पास आने पर अस्त होते हैं। जिस समय ग्रह अस्त या उदित होता है उस समय के सूर्य एवं ग्रह के अन्तरांश को (अंशात्मक दूरी को) ज्योतिशास्त्र में कालांश कहते हैं। वे कालांश सभी ग्रहों के भिन्न भिन्न होते हैं। यथा –

दस्रेन्दवः 12 शैलभुवश्च 17 शक्रा 14 रुद्राः 11 खचन्द्रा 10 स्तिथयः 15 क्रमेण।
चन्द्रादितः काललवा निरुक्ता ज्ञ 12 शुक्र 8 योर्व्रक्रगयोर्द्विहीनाः।। इति।।

अर्थात् चन्द्रमा सूर्य से पीछे जब 12 अंश की दूरी पर रहता है तभी अस्त हो जाता है। इसके बाद यह अस्त चन्द्र पूर्व की ओर बढ़ता हुआ अमान्त में सूर्य के एकदम सीध में (सूर्य के राश्यादि तुल्य) हो जाता है। तत्पश्चात् पुनः आगे की ओर ही बढ़ता हुआ चन्द्रमा सूर्य से 12 अंश की दूरी तक अस्त ही रहता है। चूँकि चन्द्रमा सूर्य से 12 अंश आगे एवं 12 अंश पीछे तक अस्त रहता है, अतः चन्द्रमा का कलांश 12 अंश कहा गया है। इसी तरह मंगलादि सभी ग्रहों की स्थिति अपने अपने कालांश के अनुसार समझना चाहिये। यानी मंगल 17 अंश, बुध 14 अंश, गुरू 11 अंश, शुक्र 10 अंश तथा शनि 15 अंश सूर्य से आगे तथा पीछे रहने पर अस्त रहते हैं। किन्तु बुध एवं शुक्र जब वक्री होते हैं तब उनके कालांश क्रमशः 12 एवं 8 समझना चाहिये। यानी वक्रावस्था में बुध का कालांश 12 तथा शुक्र का कालांश 8 हो जाता है। सुविधा की दृष्टि से नीचे सारिणी भी दी जा रही है।

ग्रहो के कालांश बोधकसारिणी

ग्रहाः	चन्द्रः	मंगलः	बुधः	गुरूः	शुक्रः	शनिः
कालांशाः	12	17	14	11	10	15
वक्री बुध और शुक्र के कालांश			12		8	

3.4.2 गुरू शुक्र के बाल्य एवं वार्धक्य का समय

गुरू शुक्र के बाल्य एवं वार्धक्य के विषय में शास्त्रकारों का चिन्तन हैं कि शुक्र पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं में उदय और अस्त होते है। किन्तु गुरू केवल पश्चिम दिशा में अस्त एवं पूर्व दिशा में उदित होता है।

शुक्र के पूर्व दिशा में उदय होने के बाद 3 दिन तक तथा पश्चिम में उदय होने के बाद 10 दिन तक बाल्य रहता है। पूर्व दिशा में अस्त होने के पहले 15 दिन तथा पश्चिम दिशा में अस्त होने से पहले 5 दिन शुक्र का वार्धक्य रहता है।

गुरू के अस्त से पहले 15 दिन वार्धक्य तथा उदय के बाद 15 दिन बाल्य रहता है। यथा –

पुरः पश्चाद् भृगोर्बाल्यं त्रिदशाहं च वार्धकम्।
पक्षं पंचदिनं ते द्वे गुरोः पक्षमुदाहृते।। इति।।

यहाँ पर शास्त्रों में मतान्तर भी उपलब्ध है। यथा –

ते दशाहं द्वयोः प्रोक्ते कैश्चित् सप्तदिनं परैः।
त्र्यहं त्वात्ययिकेऽप्यन्यैरर्धाहं च द्वयहं विधोः।। इति।।

अर्थात् कुछ ऋषियों ने गुरू एवं शुक्र दोनों के 10 दिन बाल्य और 10 दिन वार्धक्य कहे हैं। कुछ मुनियों ने दोनों के 7 दिन बाल्य और 7 दिन वार्धक्य कहे हैं। कई आचार्यों ने तो अत्यन्त आवश्यक कार्य में केवल 3 दिन बाल्य एवं 3 दिन वार्धक्य कहा है।

चन्द्रमा के उदय (अमान्त) के बाद आधा दिन (शुक्लप्रतिपदार्ध) तक, तथा अस्त होने (अमान्त) के पहले 2 दिन (अमावस्या तथा कृष्ण चतुर्दशी) तक वार्धक्य रहता है।

संहिता प्रदीप में तो दोनों का 7 दिन बाल्य और 10 दिन वार्धक्य कहा गया है। यहाँ शुभ कर्मों में वार्धक्य को तो त्याज्य बतलाया है किन्तु बाल्यावस्था को त्याज्य नहीं माना है। क्योंकि बाल्यावस्था में वे दोनों (गुरू और शुक्र) उपचीयमान (वर्धिष्णु) रहते हैं। तद्यथा –

स्यात् सप्तरात्रं गुरूशुक्रयोश्व बालत्वमह्नां दषकं च वार्धम्।
वृद्धौ सितेज्यावशुभौ, शिशुत्वे शस्तौ यतस्तावुपचीयमानौ।। इति।।

कुछ आचार्यों का मत है कि गुरू, शुक्र एवं चन्द्र ये तीनों अथवा इनमें से दो उदित हों तो शुभ कर्म करना चाहिये, किन्तु तीनों अस्त हों तो शुभकर्म नहीं करना चाहिये। यथा–

गुरूशुक्रशशाड्केशु त्रिशु वाऽप्युदिते द्वये।
कार्य बुधैः शुभं कर्म त्रिश्वस्तेशु परित्यजेत्।। इति।।

अपि च –

कृष्णे पुष्टतनौ चन्द्रे शुक्ले क्षीणकरेऽपि च।
कार्य कर्म शुभं चास्तेऽप्येकस्मिन् गुरूशुक्रयोः।। इति।।

अर्थात् कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से सप्तमी पर्यन्त और शुक्लपक्ष में द्वितीया से पूर्णिमा पर्यन्त यदि गुरू और शुक्र में केवल एक अस्त हो तो शुभकर्म कर लेना चाहिये।

तथा च– पुष्टेश्विन्द्वीज्यशुक्रेशु नष्टयोः शनिभौमयोः।
सुकर्मार्हः शुभः कालो ह्यनर्हस्त्वन्यथा भवेत्।। इति।।

अर्थात् जिस समय चन्द्र, गुरू, शुक्र ये तीनों पुष्टरश्मि हों और शनि तथा मंगल ये नष्ट (अस्त, क्षीण किरण) हों तो वह समय अत्यन्त शुभ होता है। यदि स्थिति इसके विपरीत हो अर्थात् मंगल, शनि ये पुष्ट हों तथा चन्द्र, गुरू, शुक्र ये तीनों अस्त हों, तो वह समय अत्यन्त अशुद्ध होता है।

किन्तु महर्षि गर्ग ने तो गुरू शुक्र की अस्तादि व्यवस्था देश भेद से मानने का निर्देष दिया है। यथा–

शुक्र गुरूः प्राक्परतश्च बालो विन्ध्ये, दशावन्तिशु सप्तरात्रम्।
वड्गेशु हुणेशु च षट् व पंच, शेशे तु देशे त्रिदिनं वदन्ति।। इति।।

इसका आशय यह है कि शुक्र और गुरू के अस्त से पूर्व एवं पश्चात् विन्ध्यक्षेत्र में दस दस दिन, उज्जयिनी (मालवा) क्षेत्र में सात सात दिन, वड्गप्रदेश में छः छः दिन, हूणदेश (सम्प्रति चीन का उत्तरी भाग जो मैंगोलिया के नाम से प्रसिद्ध हैं, जहाँ का उत्तर अक्षांश 50 है, उसी का प्राचीन नाम हूण है।) में पाँच पाँच दिन तथा बाकी देशों में तीन तीन दिन शुभ कार्य नहीं करना चाहिये।

इस तरह उपर्युक्त शास्त्रीय वचनों को तथा देश काल को ध्यान में रखते हुये आप शुभाशुभ समय का निर्णय करेंगे।

3.5 गुरू–शुक्र और समयशुद्धि

आप को पता ही है कि यह संसार प्रतिक्षण ग्रह के प्रभाव से प्रभावित है। सूर्यादि

ग्रहों की राशि से ही वायु शुद्ध एवं अशुद्ध होकर समय को शुद्ध एवं अशुद्ध बनाता है। चिन्तम ऋषिणें ने ग्रहों के इन्हीं सूक्ष्म प्रभावों का गम्भीर अध्ययन कर समय को शुद्ध एवं अशुद्ध इन दो विभागों में विभक्त किया है। समय के शुद्ध एवं अशुद्ध होने के अनेक हेतु होते हैं, उनमें मुख्य हेतु निम्नलिखित हैं। यथा –

शुद्ध हेतु	अशुद्ध हेतु
1. उदित गुरू	1. अस्त गुरू
2. उदित शुक्र	2. अस्त शुक्र
3. गुरू शुद्धचार	3. गुरू अतीचार
4. सिंह–मकरेतर राशिस्थ गुरू	4. सिंह–मकर राश्यशस्थ गुरू
5. गुर्वादित्येतर योग	5. गुर्वादित्य योग

इसके अतिरिक्त मास, तिथि, वार, नक्षत्र आदि के योगायोग से समय की शुद्धि एवं अशुद्धि का अध्ययन आपने इससे पूर्व प्रथम एवं द्वितीय इकाई में कर लिया है। इनके अलावा उपर्युक्त पाँच शुद्धाशुद्धि में से प्रथम एवंद्वितीय शुद्धाशुद्धि विचार (उदित गुरू, उदित शुक्र, अस्त गुरू, अस्त शुक्र तथा तदंगभूत बाल्य, वार्धक्य) के विषय में भी आप ने इससे पहले (इसी तृतीय इकाई में ही) अध्ययन कर लिया है। सम्प्रति आप अवशिष्ट तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम शुद्धाशुद्धि विषयक विचार (गुरू शुद्धचार, सिंह–मकरेतर राशिस्थ गुरू, गुरू अतिचार, सिंह–मकर राश्यशस्थ गुरू, गुर्वादित्येतर योग, गुर्वादित्य योग) के विषय में अध्ययन करने जा रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

17. ग्रह जब सूर्य के निकट चला जाता है त बवह तेजोविहीन होने के कारण .... कहलाता है। रिक्तस्थान को पूरा करें।

18. अस्त से पूर्व ग्रह क्षीणरश्मि होने के कारण .... कहलाता है। रिक्तस्थान को पूरा करें।

19. मार्गी गुरू के कालांश .... तथा शुक्र के वक्र कालांश .... है। रिक्तस्थानों को पूरा करें।

20. संहिता प्रदीप में गुरू एवं शुक्र के .... दिन बाल्य और .... दिन वार्धक्य कहा गया है। रिक्तस्थानों को पूरा करें।

3.5.1 अतिचार विचार

आप जानते हैं कि 'अति' शब्द सामान्यतया 'अधिक' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। किन्तु सम्प्रति 'अतिचारविचार' इस शब्द में 'अति' शब्द 'मर्यादा उल्लंघन' के अर्थ में प्रयुक्त है। मर्यादा उल्लंघन चाहे जिस किसी प्रसंग में हो वह अच्छा नहीं होता है। यही कारण है कि बहुत ऐसे शब्द है जिसमें 'अति' लग जाने से उसके दूषित पदार्थ का बोध होने लगता है। यथा 'आचार' शब्द का प्रयोग सत्कर्म में होता है। वह भी मर्यादा के भीतर हो तो आचार या सदाचार कहलाता है। मर्यादा के अतिक्रमण में आचार भी अति+आचार =

अत्याचार हो जाता है। इसी तरह ज्योतिषशास्त्र में गुरू के चार का अतिक्रमण (अतिक्रम्य चरणम्) अतिचार कहलाता है। अर्थात् मध्यमगति का उल्लंघन करके यदि कोई ग्रह नियत समय से पहले ही अग्रिम राशि में संक्रमण करे तो वह ग्रह अतिचारगत कहलाता है। अर्थात् मध्यमगति का उल्लंघन करके यदि कोई ग्रह नियत समय से पहले ही अग्रिम राशि में संक्रमण करे तो वह ग्रह अतिचारगत कहलाता है। जो दुष्ट समय के लिये प्रयुक्त है। आचार्यों ने इस अतिचार शब्द को कहीं कहीं 'अतीचार' भी कहा है।

1. बृहस्पति की मर्यादा

आप को पता है कि आकाश में सभी ग्रह अपनी अपनी कक्षाओं में पूर्वभिमुख गतिशील हैं। प्रत्येक ग्रह अपनी अपनी स्पष्ट गति के अनुसार अपनी अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हैं। इस क्रम में ग्रह आकाशीय विभिन्न (शीघ्रोच्च, मन्दोच्च, पातादिजन्य) परिस्थितियों के कारण कभी तो अत्यन्त तीव्रगतिक हो जाते हैं, तो कभी अत्यन्त मन्दगतिक हो जाते हैं। उन्हीं तीव्र एवं मन्द गति के बीच की गति को मध्यम गति कहते हैं। इसी मध्यम गति से गुरू का एक राशिभाग काल (361 |2 |4 |45) सावन दिनादि का होता है। यानी गुरू मध्यम गति से 361 |2 |4 |45 इतने सावन दिनादि में एक राशि का भोग कर लेता है। गुरू के इसी एक राशि भोग काल को एक संवत्सर कहते हैं। यथा भास्कराचार्य ने कहा भी है –

बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात् संवत्सरं सांहितिका वदन्दि। इति।

महर्षि वसिष्ठ भी कहते है – ''मध्यगत्या भभोगेन गुरोर्गौरववत्सराः'' इति। यही सैंवत्सर सृष्टचारम्भ के बाद क्रमशः विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख आदि साठ नामों से जाने जाते हैं। आप किसी भी कार्य के संकल्प में इसी संवत्सर का नामोच्चारण करते हैं। जब सावयव 361 दिन के भीतर स्पष्ट गुरू का एक राशि परिवर्तन होता है तब वह सैंवत्सर शुद्ध सैवत्सर कहलाता है।

गुरू एक सैंवत्सर (361 |2 |4 |45 सावन दिनादि के भीतर) में दो राशि का संचरण कर पुनः वक्री होकर पूर्व राशि में नहीं लौटता है तो वह सैंवत्सर लुप्तसैंवत्सर कहलाता है। इसी लुप्तसैंवत्सर को महाविचार भी कहते हैं। यदि गुरू वर्ष (सैंवत्सर) के बीच में दो राशि का संचरण कर वक्री होकर पूर्व राशि में लौट जाता है तब उसे अतिचार कहते हैं। जैसे संहिता में कहा भी है –

यत्रैकराशिसंचारो मार्गगत्या गुरोर्भवेत्।
शुद्धः सैंवत्सरः स स्यात्सर्वेशां च शुभप्रदः।।
यत्र द्विराशिसंचारो ह्यतीचारः स कथ्यते।
लुप्ताब्दश्च यदाब्दान्ते पूर्वभं नैति वक्रितः।।
महातिचारसंज्ञोऽसौ सर्वलोकभयंकरः। इति।।

किन्तु शास्त्रों में इस व्यवस्था में देशभेद से कुछ अन्तर भी देखा जा रहा है, जो नीचे द्रष्टव्य है।

(क) देशभेद से गुरू मर्यादा विचार

दक्षिण देश में एक एक सौ वर्ष में एक बार्हस्पत्य की पूर्ति होने से शुद्ध वर्ष माना जाता है। अन्यथा (एक सौर वर्ष में यदि दो बार्हस्पत्य का अवसान हो जाय तो वह) लुप्तवत्सर कहलाता है। यथा कहा भी है –

एकस्मिन् रविवर्षे गौरववर्षद्वयावसानं चेत्।
त्र्यब्दस्पृगेनमेवं विलुप्तसंवत्सरं प्राहुः।। इति।।

इसी प्रकार एक चान्द्र वर्ष में एक बार्हस्पत्य की समाप्ति होने पर बड़्.गादि देशा में शुद्ध वर्ष माना जाता है। अन्यथा लुप्त और अधिवत्सर होते हैं।

(ख) नर्मदोत्तरभाग में गुरूचार की मर्यादा

गुरूनिष्ठ प्रत्येक मेषादि राशि में उक्त बार्हस्पत्य वर्ष का अवसान (पूर्ति) होने से शुद्ध सैंवत्सर होते हैं। जिस जीवाश्रित राशि में दो बार्हस्पत्य वर्ष का अवसान होता है वह बार्हस्पत्य वर्ष अधिवत्सर कहलाता है। जिस जीवाश्रित राशि में बार्हस्पत्य वर्ष का अवसान नहीं होता है वह वर्ष लुप्तसंवत्सर कहलाता है। लुप्तसंवत्सर ही गुरू का अतिचार या अत्यविचार कहलाता है।

यहाँ ध्यातव्य है कि गुरू का अतिचार दोषकारक तो होता है किन्तु सम्पूर्ण वर्ष दोषकारक ही नहीं होता। अतिचार के स्वरूप भेद से तथा देशभेद से ऋषियों ने दोष का प्रतिपादन किया है। जैसा कि आप नीचे अध्ययन करने जा रहे हैं।

(ग) गुरू के अतिचार के मुख्य भेद

गुरू के अतिचार के मुख्यतः दो भेद हैं, 1. लघ्वतिचार तथा 2. महाविचार।

1. लघ्तविचार :– गुरू यदि प्रभवादिसंवत्सरान्त से पहले ही पूर्व राशि को छोड़कर अग्रिम राशि में प्रवेश करें तथा वक्र गति से पुनः पूर्व राशि में लौट आवे तो उसे लघ्वतिचार कहते हैं। यथा महामहोपाध्याय महेश ठक्कुर जी लिखते है –

''यद्यपूर्णसंवत्सर एव पूर्वराशि त्यक्त्वा परराशिगतो भवति, पुनर्वक्रगत्या पूर्वराशिमुपैति तदा लघ्वतिचारगो ज्ञेयः।''

इस बात की पुष्टि दैवज्ञवान्धव के इस वचन से होती है। यथा में –

अतिचारगतो जीवः पूर्वभं यदि गच्छति।
लघ्वतीचारगो ज्ञेयस्तदा प्राहुर्मुनीश्वराः।। इति।।

यह लघ्वतिचार भी दो प्रकार के होते हैं।

तत्र प्रथम प्रकार :– अतिचार के बाद गुरू अग्रिम राशि से वक्र होकर पूर्व राशि में आ जाय तथा पूर्व राशि में रहते हुये वर्ष पूर्ति हो तो इसे लघ्वतिचार कहते हैं इस लघ्वतिचार में कुछ आचार्यों के अनुसार दोषाभाव होता है। किन्तु कतिपय आचार्यों ने केवल 28 दिन दोषा वह बतलाया है। जैसे महामहोपाध्याय महेश ठाकुर लिखते हैं –

''यद्यपूर्णसंवत्सर एव पूर्वराशि त्यक्त्वा परराशिगतो भवति तस्मात्
पुनर्वक्रगत्या पूर्वराशिमुपैति तत्र

बार्हस्पत्यमानेन संवत्सरपूर्तिर्भवति, तदापि घ्वतिचारस्तस्मिन्नष्टाविषतिदिनानि त्याज्यानि''। इति।।

यहाँ पर आचार्य लल्ल ने कहा है कि –

वक्रे चैवातिचारे च वर्जयेत्तदनन्तरम्।
व्रतोद्वाहादियात्रायामष्टाविषतिवासरान्।। इति।।

इसका आशय है कि वक्री होने पर भी जब तक स्पष्ट और मध्यम गुरू एक राशि में रहते हैं तब तक शुद्ध समय रहता है। जब स्पष्ट गुरू वक्री होकर पिछली राशि में चले जाते हैं तबवह अतिवक्रचार कहलाता है। इस स्थिति में 28 दिन त्याज्य कहा गया है।

इसी प्रकार मुहूर्त गणपति का भी वचन द्रष्टव्य है –

वक्रातिचारगे जीवे त्वष्टाविषंतिवासरान्।
परित्यज्य ततः कुर्याद् व्रतोद्वाहादिक शुभम्।। इति।।

इसी प्रकार राजमार्तण्ड में भी –

वक्रातिचारगे जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम्।
व्रतोद्वाहादिचूडायामष्टाविषंतिवासरान्।। इति।।

किसी के मत में तो मेष, वृष, मिथुन, कन्या, वृश्चिक तथा मीन का गुरू अतिचारी होने पर भी विवाहादि मंगल कार्यों में त्याज्य नहीं माना गया है। यथा –

कन्यावृश्चिकमेषेषु मिथुने च झषे वृषे।
अतिचारेऽपि कर्तव्यं विवाहादि बुधैः सदा।। इति।।

अथ द्वितीय प्रकारः– गुरू यदि वर्तमान बार्हस्पत्य प्रभवादि संवत्सरान्त से पहले पूर्व राशि को छोड़कर अग्रिम राशि में चला जाय तथा पुनः वक्री होकर पूर्व राशि में वापस आ जायें किन्तु संवत्सर की पूर्ति नहीं हो (अर्थात् संवत्सरान्त से पहले ही अग्रिम राशि में चले जाये) तो उसे भी लघ्वतिचार ही कहते हैं। यथा म.म. महेश ठक्कुर –

''यद्यपूर्णसंवत्सर एव पूर्व राशि त्यक्त्वा परराशिगतो भवति तस्मात् पुनर्वक्रगत्या पूर्वराश्मिुपैति तत्र यदि बार्हस्पत्यमानेन संवत्सरपूर्ति नंं भवति, तदापि लघ्वतिचारगो ज्ञेयस्तत्र पंचचत्वारिाषाद्दिनानि वर्ज्यानि''। इति।।

यहाँ पर उक्त मत की पुष्टि इस वचन से होती है। यथा –

अतिचारगतो जीवः पूर्वभं यदि गच्छति।
लघ्वतीचारगो ज्ञेयस्तत्र पक्षत्रयं त्यजेत्।। इति।।

फलितार्थः– उपर्युक्त वचनों का आशय यह है कि गुरू अतिचारी हो जायें (यानी गौरव संवत्सरान्त से पहले ही गुरू पूर्व राशि को छोड़कर अग्रिम राशि में चले जायें) और वक्री होकर पुनः वह (अतिचारी गुरू) पूर्व राशि में लौट आवे तो लघ्वतिचार होता है। यहाँ वक्री होने के बाद पुनः मार्गी होकर गुरू जब उस पूर्व राशि का परित्याग करता है उस समय तक यदि संवत्सरान्त हो जाय तो 28 दिनों तक त्याज्य होता है। किन्तु वक्री होने के बाद पुनः मार्ग गति से गुरू के राशित्याग के समय यदि संवत्सरान्त नहीं हुआ हो अर्थात् अगली

राशि में जाने के बाद संवत्सरान्त हो तो 45 दिन तक विवाहादि शुभकार्यों के लिये त्याज्य कहा गया है।

2. महातिचार :– अतिचार करके गुरू जिस राशि में जायें उस राशि से फिर वापस होकर (वक्री होकर) पूर्व राशि में नहीं आवें तो महातिचार होता है। यह महातिचार शुभकार्यों में त्याज्य कहा गया है। यथा राजमार्तण्ड का वचन द्रष्टव्य है

> अतिचारगतो जीवः तत्रैव कुरुते स्थितिम्।
> तदा महातिचारः स्यान्निन्दितः सर्वकर्मसु।। इति।।

महातिचार को ही आचार्यों ने लुप्त संवत्सर भी कहा है। यथा कविवर दैवज्ञ पं. श्री सीताराम झा लिखते है –

> यत्र वर्षे द्विचारः स्यादतिचारः स उच्यते।
> लुप्ताब्दष्च तदा जीवो पूर्वभं नैति वक्रितः।।
> महातिचार इत्येव सर्वलोकभयंकरः।। इति।।

इसी तरह महामहोपाध्याय महेशठक्कुर भी लिखते है –

> यद्यपूर्णसंवत्सर एवं पूर्वराशि परित्यज्यापरराशिगतो भवति, तस्मात् वक्रगत्या पुनः पूर्वराशि नैति तदा महतिचारगो ज्ञेयः।। इति

इस महातिचार में कुछ आचार्यों ने 45 दिन को त्याज्य माना है। कुछ आचार्यों ने लुप्त सवत्सर होने पर समस्त वर्ष को त्याज्य माना है।

किन्तु कुछ आचार्यों का ऐसा कहना है– लघ्वतिचार में तो दोष ही नहीं होना चाहिये। यदि हो भी तो द्वितीय प्रकार के लघ्वतिचार में 28 दिन तथा महातिचार में अधिक से अधिक तीन पक्ष (45 दिन) त्याज्य मानना चाहिये। यथा–

> ''अतिचारे त्रिपक्षं च वक्रे पक्षद्वयं त्यजेत्।। इति।।

महर्षि शौनक ने तो अतिचारमात्र में केवल 28 दिन त्याज्य कहा है –

> राशौ वक्री चातिचारी यदि स्याद्
> वाचामीषाऽनिष्टदः सर्वकार्ये।
> अष्टाविंषद्वासराणामधस्तात्
> तस्मादूर्ध्व नैव दोषः कदाचित्।। इति।।

(घ) पूर्व प्रतिपादित अतिचार का स्पष्ट लक्षण

कुछ आचार्यों ने अतिचार के स्वरूप/लक्षण को इस प्रकार स्पष्ट किया है–

गुरू अपने मध्यम से पूर्व ही अग्रिम राशि में चला जाय तो अतिचारी होता है। इस प्रकार मंगल एक मास, बुध 10 दिन, बृहस्पति 45 दिन, शुक्र 10 दिन और शनि छः मास, या इससे अधिक मध्यम से पहले ही अग्रिम राशि में चला जाय तो वह दूषित अतिचार होता है। वर्षान्त से पूर्व इससे कम दिनों में अग्रिम राशि में जावे तो वह अतिचार भी साधारण समझा जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि गुरू यदि पूर्व संवत्सर व्यतीत होने पर

अग्रिम राशि में जाय तो शुद्ध संवत्सर, तथा साढ़े दस या इससे अधिक मास राशि भोग कर अग्रिम राशि में जाये तो लुप्तवत्सर होने पर भी काल दूषित नहीं होता है।

यथा –

"मासो दशाहानि तथा त्रिपक्षी
मसत्रिभागः खलु खट्कमासाः।
एशोऽतिचारः कथितो ग्रहाणां
भौमादिकानामितरस्तु चारः।।"

तथा च –

स्वमध्यखेटाद् यदि पूर्वमेव
स्फुटोऽग्रभं याति तदातिचारः।
टकालकृन्नेष्टफलप्रदोऽसौ
पश्चाद् व्रजन्साधुफलप्रदः स्यात्।। इति।।

महर्षि च्यवन का वचन –

मसान् दशैकादश वा प्रभुज्य
राषेर्यदा राशिमुपैति जीवः।
भुक्ते न पूर्व च पुनस्तथापि
न लुप्तसंवत्सरमाहुरार्याः।। इति।।

वस्तुतः उपर्युक्त वचनों से स्पष्ट है कि संवत्सर के 10 या 11 मास बीतने पर ही (संवत्सरान्त से 1–2 मास पहले) गुरू यदि पूर्व राशि का भोग कर अग्रिम राशि में जाये और वक्र होकर पूर्व राशि का भोग न करे तो महातिचार का लक्षण प्राप्त होने पर भी संवत्सर दूषित नहीं होता।

यदि दो मास से अधिक पहले ही गुरू अतिचारी हो अर्थात् अग्रिम राशि में चला जाय तो अतिचारानन्तर 28 या 45 दिन शुभ कार्य न करे। अथवा अतिचारानन्तर तद्राशिस्थ गुरू में वर्षान्त पर्यन्त शुभकृत्य न करें। यथा कहा भी है –

अतिचारगतो जीवः पूर्वभं नैव गच्छति।
समाचरेयुः कर्माणि नो वा तत्रैव संस्थिते।। इति।।

इसी तरह व्यवहारोच्चय में भी –

अतिचारगतो जीवस्तं राशि नैति चेत्पुनः।
लुप्तसंवत्सरो ज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु।। इति।।

(ङ.) लुप्तसंवत्सर दोष का अपवाद

इस अतिचार के बारे में शास्त्रों में राशिभेद एवं देशभेद से अपवाद के भी वचन मिलते हैं। अर्थात् कुछ ऋषियों का कहना है कि अतिचारजन्य दोष सभी राशियों में या सर्वत्र समान रूप से प्रभावी नहीं होते। यथा मुहूर्तचिन्तामणिकार लिखते है –

गोऽजान्त्यकुम्भेतरभेऽतिचारगो

नो पूर्वराशि गुरुरेति वक्रितः।
तदा विलुप्ताब्द इहातिनिन्दितः
शुभेषु रेवा–सुरनिम्नगान्तरे।। इति।।

यहाँ आचार्य रामाचार्य कहते हैं, गो=वृष, अज=मेष, अन्त्य=मीन एवं कुम्भ, इन चार राशियों को छोड़कर अन्य (मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु एवं मकर इन आठ) राशियों में स्थित गुरू अतिचरण करके अगली राशि में चले जायें किन्तु पुनः वक्रगति से पूर्व राशि में नहीं आवें तो वह संवत्सर विलुप्ताब्द (लुप्तसंवत्सर) होता है। यह विलुप्ताब्द रेवा (नर्मदा) एवं गंगा के मध्यवर्ती प्रदेशों में शुभकार्यों में अतिनिन्दित कहा गया है।

इसी तरह मेष, वृष, कुम्भ और मीन इन चार राशियों में स्थित गुरू का अतिचरण होने पर भी लुप्ताब्द दोष नहीं होता है, इस बात की पुष्टि के लिये पीयूशधाराकार निम्नलिखित गुरू के वचन को उद्धृत करते है –

मेषे वृषे झषे कुम्भे यद्यतीचारगे गुरौ।
न तत्र कालदोषः स्यादित्याह भगवान् यमः।। इति।।

इसी तरह पुरूषार्थचिन्तामणि का भी वचन द्रष्टव्य है –

वृषे मेषे झषे कुम्भे यद्यतीचारगो गुरूः।
न तत्र काललोपः स्यादित्याह गालवो मुनिः।।

इसी तरह पीयूषधाराकार उपर्युक्त देश विशेष के पक्ष में महर्षि अत्रि का मत उपस्थापन करते हुये लिखते हैं –

लुप्ताब्ददोषोऽत्रिमतेन मध्ये
सोमोद्भवायाः सुरनिम्नगायाः।। इति।।

राजमार्तण्डकार भी विलुप्ताब्ददोष रेवा (नर्मदा) एवं गंगा के मध्यवर्ती प्रदेशों में ही मानते है। इस पक्ष की पुष्टि करते हुये वे लिखते है –

गर्गात्रिमाण्डव्यपराशराद्या भृग्वड्.गिरःकश्यषौनकाद्याः।
लुप्ताब्ददोषं जगदुष्च मध्ये सोमोद्भवायाः सुरनिम्नगायाः।। इति।।

पुनश्च–

लुप्तवतरदोषस्तु पाघ्नी नर्मदातटे।
नान्यदेशे निषिद्धस्तु वसिष्ठात्रिपराशरैः।। इति।।

और भी वचनान्तर –

लुप्तवत्सरदोषस्तु पयोष्णी–नर्मदान्तरे।
नान्यदेशेश्वितिप्राहुर्वसिष्ठात्रिपराषराः।।
गर्गादिमाण्डव्यपराषराद्या
भृग्वड्गिरःकश्यष्पौनकाद्याः।
लुप्ताब्ददोष प्रवदन्ति मध्ये
सोमोदद्यभवायाः सुरनिम्नगायाः।। इति।।

सारसागर मे कुछ अलग तरह से ही विलुप्ताब्ददोष के विषय में राशियों का उल्लेख करते है–

अतिचारगते जीवे धनुःकर्कटमीनगे।
लुप्तसंवसरो ज्ञेयो विवर्ज्यः सर्वकर्मसु।। इति।।

इस वचन का आशय है कि धनु, कर्क एवं मीन राशि में स्थित गुरू के अतिचरण करने पर लुप्तसंवत्सर अतिशयेन शुभ कर्मों में त्याज्य होता है।

वस्तुतः अतिचार विचार अत्यन्त ही गम्भीर विषय है। शास्त्रों में इसके विषय में बहुत सारे मत मतान्तर प्राप्त है। बहुत सारे ऐसे वचन हैं जो एक दूसरे के विरोधी है। वे सारे वचन या सम्बद्ध सारे विषय इस लघुकाय पाठ में समाहित करना कठिन है। अतः इसके सम्बन्ध में कोई भी निर्णय आपको गम्भीरतया विचारोपरान्त ही करना चाहिये। यानी अतिचार विचार के क्रम में शास्त्र एवं देशाचार दोनों को ध्यान में रखकर ही कोई निर्णय लेना चाहिये। यथा उपर्युक्त वचनों के अवलोकन से स्पष्ट है कि लुप्ताब्द दोष नर्मदा एवं गंगा के मध्यवतर्ती प्रदेश में ही प्रभावी होना चाहिये। किन्तु व्यवहार में तदतिरिक्त बहुत से ऐसे प्रदेश है जहाँ लुप्ताब्द दोष माना जाता है।

3.5.2 सिंहस्थगुरूदोषविचार

जिस तरह शुभकर्म में गुरू का अतिचार वर्जित कहा गया है उसी तरह सामान्यतया सिंहस्थ गुरू को भी त्याज्य माना गया है। अर्थात् सिंह राशि में जब गुरू हों तो विवाहादि शुभ कार्य नहीं करना चाहिये यह सामान्य नियम है। जैसे वराहमिहिर कहते हैं –

उद्यानचूडाव्रतबन्धदीक्षाविवाहयात्रा हि वधूप्रवेशः।
तडागकूपत्रिदशप्रतिष्ठा बृहस्पति सिंहगते न कुर्यात्।। इति।।

अर्थात् उद्यान, चूडाकरण, यज्ञोपवीत, दीक्षाग्रहण, विवाह, विशेष यात्रा (सर्वप्रथम किसी भी देश विशेष की यात्रा), वधूप्रवेश, तालाव, कूप, देवप्रतिष्ठा इत्यादि शुभकार्य सिंहस्थ गुरू के समय नहीं करना चाहिये।

किन्तु यह सिंहस्थ गुरू नियतकालिक कर्म में दोषावह नहीं कहा गया है। यथा शाङ्र्गीय में लिखते है –

सीमन्तजातकादीनि प्राशानान्तानि यानि वै।
कर्तव्यानि न दोषोऽस्ति पंचाननगते गुरौ।। इति।।

अर्थात् सीमन्तकर्म, जातकर्मसंस्कार आदि तथा अन्नप्राशन आदि ऐसे संस्कार जो एक निश्चित समय के भीतर करना होता है, वे सभी संस्कार सिंहस्थ गुरू के समय भी करना चाहिये।

(क) सिंहस्थगुरू के तीन प्रकार से परिहार

ऋषियों ने सिंहस्थ गुरू के तीन प्रकार से परिहार बतलाये हैं जिनमें प्रथम अशभेद से, द्वितीय देशभेद से तथा तृतीय सूर्यराशिभेद से हैं। इनमं अंशभेद के अन्तर्गत नवांश का

ज्ञान अपेक्षित होता है। क्योंकि आगे सिंह राशि में सिंह के नवांश को त्याज्य बतलाया गया है। वैसे आप नवांश विचार तो जानते ही होंगे, फिर भी यदि नहीं जानते है तो यह जान ले कि सिंह राशि में 13.20 अंशादि से 16.40 अंशादि तक सिंह का नवांश होता है। अर्थात् स्पष्ट गुरू की राश्यादि यदि 4.13.20.00 से (अधिक) 4.16.40.00 तक हो तो वह सिंह के नवांश में होता है। जैसे कल्पना किया कि, विवाह लग्न के समय स्पष्ट गुरू 4.14.15.10 राश्यादि है, अतः गुरू सिंह के नवांश में है। इसी तरह विवाह कालिक स्पष्ट गुरू को देखकर सिंह राशि में सिंह का नवांश जानना चाहिये।

1. अंशभेद से सिंहस्थगुरू का प्रथक परिहार–

उपर्युक्त वचन से तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि सिंहस्थ गुरू समग्ररूप से विवाहादि शुभकर्मों के लिये त्याज्य है। परन्तु ऋषियों के वचनान्तर देखने से वह प्रतीति निरस्त हो जाती है। क्योंकि जहाँ सम्पूर्ण सिंहस्थ गुरू को त्याज्य कहा गया है वहीं फिर वचनान्तर के द्वारा सिंह राशि में सिंह के नवांशस्थ गुरू को त्याज्य कहने का कोई औचित्य नहीं बनता। इससे स्पष्ट होता है कि गुरू सम्पूर्ण सिंह राशिस्थ नहीं अपितु सिंह राशि के नवमांश में जितने दिन रहते हैं उतने ही दिन त्याज्य समझना चाहिये। ऐसा ही ऋषियों का कहना अभिप्रेत है। जैसे राजमार्तण्ड का वचन द्रष्टव्य है –

सिंहराशौ तु सिंहाशे यदा भवति वाक्पतिः।
सर्वदेशेष्वयं त्याज्यो दाम्पत्योर्निधनप्रदः।। इति।।

इससे स्पष्ट होता है कि सिंह राशि में सिंह के नवांश को छोड़कर अवशिष्ट अंशों में गुरू के रहने पर भी विवाहादि शुभ कार्य किया जा सकता। इसी बात का स्पष्टीकरण राजमार्तण्ड के इस वचन में देखा जा सकता है –

सिंहेऽपि भगदैवत्ये गुरौ पुत्रवती भवेत्।
अत्यन्तशुभगा साध्वी धनधान्यसमृद्धिदा।। इति।।

इस तरह निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सिंह राशि में सिंह के नवांश में जब गुरू हों तब विवाहादि शुभकार्य नहीं करना चाहिये।

2. देशभेद से सिंहस्थ गुरू का दूसरा परिहार–

आपने अंशभेद से सिंहस्थगुरू के प्रथम परिहार को जान लिया है। अब देशभेद से गुरू के दूसरे परिहार को जानने जा रहे हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि उपर्युक्त सिंहराशिनवांशस्थ गुरू, जो कि शुभ कार्यों में त्याज्य कहा गया है, वह सार्वत्रिक नहीं समझना चाहिये। यानी वह सिंहस्थ गुरू देशविशेष में ही त्याज्य होता है, न कि सम्पूर्ण भूमण्ड में। यथा आचार्य लल्ल कहते है –

गोदावर्युत्तरतो यावद् भागीरथीतटं याम्यम्।
तत्र विवाहो नेष्टः सिंहस्थे देवपतिपूज्ये।। इति।।

अर्थात् गोदावरी के उत्तरऔर गंगा के दक्षिण (दोनों के बीच) में स्थित देशों में ही सिंहस्थ

गुरू का दोष होता है। अन्य देशों में नहीं। यहाँ वसिष्ठ का भी वचन इसी प्रकार है। यथा –

भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिण तटे।
विवाहो व्रतबन्धो वा सिंहस्थेज्ये न दुश्यति।। इति।।

इस तरह स्पष्ट है कि उपर्युक्त गुरूजन्य दोष केवल गंगा एवं गोदावरी के मध्यवर्ती देशों में होता है, अन्यत्र नहीं।।

3. सूर्यराशिभेद से सिंहस्थ गुरू का तीसरा परिहार –

सिंहस्थ गुरू का तृतीय परिहार सूर्य के अपने उच्च राशि में रहने पर माना गया है। अर्थात् सिंहस्थ गुरू के समय जब सूर्य मेष (अपने उच्च) राशि में होता है तब सिंहस्थगुरूजन्मदोष नहीं होता। अर्थात् सूर्य के मेष राशि में रहने पर सिंहस्थगुरूजन्म दोष गंगा–गोदावरी के मध्यवर्ती देश में भी नहीं होता है। यथा ज्योतिर्निबन्ध का निम्नलिखित वचन देखा जा सकता है –

मंगलानीह कुर्वीत सिंहस्थो वाक्पतिर्यदा।
भानौ मेषगते सम्यगित्याहुः शौनकादयः।। इति।।

पुनस्तत्रैव –

सिंहगते सुरमन्त्रिणि कन्या मेषगते तपने परिणीता।
भूषणरत्नयुता च सुशीला सत्यवती सुखकीर्तिसमेता।। इति।।

इसी वसिष्ठ भी कहते है –

करस्य ग्रहणं कार्य सिंहस्थो वाक्पतिर्यदा।
भानौ मेषगते शस्तमित्याहुः शौनकादयः।। इति।।

उपर्युक्त तीनों परिहारों को दैवज्ञ रामाचार्य ने एक ही श्लोक में कह डाला है, जो इस प्रकार है –

सिंह गुरौ सिंहलवे विवाहो नेष्टोऽथे गोदोत्तरतश्व यावत्।
भागीरथीयाम्यतटे हि दोषो नान्यत्र देशे तपनेऽपि मेषे।। इति।।

अर्थात् सिंह राशि में गुरू जब सिंह के नवमांश में हो तो गोदावरी के उत्तर और गंगा के दक्षिण (दोनों के मध्यवर्ती) देश में शुभ कर्म त्याज्य है, अन्य देश में नहीं। जब सूर्य मेष में हो तब गंगा गोदावरी के मध्यवर्ती देश में भी सिंहस्थ गुरू का दोष नहीं होता है।

(ख) सिंहस्थगुरूदोष की देशविशेष में अनिवार्यता

दैवज्ञ रामाचार्य सिंहस्थ गुरू को चरणभेद से दोषजनकता तथा देशविशेष में अनिवार्यता को स्पष्ट करते हुये लिखते है –

मघादिपंचपादेशु गुरूः सर्वत्र निन्दितः।
गड्.गागोदान्तरं हित्वा शेषाड्.घ्रिशु न दोषकृत्।।
मेषेऽर्के सद् व्रतोद्वाहौ गड्.गागोदान्तरेऽपि च।
सर्वः सिंहगुरूर्वर्ज्यः कलिंगे गौडगुर्जरे।। इति।।

अर्थात् मघा के आदि से पाँच चरणों में (मघा के 4 चरण तथा पूर्वफाल्गुनी के 1 चरण में) जब तक गुरू रहता है तब तक ही समय को निन्दित समझना चाहिये। तदनन्तर पूर्वाफाल्गुनी के द्वितीय चरण से उत्तराफाल्गुनी के प्रथम चरण तक गुरू के सिंहस्थ होने पर भी समय–गर्हित नहीं होता है। अथवा ऐसे समझें कि स्पष्ट गुरू की राश्यादि 4.00.00.00 से 4.16.40.00 के बीच का हो तो दोषकारक होता है, तथा स्पष्ट गुरू की राश्यादि 4.16.40.00 से (अधिक) किन्तु 5.00.00.00 से कम हो तो दोषकारक नहीं होता है।

(ग) परिस्थितिविशेष में सिंहस्थ गुरू का दोषाभाव –

शौनकीय पटल में तो ऐसा भी कहा गया है कि जब सुयोग्य वर मिल जाय, या कन्या का विवाह समय बीत रहा हो या बीत गया हो, या देश में दुर्भिक्ष का सड्कट हो तब सिंहस्थ गुरू के समय भी विवाह शुभकारक ही होता है। यथा–

वरलाभातिकालाभ्यां दुर्भिक्षाद्देषविप्लवात्।
विवाहः शुभदो नित्यं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ।। इति।।

इस तरह विवाह में उपर्युक्त सारे मत–मतान्तरों तथा देश, काल एवं परिस्थिति इन सारी बातों पर ध्यान देते हुए आपको विवाह मुहूर्त का निर्णय सावधानीपूर्वक करना चाहिये।।

अभ्यास प्रश्न

21. गुरू मध्यम गति से ....|..................|.................|................ इतने सावन दिनादि में एक राशि का भोग कर लेता है। रिक्तस्थानों को पूरा करें।

22. महातिचार कब होता है?

23. रामाचार्य के मत में विलुप्ताब्द को .... एवं .... के मध्यवर्ती प्रदेशों में शुभकार्यो में अतिनिन्दित कहा गया है। रिक्तस्थानों को पूरा करें।

24. शुभ कृत्यों में सिंह राशि में .... के नवांश को त्याज्य बतलाया गया है। रिक्तस्थान को पूरा करें।

25. किन दो ऋषियों के मत में गोदावरी के उत्तर और गंगा के दक्षिण (दोनों के बीच) में स्थित देशों में ही सिंहस्थ गुरू का दोष होता है?

3.5.3 मकरस्थ गुरूविचार

आपने सिंहस्थ गुरू के विषय में जान लिया है कि विवाहादि शुभकार्य में यह विचारणीय होता है। अब आप मकरस्थ गुरू के विषय में अध्ययन करने जा रहे हैं। जिस तरह शास्त्रों में सिंहस्थ गुरू की प्रशस्तता या अप्रशस्तता की बात कही गई है उसी तरह मकर राशि में स्थित गुरू के विषय में भी शास्त्रीय वचन देखें जा रहे हैं। परन्तु इस विषय के निर्णय में भी विभिन्न मत–मतान्तरों तथा देश, काल एवं परिस्थिति इन सारी बातों पर ध्यान देते हुये आपको सावधानीपूर्वक निर्णय करना होगा।

(क) मकरस्थ गुरू की त्याज्यता

दैवज्ञ रामाचार्य जी लिखते हैं गुरू के अस्त में जो कार्य वर्जित कहा गया है वे

सभी कार्य सिंहस्थ एवं मकरस्थ (नीचराशिस्थ) गुरू के समय भी वर्जित समझना चाहिये। यथा –

अस्ते वर्ज्य सिंहनक्रस्थजीवे वर्ज्य केचिद् वक्रगे चातिचारे।
गुर्वादित्ये विश्वघस्रेऽपि पक्षे प्राचुस्तद्वद्दन्तरत्नादिभूषाम्।। इति।।

(ख) देशभेद से मकरस्थ गुरू का परिहार

पुनः रामाचार्य मकरस्थ गुरू का देश भेद से परिहार स्पष्ट करते हुये लिखते है –

रेवापूर्वे गण्डकीपश्चिमे च शोणस्योदग् दक्षिणे नीच ईज्यः।
वर्ज्यो नायं कौड्कणे मागधे च गौणे सिन्धौ वर्जनीयाः शुभेषु।। इति।।

अर्थात रेवा (नर्मदा) नदी से पूर्व तथा गण्डकी नदी से पश्चिम, शोणभद्र से दक्षिण और उत्तर दोनों तरफ के देशों में नीच (मकर) राशि की बृहस्पति वर्जित नहीं है। वह नीच (मकर) राशि का बृहस्पति कौंकण, मागध, गौड एवं सिन्धु देशों में वर्जित है।

क्षेत्रसंकेत –

नर्मदा से पूर्व तथा गण्डकी से पश्चिम, यहाँ साम्प्रतिक इन्दौर से पटना तक का क्षेत्र अभिप्रेत है।

कौकण देश दक्षिण भारत का एक भाग विशेष है जो सम्प्रति कनारा, रत्नागिरी, कोलाबा, मुम्बई तथा थाना आदि प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन काल में केरल, तुलव, सौराष्ट्र, कोंकण, करहाट, करनाट, और वर्वर मिलकर सप्त–कोकण कहलाते थे।

मगध प्रदेश उत्तरप्रदेश और बिहार का एक भाग विशेष है जो सम्प्रति काशी की गंगा की पूर्वी छोड़ से लेकर दक्षिण बिहार का प्राचीन आरा, गया आदि जिले तक व्याप्त है।

गौडदेश सम्प्रति मध्य बंगाल एवं उड़ीसा के रूप में व्यवस्थित है। मध्य बंगाल को ही प्राचीन काल में कीटक के नाम से जाना जाता था।

सिन्धुदेश से कच्छ और बहालपुर–वेला स्थान जो सम्प्रति मुम्बई के नाम से प्रसिद्ध है, अभिप्रेत है।

इसी तरह पुरूषार्थचिन्तामणि में लिखते है –

नर्मदापूर्वभागे तु शोणस्योत्तरदक्षिणे।
गण्डक्याः पश्चिमे पारे मकरस्थो न दोषकृत्।। इति।।

अपि च –

मागधे सिन्धुदेशे च गौडदेश च कोड्कणे।
नीचादिस्थो गुरूर्वर्ज्यो नान्यदेशे कदाचन।। इति।।

इसका भी आशय उपर्युक्त वचन के समान ही है।

किन्तु निम्नलिखित वचन में केवल मगध देश में ही मकरस्थ गुरू का दोष बतलाया है। यथा–

नीचस्थो वा गुरूर्वक्री वर्ज्यो वै मागधे जने।

अन्देशे शुभं प्राहुर्वशिष्ठात्रिपराशराः।। इति।।

(ग) अंशभेद से मकरस्थ गुरू का परिहार

ऊपर के वचनों से तो गुरू मकर राशि के समग्र भाग मे दोषकारक प्रतीत होता है, किन्तु कुछ ऋषियों के वचन शास्त्रों में ऐसे उपलब्ध हैं जिसमें मकर में मकर के नवांश (3 अंश 20 कला) मात्र को त्याज्य कहा गया है। यानी गुरू जब मकर राशि में मकर के नवांश में जब तक रहें तभी तक शुभ कर्मों को नहीं करना चहिये। यथा –

वाक्पतौ मकरराशिमुपेते पाणिपीडनविधिर्न विधेयः।
तत्र दूषणमुशन्ति मुनीन्द्राः केवलं परमनीचनवांशे।। इति।।

किन्तु कुछ वचन तो ऐसे भी हैं जिनमें मकर राशिस्थ गुरू के केवल नीचांश को दोषावह कहा गया है। अर्थात् गुरू जब मकर राशि के परमनीचांश (5 वें अंश) पर हों तब विवाहादि शुभ कार्य नहीं करना चाहिये। जैसे दैवज्ञ गोविन्द अपने पीयूशधाराटीका में व्यवहारचण्डेश्वर का वचन उद्धृत करते है –

नीचराशिगतो जीवः प्रशस्तः सर्वकर्मसु।
नीचांशकमतस्त्याज्यो यस्मांदशेषु नीचता।। इति।।

यहाँ आचार्य चण्डेश्वर कहते है, चूँकि गुरू के परमनीचांश में रहन पर ही वास्तविक नीचता होती है अतः मकर राशि में पाँचवें अंश पर गुरू जब तक रहते है तभी तक शुभ कर्म के लिये त्याज्य समझना चाहिये।

इस प्रकार अनेक वचनों को देखकर किसी ने मकर राशि में आरम्भ से पाँच अंश तक स्थित गुरू को त्याज्य माना है। चूँकि गुरू की मध्यम गति 5 कला है, और इसके अनुसार गुरू को 1 अंश में 12 दिन लगता है। अतः 5 अंश में गुरू को 60 दिन लग जाते हैं। शायद इसी गणित के अनुसार निम्नलिखित वचन में मकरस्थ गुरू का दोष 60 दिन तक बतलाया गया है। यथा –

मृगराशिगते जीवे दिनशष्टिं विवर्जयेत्।
गर्गादिमुनिवाक्यत्वात् कर्तव्यं शुभमन्यतः।। इति।।

टोडरानन्द में तो मकर में बृहस्पति के प्रवेश से केवल एक मास वर्जित कहा है। यथा –

नीचस्थिते तु वागीशे मासमेकं विवर्जयेत्।। इति।।

किसी ने तो मकरस्थ गुरू का कोई भी अंश अथवा किसी भी देश के लिऐ दोषा वह नहीं बतलाया है। यथा भीम पराक्रम का वचन द्रष्टव्य है –

वापीकूपतडागादि निषिद्धं सिंहगे गुरौ।
मकरस्थे तु कर्तव्यं न दोषः काललोपजः।। इति।।

इस तरह उपर्युक्त वचनों के अवलोकन से स्पष्ट है कि मकरस्थ गुरू जिस देश में त्याज्य कहा गया है वहाँ अधिक से अधिक दो मास को ही त्याज्य कहा है। उसमें भी ऐकमत्य तो नहीं ही दिख पड़ता। अतः इस विषय में भी आपको सारे मत–मतान्तरों तथा

व्यक्ति की अनुकूलता को ध्यान में रखते हुये विवाहादि मुहूर्त का निर्णय सावधानीपूर्वक करना चाहिये।।

अभ्यास प्रश्न

26. नीच राशि का बृहस्पति किन देशों में वर्जित नहीं है ?
27. नीच राशि का बृहस्पति किन देशों में वर्जित है?
28. आचार्य चण्डेश्वर के अनुसार मकर राशिगत गुरू कब शुभ कर्म के लिये त्याज्य समझना चाहिये?
29. टोडरानन्द के अनुसार मकर में बृहस्पति के प्रवेश से कितने समय तक वर्जित कहा है?

3.5.4 गुर्वादित्य दोष

जिस तरह आप ने विवाहादि शुभकृत्यों में सिंह–मकरराशिस्थ गुरू का अथवा अस्त गुरू का त्याज्य विचार जाना है उसी तरह अब आप गुर्वादित्य योग के विषय में जानने जा रहे हैं। अपनी अपनी गति से चलते हुये गुरू औ सूर्य का एक राशि में होना गुर्वादित्य योग कहलाता है। अर्थात् किसी एक राशि में गुरू और सूर्य जब तक हों तब तक गुर्वादिय समझना चाहिये। गुर्वादित्य योग को भी ऋषियों ने अस्त की तरह ही शुभकृत्यों में वर्जित कहा है।

यहाँ ध्यातय है कि जब गुरू सूर्य से 11 अंश पीछे या 11 अंश आगे तक रहता है तब अस्त रहता है। इस स्थिति में भी शुभ कृत्य वर्जित कहा गया है। यह अस्तता गुरू और सूर्य के अलग अलग राशियों में रहने पर भी होता है। यथा सूर्य मेष के 25 अंश पर हो तथा गुरू वृष के 4 अंश पर हो तो दोनों का अन्तर 9 अंश होने के कारण अलग अलग राशि में होने पर भी गुरू अस्त हो जायेगा। वही गुरू एक राशि में भी सूर्य से 11 अंश से अधिक अन्तर पर हो तो अस्त तो नहीं होगा, किन्तु गुर्वादित्य दोष होगा। यथा दैवज्ञा प. सीताराम झा जी लिखते है

एकराशिगतौ स्यातां देवाचार्य–दिनेश्वरौ।
गुर्वादित्यः स विज्ञेयः स तु गुर्वस्तवत् स्मृतः।। इति।।

एवमेव मुहूर्तचिन्तामणौ –

अस्ते वर्ज्य सिंहनक्रस्थजीवे वर्ज्य केचिद् वक्रगे चातिचारे।
गुर्वादित्ये विश्वघस्रेऽपि पक्षे प्रोचुस्तद्वद्दन्तरत्नादिभूषाम्।। इति।।

3.5.5 विश्वघस्र दोष

गुर्वादित्य की तरह विश्वघस्र को भी शास्त्रकारों ने त्याज्य बतलाया है। यहाँ उपर्युक्त श्लोक में आप देख सकते हैं कि आचार्य रामदैवज्ञ ने गुर्वादित्य के साथ साथ विश्वघस्र का भी नाम लिया है। विश्वघस्र उस पदा को कहते हैं जिस पक्ष में दो तिथियों का क्षय हो। विश्वघस्र पक्ष को उपनयन विवाह आदि शुभकर्मों में गर्हित बतलाये हुये आचार्य चण्डेश्वर कहते है –

त्रयोदशदिने पक्षे विवाहादि न कारयेत्।

गर्गादिमुनयः प्राहुः कृते मृत्युस्तदा भवेत्।

अपि च –

उपनयनं परिणयनं वेश्मारम्भादि पुण्यकर्माणि।

यात्रां द्विक्षयपक्षे कुर्यान्न जिजीविषुः पुरूषः।। इति।।

3.5.6 हरिशयन आदि अन्य त्याज्य समय

आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त भगवान् विष्णु शयन में होते हैं। और हरिशयन की अवधि को शास्त्रकारों ने चूडाकरण आदि शुभकृत्य/संस्कार के लिये सामान्यतया त्याज्य माना है। अतः आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त (मार्गशीर्ष आदि कतिपय मासों को कतिपय शुभकर्मों में छोड़कर) चूडाकरण आदि शुभकृत्य के लिये मुहूर्त नहीं करना चाहिये।

इस तरह हरिशयन की भाँति संक्रान्ति, मासान्त, मन्वादि, युगादि, प्रदोष, अनाध्याय ये सब मुहूर्त निर्धारण में ज्ञातव्य चीतें हैं। यद्यपि इन सब कार परिचयात्मक विवेचन इसी खण्ड के प्रथम इकाई में किया जा चुका है, किन्तु आपकी सुविधा की दृष्टि से यहाँ भी लिखा जा रहा है।

मन्वादि – मन्वन्तर चौदह है। अतः मन्वादि तिथियाँ भी चौदह कहे गये है। यथा–चैत्रशुक्ल की तृतीया एवं पूर्णिमा, कार्तिकशुक्ल की पूर्णिमा एवं द्वादशी, आषाढ़शुक्ल की दशमी एवं पूर्णिमा, ज्येष्ठशुक्ल एवं फाल्गुन की पूर्णिमा, आश्विनशुक्ल की नवमी, माघशुक्ल सप्तमी, पौषशुक्ल एकादशी, भाद्रपदशुक्ल तृतीया एवं श्रावण कृष्ण की अमावस्या तथा अष्टमी ये 14 तिथियाँ मन्वादि तिथियाँ हैं। यहाँ किस तिथि को कौन मन्वादि प्रारम्भ होता है इसक स्पष्ट विवरण नीचे सारिणी में देखें।

क्र. सं.	मनु के नाम	प्रारम्भ तिथियाँ	क्र. सं.	मनु के नाम	प्रारम्भ तिथियाँ
1	स्वायम्भुव	चैत्रशुक्ल तृतीया	8	सावर्णि	फाल्गुनशुक्ल पूर्णिमा
2	स्वारोचिष	चैत्रशुक्ल पूर्णिमा	9	दक्षसावर्णि	आश्विनशुक्ल नवमी
3	औत्तम	कार्तिकशुक्ल पूर्णिमा	10	ब्रह्मसावर्णि	माघशुक्ल सप्तमी
4	तमस	कार्तिकशुक्ल द्वादशी	11	धर्मसावर्णि	पौषशुक्ल एकादशी
5	रैवत	आषाढ़शुक्ल दशमी	12	रुद्रसावर्णि	भाद्रपदशुक्ल तृतीया
6	चाक्षुष	आषाढ़शुक्ल पूर्णिमा	13	इन्द्रसावर्णि	श्रावणकृष्ण अमावस्या
7	वैवस्वत	ज्येष्ठशुक्ल पूर्णिम	14	दैवसावर्णि	श्रावणकृष्ण अष्टमी

युगादि – युगादि तिथियाँ चार है। कार्तिकशुक्ल नवमी सत्ययुगादि तिथि है। वैशाखशुक्ल तृतीया त्रेतायुगादि तिथि है। भाद्रकृष्ण त्रयोदशी द्वापरयुगादि तिथि है। तथा माघकृष्ण अमावस्या कलियुगादि तिथि है।

युगादिबोधक सारणी

क्र. सं.	युगादि का नाम	आरम्भ तिथि
1	सत्ययुगादि	कार्तिकशुक्ल नवमी
2	त्रेतायुगादि	वैशाखशुक्ल तृतीया
3	द्वापरयुगादि	भाद्रकृष्ण त्रयोदशी
4	कलियुगादि	मघकृष्ण अमावस्या

प्रदोष – तृतीया तिथि में यदि एक प्रहर रात्रि के भीतर चतुर्थी तिथि हो तो प्रदोष कहलाता है।

षष्ठी तिथि में यदि डेढ़ प्रहर रात्रि के भीतर सप्तमी तिथि हो तो प्रदोष कहलाता है।

द्वादषी तिथि में यदि मध्य रात्रि के भीतर त्रयोदषी तिथि हो तो प्रदोष कहलाता है।

नोट – चूँकि चार प्रहर का दिन तथा चार प्रहर की रात्रि होती है। अतः दिन या रात्रि के चतुर्थ भाग को प्रहर कहते हैं। इसलिये आप यदि दिनमान को चार से भागा देंगे तो दिन के एक प्रहर का मान हो जायेगा। तथा रात्रिमान को चार से भागा देंगे तो रात्रि के एक प्रहर का मान हो जायेगा।

अनध्याय – ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की द्वितीया, पौष शुक्ल पक्ष की एकादशी, माघ, शुक्ल की द्वादशी, आषाढ़ शुक्ल पक्ष की दशमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, प्रतिपदा, अष्टमी और संक्रान्ति ये सब व्रतबन्ध में अनध्याय हैं।

अभ्यास प्रश्न

30. गुर्वादिय योग कब होता है?

31. विश्वघस्र उस पक्ष को कहते हैं जिस पक्ष में .... क्षय हो। खाली स्थान को भरें।

32. आचार्य चण्डेश्वर के अनुसार विश्वघस्र पक्ष का उपनयन विवाह आदि शुभ्कर्मों में गर्हित है या शुभ?

3.6 सारांश

आपनें उपर्युक्त विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर लिया है। अब संक्षेप में उन विषयों को इस प्रकार ध्यान में रखें।

1. सर्वदोषनिवारक लग्नशुद्धि – जन्मराशि से 3 |6 |10 |11 वीं राशि लग्न हो और लग्न से 8 |12 वें स्थान में कोई ग्रह नहीं हो तथा लग्न पर शुभग्रहों की दृष्टि अथवा योग हो, चन्द्रमा 3 |6 |10 |11 में हो तो वह समय सभी कार्यों के लिये प्रशस्त होता है। अर्थात् ऐसे लग्न में कार्य आरम्भ करने से निश्चित रूप से शुभ फल ही होते हैं।

पुनश्च – जन्म राशि से लग्न यदि 3 |6 |10 |11 वीं राशि हो तो श्रेष्ठ, 8 |12 वीं राशि हो तो नेष्ट तथा अन्य (1 |2 |5 |7 |9) रशि हो तो मध्यम होती है।

2. चूडाकरण में लग्नशुद्धि – आचार्य रामाचार्य कहते हैं कि चूडाकरण उस समय करना चाहिये जब, वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु या मीन लग्न हो। वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु या मीन लग्न का नवांश हो। जन्मराशि या जन्म लग्न से आठवीं राशि का लग्न

नहीं हो। लग्न से आठवें स्थान में कोई शुभग्रह या पापग्रह न हो। (पराशर मुनि के मत में अष्टम में शुक्र की स्थिति अशुभ नहीं होती है) लग्न से 3 |6 |11 स्थानों में पापग्रह (सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु) हो। चूडाकरणकालिक लग्न से केन्द्र (1 |4 |7 |10) में क्षीण चन्द्रमा, मंगल, शनि एवं सूर्य नहीं हो। चूडाकरणकालिक लग्न से केन्द्र (1 |4 |7 |10) में बुध, गुरू एवं शुक्र विद्यमान हो। चूडाकरणकालिक नक्षत्र से 2 |4 |6 |8 |9 वीं तारा हो।

किन्तु दुष्ट तारा होने पर भी मुण्डन शुभ होता है यदि – चूडाकरणकालिक लग्न से चन्द्रमा त्रिकोण (5 |9) में हो। या चन्द्रमा अपनी उच्च (वृष) राशि में हो। या चन्द्रमा शुभग्रह (गुरू, शुक्र) के घर में हो। या चन्द्रमा अपने मित्र (सूर्य, बुध) के वर्ग में हो। या चन्द्रमा अपने ही वर्ग में हो। अथवा चन्द्रमा गोचर में शुभस्थान में हो और शुभग्रह की राशि में हो।

3. अक्षरारम्भ में लग्नशुद्धि – अक्षरारम्भ तब करना चाहिये जब वृष, मिथुन, कन्या, धनु या मीन लग्न हो। या वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन का नवांश हो। अक्षरारम्भ कालिक लग्न से अष्टम शुद्ध (अष्टम में कोई ग्रह नहीं) हो। अक्षरारम्भ के समय कुम्भ का नवांश नहीं हो। अक्षरारम्भ कालिक लग्न से सप्तम में बुध, दसवें में गुरू तथा लग्न में शुक्र हो। लग्न बली हो।

4. विद्यमान में लग्नशुद्धि – विद्यारम्भ तब करना चाहिये जब वृष, मिथुन, कन्या, धनु या मीन लग्न हो। वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन का नवांश हो। विद्यारम्भकालिक लग्न से अष्टम शुद्ध हो। विद्यारम्भकालिक लग्न से केन्द्र (1 |4 |7 |10) एवं त्रिकोण (9 |5) में शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरू, शुक्र) हों। विद्यारम्भकालिक लग्न से उपचय (3 |6 |11) में पापग्रह हों।

5. उपनयन में लग्नशुद्धि

बलक का उपनयन ऐसे लग्न में करना चाहिये जब, उपनयनकालिक लग्न से 6 |8 |12 स्थानों शुभग्रह नहीं हो। उपनयनकालिक लग्न से उपाय (3 |6 |11) में पापग्रह हों। उपनयन के समय शुक्लपक्ष का चन्द्रमा वृष राशि या कर्क राशि का होकर लग्न में स्थित हो।

उपनयन ऐसे समय में निश्चित करना चाहिये जब – उपनयनलग्न से छठे और आठवें स्थान में चन्द्र, गुरू एवं शुक्र स्थित होकर लग्न का स्वामी न हो। बारहवें स्थान मे चन्द्रमा और शुक्र न हो।

लग्न से आठवें एवं पाँचवें स्थान में पापग्रह न हो।

6. विवाह में लग्नशुद्धि – विवाह ऐसे लग्न में करना चाहिये जब वृष, मिथुन, कन्या, तुला, धनु या मीन लग्न हो। शुभग्रह विवाहलग्न से 1 |4 |5 |7 |9 |10 स्थानों में स्थित हो। विवाहकालिक लग्न से 1 |4 |5 |7 |9 |10 स्थानों में यदि गुरू या शुक्र स्थित हों तो समग्र दोष नष्ट हो जाते हैं। पापग्रह विवाहलग्न से 3 |6 |11 में स्थित हो।

7. गुरू शुक्रास्त दोष निर्णय – ग्रह जब सूर्य के निकट चला जाता है तब 'अस्त' कहलाता है। अस्त से पूर्व ग्रह क्षीणरश्मि होने के कारण 'वृद्ध' कहलाता है, तथा अस्त के बाद वह ग्रह क्षीण प्रकाशवान् होने के कारण 'बाल कहलाता है। गुरू, शुक्र के वार्द्धक्य, बाल्य और

अस्त के समय उपनयन, यज्ञ, विवाह, वधूप्रवेश, द्विरागमन आदि मंगल कार्य नहीं करना चाहिये।

चन्द्रादि ग्रहों के कालांश क्रमशः 12, 17, 14, 11, 10, 15 हैं तथा बुध एवं शुक्र के वक्र कालांश क्रमशः 12, 8 हैं।

8. गुरू शुक्र के बाल्य एवं वार्धक्य – शुक्र पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं में उदय और अस्त होते हैं। किन्तु गुरू केवल पश्चिम दिशा में अस्त एवं पूर्व दिशा में उदित होता है। शुक्र के पूर्व दिशा में उदय होने के बाद 3 दिन तक तथा पश्चिम में उदय होने के बाद 10 दिन तक बाल्य रहता है। शुक्र के पूर्व दिशा में अस्त होने के पूर्व 15 दिन तथा पश्चिम दिशा में अस्त होने से पहले 5 दिन वार्धक्य रहता है। गुरू के अस्त से पहले 15 दिन वार्धक्य तथा उदय के बाद 15 दिन बाल्य रहता है।

मतान्तर – कुछ ऋषियों ने गुरू एवं शुक्र दोनों के 10 दिन बाल्य और 10 दिन वार्धक्य कहे हैं। कुछ मुनियों ने दोनों के 7 दिन बाल्य और 7 दिन वार्धक्य कहे हैं। कई आचार्यों ने तो अत्यन्त आवश्यक कार्य में केवल 3 दिन बाल्य एवं 3 दिन वार्धक्य कहा है।

संहिता प्रदीप में तो दोनों का 7 दिन बाल्य और 10 दिन वार्धक्य कहा गया है। यहाँ शुभ कर्मों में वार्धक्य को तो त्याज्य बतलाया है किन्तु बाल्यावस्था को त्याज्य नहीं माना है। क्योंकि बाल्यावस्था में वे दोनों (गुरू और शुक्र) उपचीयमान रहते हैं।

कुछ आचार्यों का मत हैं कि गुरू, शुक्र एवं चन्द्र ये तीनों अथवा इनमें से दो उदित हों तो शुभ कर्म करना चाहिये, कुछ आचार्यों का मत हैं कि कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से सप्तमी पर्यन्त और शुक्लपक्ष में द्वितीया से पूर्णिमा पर्यन्त यदि गुरू और शुक्र में केवल एक अस्त हो तो शुभकर्म कर लेना चाहिये।

जिस समय चन्द्र, गुरू, शुक्र ये तीनों पुष्टरश्मि हों और शनि तथा मंगल ये नष्ट (अस्त, क्षीण किरण) हों तो वह समय अत्यन्त शुभ होता है। यदि स्थिति इसके विपरीत हो अर्थात् मंगल, शनि ये पुष्ट हों तथा चन्द्र, गुरू, शुक्र ये तीनों अस्त हों तो वह समय अत्यन्त अशुद्ध होता है।

किन्तु महर्षि गर्ग के अनुसार शुक्र और गुरू के अस्त से पूर्व एवं पश्चात् विन्ध्यक्षेत्र मे दस दस दिन, उज्जयिनी (मालवा) क्षेत्र में सात सात दिन, बङ्गप्रदेश में छः छः दिन, हूणदोश में पाँच पाँच दिन तथा बाकी देशों में तीन तीन दिन शुभ कार्य नहीं करना चाहिये।

9. अतिचारविचार – गुरू अतिचार हो जायें और वक्री होकर पुनः वह पूर्व राशि में लौट आवे तो लघ्वतिचार होता है। यहाँ वक्री होने के बाद पुनः मार्गी होकर गुरू जब उस पूर्व राशि का परित्याग करता है उस समय तक यदि संवत्सरान्त हो जाय तो 28 दिनों तक त्याज्य होता है। किन्तु वक्री होने के बाद पुनः मार्ग गति से गुरू के राशित्याग के समय यदि संवत्सरान्त नहीं हुआ हो अर्थात् अगली राशि में जाने के बाद संवत्सरान्त हो तो 45 दिन तक विवाहादि शुभकार्यों के लिये त्याज्य कहा गया है।

अतिचार करके गुरू जिस राशि में जायें उस राशि से फिर वापस होकर पूर्व राशि में नहीं आवें तो महातिचार होता है। यह महातिचार शुभकार्यों में त्याज्य कहा गया है। महातिचार को ही आचार्यों ने लुप्तसंवत्सर भी कहा है। इस महातिचार में कुछ आचार्यों ने 45 दिन को त्याज्य माना है। कुछ आचार्यों ने लुप्त सैंवत्सर होने पर समस्त वर्ष को त्याज्य माना है।

किन्तु कुछ आचार्यों का ऐसा कहना है–लघ्वतिचार में तो दोष ही नहीं होना चाहिये। यदि हो भी तो द्वितीय प्रकाश के लघ्वतिचार में 28 दिन तथा महातिचार में अधिक से अधिक तीन पक्ष (45 दिन) त्याज्य मानना चाहिये। महर्षि शौनक ने तो अतिचारमात्र में केवल 28 दिन त्याज्य कहा है।

लुप्तसंवत्सर दोष का अपवाद – रामाचार्य कहते हैं, वृष, मेष, मीन एवं कुम्भ इन चार राशियों को छोड़कर अन्य राशियों में स्थित गुरू अतिचरण करके अगली राशि में चले जायें किन्तु पुनः वक्रगति से पूर्व राशि में नहीं आवें तो वह संवत्सर विलुप्ताब्द होता है। यह विलुप्ताब्द नर्मदा एवं गंगा के मध्यवर्ती प्रदेशों में शुभकार्यों में अतिनिन्दित कहा गया है।

इसी तरह मेष, वृष, कुम्भ और मीन इन चार राशियों में स्थित गुरू का अतिचरण होने पर भी लुप्ताब्द दोष नहीं होता है।

सारसागर कहते हैं कि धनु, कर्क एवं मीन राशि में स्थित गुरू के अतिचरण करने पर लुप्तसंवत्सर अतिशयेन शुभ कर्मों में त्याज्य होता है।

10. सिंहस्थ गुरू दोष – उद्यान, चूडाकरण, यज्ञोपवीत, दीक्षाग्रहण, विवाह, विशेष यात्रा वधूप्रवेश, तालाव, कूप, देवप्रतिष्ठा इत्यादि शुभकार्य सिंहस्थ गुरू के समय नहीं करना चाहिये। किन्तु यह सिंहस्थ गुरू नियतकालिक कर्म में दोषावह नहीं कहा गया है। शाड्र्गीय में कहते हैं कि सीमन्तकर्म, जातकर्मसंस्कार आदि तथा अन्नप्राशन आदि ऐसे संस्कार जो एक निश्चित समय के भीतर करना होता है, वे सभी संस्कार सिंहस्थ गुरू के समय भी करना चाहिये।

सिंहस्थगुरू के तीन प्रकार से परिहार – 1. सिंह राशि में सिंह के नवांश को छोड़कर अवशिष्ट अंशों में गुरू के रहने पर भी विवाहादि शुभ कार्य किया जा सकता। 2. गोदावरी के उत्तर और गंगा के दक्षिण (दोनों के बीच) में स्थित देशों में ही सिंहस्थ गुरू का दोष होता है। अन्य देशों में नहीं। 3. सिंहस्थ गुरू के समय जब सूर्य मेष राशि में होता है तब सिंहस्थगुरूजन्यदोष नहीं होता है। अर्थात् सूर्य के मेष राशि में रहने पर सिंहस्थगुरूजन्य दोष गंगा – गोदावरी के मध्यवर्ती देश में भी नहीं होता है।

परिस्थितिविशेष में सिंहस्थ गुरू का दोषाभाव – शानकीय पटल में तो ऐसा भी कहा गया है कि जब सुयोग्य वर मिल जाय, या कन्या का विवाह समय बीत रहा हो या बीत गया हो या देश में दुर्भिक्ष का सड्कट हो तब सिंहस्थ गुरू के समय भी विवाह शुभकारक ही होता है।

11. मकरस्थ गुरू दोष – दैवज्ञ रामाचार्य जी लिखते हैं गुरू के अस्त में जो कार्य वर्जित

कहा गया है वे सभी कार्य सिंहस्थ एवं मकरस्थ गुरू के समय भी वर्जित समझना चाहिये।
देशभेद से मकरस्थ गुरू का परिहार – नर्मदा नदी से पूर्व तथा गण्डकी नदी से पश्चिम, शोणभद्र से दक्षिण और उत्तर दोनों तरफ के देशों से मकर राशि का बृहस्पति वर्जित नहीं है। वह मकर राशि का बृहस्पति कौकण, मागध, गौड एवं सिन्धु देशों में वर्जित है। किन्तु मतान्तर से मगध देश में ही मकरस्थ गुरू का दोष बतलाया है।
अंशभेद से मकरस्थ गुरू का परिहार – गुरू मकर राशि में मकर के नवांश में जब तक रहें तभी तक शुभ कर्मों को नहीं करना चाहिये। किन्तु कुछ वचन तो ऐसे भी हैं जिनमें मकर राशिस्थ गुरू के केवल नीचांश को दोषावह कहा गया है। किसी ने मकर राशि में आरम्भ से पाँच अंश तक स्थित गुरू को त्याज्य माना है। इसके अनुसार मकरस्थ गुरू का दोष 60 दिन तक बतलाया गया है। टोडरानन्द में तो मकर में बृहस्पति के प्रवेश से केवल एक मास वर्जित कहा है। किसी ने तो मकरस्थ गुरू का कोई भी अंश अथवा किसी भी देश के लिये दोषावह नहीं बतलाया है।
12. गुर्वादित्य योग – गुरू और शुक्र का एक राशि में रहना गुर्वादित्य योग कहलाता है। गुर्वादित्य योग को भी ऋषियों ने अस्त की तरह ही शुभकृत्यों में वर्जित कहा है।
13. विश्वघस्र दोष – विश्वघस्र उस पक्ष को कहते हैं जिस पक्ष में दो तिथियों का क्षय हो। विश्वघस्र पक्ष को उपनयन विवाह आदि शुभकर्मों में गर्हित होता है।
14. हरिशयन आदि की त्याज्यता – आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त भगवान् विष्णु शयन में होते हैं। हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, मन्वादि, युगादि, प्रदोष, अनाध्याय ये सब मुहूर्तनिर्धारण में ज्ञातव्य चीजें हैं।

3.7 शब्दावली

1. जीवः = गुरूः। 2. व्यय = द्वादशः। 3. त्रिशड्दशायः = 3 |6 |10 |11। 4. नवांशः = एकराशेः नवमः भागः = 3 |20 अंशादिः। 5. अक्षरारम्भः = बालक को प्रथमतया लिपि सिखाना।
6. विद्यारम्भ = प्रथमतया किसी विद्या यानी शास्त्र विशेष का प्रारम्भ करना। 7. उपनयनम् = यज्ञोपवीत संस्कार = व्रतबन्धः।
8. अस्त होना = ग्रह जब सूर्य के निकट चला जाता है तब ग्रह लुप्तकिरण (तेजोविहीन) होने के कारण 'अस्त' कहलाता है।
9. वृद्ध (वार्धक्य) होना = अस्त से पूर्व ग्रह क्षीणरश्मि होने के कारण 'वृद्ध' कहलाता है।
10. बाल होना = अस्त के बाद (उदय होने पर) ग्रह क्षीण प्रकाशवान् होने के कारण 'बाल' कहलाता है।
11. कालांश = ग्रह सूर्य से जितने अंश की दूरी अस्त या उदित होता है उसी अंशात्मक दूरी को कालांश कहते हैं।
12. पुर = पहले। पश्चात् = बाद में। 13. भृगुः = शुक्रः। 14. पंचदिनं = पाँचदिन। 15. दशाहं = दस दिन। 16. आत्ययिके = अत्यावश्यक कार्य में। 17. विधो = चन्द्रमा का। 18.

सितेज्यौ = शुक्र एवं गुरू। 19. शशाङ्क = चन्द्रमा। 20. पुष्टतनु = सबल। 21. क्षीण = निर्बल। 22. अनर्ह = त्याज्यः। 23. परत = बाद में। 24. अवन्ती = उज्जयिनी। 25. बङ्ग = बंगाल।

26 = हूणदेश = सम्प्रति चीन का उत्तरी भाग जो मैगोलिया के नाम से प्रसिद्ध है, जहाँ का उत्तर अक्षांश 50 है, उसी का प्राचीन नाम हूण है।

27 = अतिचारः (अतीचार) = मध्यमगति का उल्लंघन करके यदि कोई ग्रह नियत समय से पहले ही अग्रिम राशि में संक्रमण करें तो वह ग्रह अतिचारगत कहलाता है।

28. संवत्सरं = मध्यमगति से गुरू के एक राशि भोग काल को एक संवत्सर कहते है। इसे ही शुद्ध सैंवत्सर कहते हैं। अथवा गुरूनिष्ठ प्रत्येक मेषादि राशि में उक्त बार्हस्पत्य वर्ष का अवसान होने से शुद्ध सैंवत्सर होते हैं।

29. लुप्ताब्द = जिस जीवाश्रित राशि में बार्हस्पत्य वर्ष का अवसान नहीं होता है वह वर्ष लुप्तसंवत्सर कहलाता है।

30. अधिवत्सर = जिस जिवाश्रित राशि में दो बार्हस्पत्य वर्ष का अवसान होता है वह बार्हस्पत्य वर्ष अधिवत्सर कहलाता है।

31. लघ्वतिचार = गुरू यदि प्रभवादिसंवत्सरान्त से पहले ही पूर्व राशि को छोड़कर अग्रिम राशि में प्रवेश करें तथा वक्र गति से पुनः पूर्व राशि में लौट आवे तो उसे लघ्वतिचार कहते हैं।

32. महातिचारः– अतिचार करके गुरू जिस राशि में जायें उस राशि से फिर वापस होकर (वक्री होकर) पूर्व राशि में नहीं आवें तो महातिचार होता है। महातिचार को ही आचार्यों ने लुप्तसंवत्सर भी कहा है। 33. झषः = मीन। सोमोद्भवा = नर्मदा 34. सुरनिम्नगा = गंगा। 35. त्रिदशप्रतिष्ठा = देवप्रतिष्ठा। 36. सीमन्तः = सीमन्तकर्म। 37. जातकादीनि = जातकर्म आदि संस्कार। 38. प्राशन = अन्नप्राशन। 39. पंचानन = सिंह। 40. वाक्पतिः = गुरू। 41. साध्वी = सुहागन स्त्री। 42. भागीरथी = गंगा। 43. देवपतिपूज्यः = बृहस्पति। 44. कूल = किनारा = तट। 45. गौतमी = गोदावरी। 46. इज्यः = वाक्पतिः = गुरू = सुरमन्त्री। 47. तपनः = सूर्य। 48. परिणीता = विवाहिता। 49. सिंहलवः = सिंह का नवांश। 50. नेष्टः = अशुभ। 51. अङ्घि = चरण। 52. नेष्टः = अशुभ। 53. गुर्जरः = गुजरात। 54. अतकालः = समयातिरेक। 55. नक्रः = मकरराशि।

56. गुर्वादित्यः = गुरू और सूर्य का एक राशि में होना गुर्वादित्य कहलाता है।

57. विश्वघस्र = तेरह तिथि का पक्ष। 58. रेवा = नर्मदा नदी। 59. गण्डकी = गण्डकी नदी। 60. शोण = शोणनदी।

61. कौड्कणः = दक्षिण भारत का एक भाग विशेष है जो सम्प्रति कनारा, रत्नागिरी, कोलाबा, मुम्बई तथा थाना आदि प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध है।

62. कोंकण = प्राचीन काल में केरल, तुलव, सौराष्ट्र, कोंकण, करहाट, करनाट, और वर्वर मिलकर सप्त–कोंकण कहलाते थे।

63. मागधः = मागध प्रदेश उत्तर प्रदेश और बिहार का एक भाग विशेष है जो सम्प्रति काशी की गंगा की पूर्वी छोड़ से लेकर दक्षिण बिहार का प्राचीन आरा, गया आदि जिले तक व्याप्त है।
64. गौडः = गौडदेश सम्प्रति मध्य बंगाल एवं उड़ीसा के रूप में व्यवस्थित है।
65. सिन्धुः = कच्छ और बहालपुर–वेला स्थान जो सम्प्रति मुम्बई के नाम से प्रसिद्ध है, अभिप्रेत है।
66. कीटक = मध्य बंगाल को ही प्राचीन काल में कीटक के नाम से जाना जाता था।
67. वागीषः = गुरू। 68. देव्ज्ञाच्ज्ञग्रः = गुरूः। 69. दिनेश्वरः = सूर्य। 70. वेश्म = गृह। 71. जिजीविषुः = जीने की इच्छा बाला।
72. हरिशन = आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिकशुक्ल एकादशी पर्यन्त के समय को हरिशयन कहते हैं।
73. मन्वन्तर = 71 महायुग का एक मन्वतर होता है। मन्वन्तर चौदह है।
74. मन्वादितिथि = मन्वन्तर चौदह है। उन चौदहों मन्वन्तर की चौदह तिथियाँ मन्वन्तर तिथियाँ कहलाती है।
75. स्वायम्भुल मन्वन्तर = चैत्रशुक्ल तृतीया। 76. स्वारोचिष मन्वन्तर = चैत्रशुक्ल पूर्णिमा। 77. औत्तम मन्वन्तर = कार्तिकशुक्ल पूर्णिमा। 78. तामस मन्वन्तर = कार्तिकशुक्ल द्वादशी। 79. रैवत मन्वन्तर = आषाढ़शुक्ल दशमी। 80. चाक्षुश मन्वन्तर = आषाढ़शुक्ल पूर्णिमा। 81. वैवस्वत मन्वन्तर = ज्येष्ठशुक्ल पूर्णिमा। 82. सावर्णि मन्वन्तर = फाल्गुनशुक्ल पूर्णिमा। 83. दक्षसावर्णि मन्वन्तर = आश्विनशुक्ल नवमी। 84. ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर = माघशुक्ल सप्तमी। 85. धर्मसावर्णि मन्वन्तर = पौषशुक्ल एकादशी। 86. रुद्रसावर्णि मन्वन्तर = भाद्रपदशुक्ल तृतीया। 87. इन्द्रसावर्णि मन्वन्तर = श्रावणकृष्ण अमावस्या। 88. दैवसावर्णि मन्वन्तर = श्रावणकृष्ण अष्टमी। 89. सत्ययुगादि मन्वन्तर = कार्तिकशुक्ल नवमी। 90. त्रेतायुगादि मन्वन्तर = वैशाखशुक्ल तृतीया। 91. द्वापरयुगादि मन्वन्तर = भाद्रकृष्ण त्रयोदशी। 92. कलियुगादि मन्वन्तर = माघकृष्ण अमावस्या।। इति।।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. जन्मराशि से 3।6।10।11 वीं राशि लग्न हो और लग्न से 8।12 वें स्थान में कोई ग्रह नहीं हो तथा लग्न पर शुभग्रहों की दृष्टि अथवा योग हो, चन्द्रमा 3।6।10।11 में हो तो वह समय सभी कार्यों के लिये प्रशस्त होता है।
2. वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु या मीन लग्न हो तो चूडाकरण करना चाहिये।
3. पराशर मुनि के मत में अष्टम में शुक्र की स्थिति अशुभ नहीं होती है।
4. चूडाकरणकालिक नक्षत्र से 2।4।6।8।9 वीं तारा प्रशस्त होती है।
5. चूडाकरणकालिक लग्न से चन्द्रमा 5 एवं 9 में हो तो दुष्ट तारा होने पर भी मुण्डन शुभ होता है।
6. चन्द्रमा सूर्य एवं बुध के वर्ग में हो तो दुष्ट तारा होने पर भी मुण्डन शुभ होता है।

7. चन्द्रमा गोचर में शुभस्थान में हो तो शुभग्रह की राशि में रहने पर दुष्ट ताराजन्य दोष नहीं होता है।
8. वृष, मिथुन, कन्या, धनु या मीन लग्नों में अक्षरारम्भ करना चाहिये।
9. अक्षरारम्भ कालिक लग्न से सप्तम में बुध, दसवें में गुरू तथा लग्न में शुक्र हो तो प्रशस्त होता है।
10. अक्षरारम्भ के समय कुम्भ का नवांश प्रशस्त नहीं होता है।
11. विद्यारम्भकालिक लग्न से अष्टम में कोई ग्रह नहीं हो तो विद्यारम्भ तब करना चाहिये।
12. विद्यारम्भकालिक लग्न से उपचय में पापग्रह का होना शुभ होता है?
13. उपनयनकालिक लग्न से 6 |8 |12 स्थानों शुभग्रह नहीं हों तो बालक का उपनयन करना चाहिये।
14. उपनयन के समय शुक्लपक्ष का चन्द्रमा वृष राशि या कर्क राशि का होकर लग्न में स्थित हो तो शुभ होता है।
15. विवाहलग्न से 1 |4 |5 |7 |9 |10 स्थानों में शुभग्रह का होना अच्छा होता है।
16. पापग्रह विवाहलग्न से 3 |6 |11 में स्थित हों तो अच्छा होता है।
17. ग्रह जब सूर्य के निकट चला जाता है तब वह तेजोविहीन होने के कारण 'अस्त' कहलाता है।
18. अस्त से पूर्व ग्रह क्षीणरश्मि होने के कारण 'वृद्ध' कहलाता है।
19. गुरू के कालांश 11 तथा शुक्र के वक्र कालांश 8 हैं।
20. संहिता प्रदीप में गुरू एवं शुक्र के 7 दिन बाल्य और 10 दिन वार्धक्य कहा गया है।
21. गुरू मध्यम गति से 361 |2 |4 |45 इतने सावन दिनादि में एक राशि का भोग कर लेता है।
22. अतिचार करके गुरू जिस राशि में जायें उस राशि से फिर वापस होकर (वक्री होकर) पूर्व राशि में नहीं आवें तो महातिचार होता है।
23. रामाचार्य के मत में विलुप्ताब्द को रेवा (नर्मदा) एवं गंगा के मध्यवर्ती प्रदेशों में शुभकार्यों में अतिनिन्दित कहा गया है।
24. शुभ कृत्यों में सिंह राशि में सिंह के नवांश को त्याज्य बतलाया गया है।
25. वसिष्ठ एवं लल्ल के मत में गोदावरी के उत्तर और गंगा के दक्षिण (दोनों के बीच) में स्थित देशों में ही सिंहस्थ गुरू का दोष होता है।
26. रेवा (नर्मदा) नदी से पूर्व तथा गण्डकी नदी से पश्चिम, शोणभद्र (सोनभद्र) से दक्षिण और उत्तर दोनों तरफ के देशों में नीच (मकर) राशि का बृहस्पति वर्जित नहीं है।
27. नीच (मकर) राशि का बृहस्पति कौंकण, मागध, गौड एवं सिन्धु देशों में वर्जित है।
28. आचार्य चण्डेश्वर के अनुसार मकर राशि में पाँचवें अंश पर गुरू जब तक रहते हैं तभी तक शुभ कर्म के लिये त्याज्य समझना चाहिये।
29. टोडरानन्द के अनुसार मकर में बृहस्पति के प्रवेश से केवल एक मास वर्जित कहा है।

30. एक राशि में गुरू और शुक्र के होने से गुर्वादिय योग होता है।
31. विश्वघस्र उस पक्ष को कहते हैं जिस पक्ष में दो तिथियों का क्षय हो।
32. आचार्य चण्डेश्वर के अनुसार विश्वघस्र पक्ष उपनयन विवाह आदि शुभकर्मों में गर्हित है।

3.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मुहूर्तचिन्तामणि – शुभाशुभप्रकरण, नक्षत्रप्रकरण, संस्कारप्रकरण, संक्रान्तिप्रकरण, गोचरप्रकरण।
2. मुहूर्तमार्तण्ड – नक्षत्रप्रकरण, संस्कारप्रकरण आदि।
3. मुहूर्तपारिजात – परिचयप्रकाण्ड, संस्कारप्रकाण्ड आदि।
4. मुहूर्तप्रकाश – संज्ञाप्रकरण, त्याज्यप्रकरण, संस्कारप्रकरण आदि।
5. भारतीय कुण्डलीविज्ञान, मीठालाल हिम्मतराम ओझा – कुण्डलीविज्ञान भाग–1।
6. बृहज्जातक – अष्टकवर्ग। इत्यादि।
7. मुहूर्तचिन्तामणि, (प्रमिताक्षराटीका)।
8. मुहूर्तचिन्तामणि, (पीयूषधारा / मणिप्रभाटीका)।
9. अतिचार विचार।
10. सिद्धान्तशिरोमणि।
11. सूर्यसिद्धान्त।
12. समयशुद्धिविवेक, आदि।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चूडाकरण एवं विद्यारम्भ में लग्नशुद्धि विचार को स्पष्ट करें।
2. उपनयन में लग्नशुद्धि विचार लिखें।
3. विवाह में लग्नशुद्धि विचार को लिखें।
4. समयशुद्धि के लिये मुख्य विचारणीय बिन्दुओं का संकेत करते हुये बार्हस्पत्य संवत्सर का परिचय लिखें।
5. अतिचार विचार संक्षेप में लिखें
6. सिंहस्थ एवं मकरस्थ गुरू की त्याज्यात्याज्यता को स्पष्ट करें।

खण्ड – तीन

गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश

इकाई – 1 नींव खोदने एवं गृहारम्भ का मुहूर्त

1.1 प्रस्तावना

भारतीय मुहूर्त शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह प्रथम इकाई है। इससे पहले के खण्डों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि मुहूर्त क्या है? इनकी मानव जीवन में क्या आवश्यकता है? मुहूर्तों में किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? मुहूर्त में लग्नशुद्धि, गुरू–शुक्रादि के उदयास्त एवं देवशयनादि का किस प्रकार विचार करना चाहिए? आदि।

नींव खोदना एवं उसके पश्चात् गृह के निर्माण कार्य का आरम्भ करना, भारतीय वास्तुशास्त्र की दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। इस कार्य को शुभ मुहूर्त में करने से गृहनिर्माण शुभफलदायी, विघ्न–बाधारहित एवं गृहनिवासियों के लिए सुख व शान्तिकारक होता है। अतः नींव खोदने एवं गृहारम्भ के लिए शुभ मुहूर्तों के महत्व को जानते हुए हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों एवं आचार्यों ने इस विषय में गहन चिन्तन एवं खोज के बाद अपने अनुभव के आधार पर मुहूर्त शोधन के विषय में चर्चा की हैं कि इसके लिए कौन–कौन सी तिथियां, नक्षत्र, योग, करण, लग्नादि शुभ हैं तथा इस विषय में अन्य किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। प्रस्तुत इकाई में विस्तार से मुहूर्तशोधन के विभिन्न आयामों के बारे में विभिन्न विचार एवं मतों का विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नींव खोदने एवं गृहारम्भ मुहूर्त के विषय को समझा सकेंगे। साथ ही प्राचीन ऋषि मुनियों एवं आचार्यों के मन्तव्यों को जानकर मुहूर्त शोधन के विभिन्न पक्षों का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि

1. किस प्रकार नींव खोदने एवं गृहारम्भ के मुहूर्तों को निकाला जाता है।
2. समझा सकेंगे कि नींव खोदने एवं गृहारम्भ के मुहूर्त का ज्ञान व्यावहारिक है तथा इसी के लिए इनका अध्ययन किया जाता है।
3. नींव खोदने एवं गृहारम्भ के मुहूर्तों में प्राचीन ऋषि मुनियों एवं आचार्यों के विचारों के अनुरूप मुहूर्त शोधन को श्रेणीबद्ध कर सकेंगे।
4. नींव खोदने एवं गृहारम्भ मुहूर्तों के विभिन्न अंगों में अनेक मन्तव्यों का विवेचन कर निष्कर्ष निकाल सकेंगे

1.3 नींव खोदने एवं गृहारम्भ के मुहूर्त – आवश्यकता एवं महत्व

मनुष्य की मूलभूत तीन आवश्यकताएं है – रोटी, कपड़ा और मकान है। भोजन एवं वस्त्र की आवश्यकता पूर्ति के बाद मनुष्य की सबसे बड़ी चिन्ता आवास व्यवस्था है। दूसरों के मकान में रहने पर मनुष्य को अपने स्वाभिमान एवं स्वतन्त्रता के साथ समझौता करना पड़ता है। अतः दूसरे के घर में निवास करना हमारे शास्त्रों में निन्दित माना गया है। बृहद्वास्तुमाला में उल्लेखित है कि दूसरों के घर में रहकर किये गये श्रौत – स्मार्त आदि समस्त शुभ कार्य निष्फल हो जाते है क्योंकि उनका फल भूमि के स्वामी को प्राप्त होता है।

किराए के भवन में भी मनुष्य की स्वतन्त्रता बाधित होती ही है अतः अपने लिए घर का निर्माण अवश्य करना चाहिए। विश्वकर्मादि ऋषियों ने भी सर्वप्रथम गृहनिर्माण का ही निर्देश किया है क्योंकि यह धर्म, अर्थ, काम को देने वाला, सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि कष्टों से बचाने वाला है।

जब मनुष्य गृहनिर्माण हेतु तैयार होता है तो मकान की सुदृढ़ता तथा भूकम्प आदि उपद्रयों से सुरक्षा के लिए नींव खोदना सर्वप्रथम कार्य होता है। वस्तुतः नींव खोदने से ही गृहनिर्माण का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। हमारे यहां किसी भी कार्य का आरम्भ शुभ मुहूर्त में करने की बहुत पुरानी परम्परा रही है। शुभ समय पर प्रारम्भ किये गये कार्य की समाप्ति बहुत जल्दी, विघ्न–बाधाओं से रहित तथा कष्टरहित होती है। अतः नींव खोदने एवं गृहारम्भ के मुहूर्त का ठीक प्रकार से शोधन (मुहूर्त छांटना) का अत्यधिम महत्व है। भारत में अधिकांश लोग मुहूर्त के अनुसार ही गृहारम्भ करते हैं अतः इसके ज्ञान के महत्व के साथ–साथ सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी इसकी आवश्यकता अनुभव की जा सकती है। नींव खोदने एवं गृहारम्भ के मुहूर्त को भलीभांति जानकर उसके व्यावहारिक प्रयोग से आप धर्मप्राण भारत की जनता को अवश्य लाभान्वित कर सकते हैं।

1.4 नींव खोदने एवं गृहारम्भ मुहूर्त शोधन में विभिन्न विचारणीय बिन्दु –

1.4.1 कालशुद्धि विचार – वृद्धनारद के मत के अनुसार गृहादि निर्माण का आरम्भ एवं समाप्ति भगवान् विष्णु के शयन दिवसों अर्थात् आषाढ़ शुक्ल एकादशी (हरिशयन एकादशी) से कार्तिक शुक्ल एकादशी (हरिबोधिनी एकादशी) तक, में नहीं करना चाहिए। वसिष्ठ का मत है कि गुरू एवं शुक्र के उदय रहने पर ही गृहारम्भ करना चाहिए, अस्त होने पर नहीं।

इसी प्रकार फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा होली तक से पूर्व के 8 दिन का होलाष्टक भी विवाहादि शुभ कार्यों में निषिद्ध होने के कारण गृहारम्भ में भी नहीं लेना चाहिए। इसी प्रकार वास्तु कृत्य अर्थात् गृहारम्भ, नींव खोदना इत्यादि कार्य ठीक मध्याहन में, दोनों सन्ध्या कालों में तथा मध्य रात्रि में नहीं करना चाहिए। इस काल के अतिरिक्त प्रातः, पूर्वाहण, अपराहण इत्यादि में वास्तुकृत्य करना शुभ होता है। अधिकमास, भीशमपंचक, श्राद्धपक्ष इत्यादि में भी सामान्यतः गृहारम्भ नहीं करते है। इस प्रकार गृहारम्भ में कालशुद्धि का विचार किया जाता है।

बोध प्रश्न सही विकल्प चुनिये

1. विष्णु भगवान शयन करते हैं –

क. चैत्र शुक्ल एकादशी से भाद्रपद शुक्ल एकादशी तक

ख. चैत्र, शुक्लाष्टमी से भाद्रपद कृष्णाष्टमी तक

ग. आषाढ़ कृष्ण एकादशी से मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी तक

घ. आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक

2. वसिष्ठ के मत के अनुसार गृहारम्भ नहीं करना चाहिए –

क. बुध व शुक्र के अस्त रहने पर
ख. गुरू व शुक्र के अस्त रहने पर
ग. शुक्र व शनि के अस्त रहने पर
घ. गुरू व शुक्र के उदय रहने पर
3. होलाष्टक होता है –
क. 6 दिन का
ख. 7 दिन का
ग. 8 दिन का
घ. 9 दिन का
4. होलाष्टक में निषिद्ध है –
क. विवाहादि शुभ कार्य
ख. अभिचारादि कार्य
ग. रोग स्नान
घ. औषधि सेवन
उत्तर – 1–घ, 2– ख, 3–ग, 4–क।

1.4.2 मास शुद्ध विचार –वृद्ध नारद जी का मत है कि चैत्र मास में गृहादि का निर्माण करने पर शोक, वैशाख में धनलाभ, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में पशु हरण, श्रावण में पशुवृद्ध, भाद्रपद में शून्य अर्थात् हानि, आश्विन में झगड़ा, कार्तिक में नौकरों को कष्ट, मार्गशीष एवं पौष में अन्नलाभ, माघ में अग्निभय तथा फाल्गुन में गृहारम्भ करने पर धनलाभ होता है। बृहद्वास्तुमाला नामक ग्रन्थ में नारद जी के मत के अनुसार मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण और कार्तिक में गृहनिर्माण करना शुभ बताया गया है।

योगेश्वराचार्य के मतानुसार चैत्र, ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और माघ महीने गृहनिर्माण के लिए शुभ नहीं है। अतः इन मासों में गृहारम्भ नहीं करना चाहिए। चन्द्रमासों के साथ सूर्य स्थित राशि के अनुसार भी गृहारम्भ विचार का उल्लेख है। इसके अनुसार वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष, माघ एवं फाल्गुन में गृहारम्भ शुभ है। लेकिन इन मासों में कन्या, मिथुन, धनु एवं मीन राशियों में स्थित सूर्य के दिनों को छोड़ देना चाहिए। मुहूर्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में रामदैवज्ञ गृहारम्भ मासों का दिग्द्वार के अनुसार उल्लेख करते हुए कहते हैं कि फाल्गुन मास में कुम्भ के सूर्य हों, श्रावण में सिंह एवं कर्क राशि के सूर्य हो तथा पौषमास में मकर का सूर्य हो तो पूर्व एवं पाश्चिमाभिमुख गृह का निर्माण शुभ होता है। वैशाख मास में मेष और वृष राशि का सूर्य हो, तथा मार्गशीर्ष मास में तुला एवं वृश्चिक राशि का सूर्य हो तो उत्तराभिमुख एवं दक्षिणाभिमुख गृह का निर्माण शुभ होता है। आचार्यों के मतान्तर से मेष के सूर्य में चैत्रमास, वृष के सूर्य में ज्येष्ठमास, कर्क राशिस्थ सूर्य में आषाढ़ मास, सिंह राशि के सूर्य में भाद्रपद मास, तुला के सूर्य में आश्विन मास, वृश्चिक के सूर्य में कार्तिकमास, मकर के सूर्य में पौषमास और कुम्भ के सूर्य में माघ मास

होने पर गृहारम्भ करना शुभ होता है। यहाँ ध्यान देना है कि चान्द्रमासों की गणना कृष्णप्रतिपदा से आरम्भ कर पूर्णिमा तक करनी चाहिए। कन्या के सूर्य में कार्तिक मास और धनु के सूर्य में माघ मास होने पर गृहारम्भ नहीं करना चाहिए। श्रीपति के मतानुसार कर्क, मकर, सिंह एवं कुम्भ राशियों में सूर्य के रहने पर पूर्वाभिमुख एवं पश्चिमाभिमुख गृहों का निर्माणारम्भ शुभ है। जबकि तुला, मेष, वृष व वृश्चिक राशियों में सूर्य के रहने पर उत्तराभिमुख एवं दक्षिणाभिमुख गृहों का निर्माण करना चाहिए। उनके मताानुसार मीन, धनु, कन्या एवं मिथुन राशियों में सूर्य के रहने पर गृह निर्माण करना रोग, शोक एवं धननाश रूपी अशुभफल देने वाला होता है। उपर्युक्त मास विचार नया गृहनिर्माण शुरू करने में करना चाहिए। पुराने अथवा टूटू फूटे भवन का जीर्णोद्धार करवाने के लिए पूर्वोक्त मासों के अलावा श्रावण, कार्तिक एवं माघ मास भी उत्तम हैं। घास–फूस या लकड़ी से बनाये जाने वाले भवनों में मास विचार की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु पत्थर या ईटों से बनाये जाने वाले भवनों में उपर्युक्त मास विचार आवश्यक है। ज्येष्ठ मास में पशुगृह, आश्विन में धान्य भण्डारगृह, माघ मास में जल भण्डारण गृह तथा चैत्रमास में धारागृह अर्थात् फब्बारे इत्यादि का निर्माण शुभ होता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिये –

1. वृद्ध नारद के मतानुसार आषाढ़ मास में गृहारम्भ करने पर निम्न फल मिलता है

   क. धनलाभ ख. पशु हरण

   ग. अन्नलाभ घ. मृत्यु

2. योगेश्वराचार्य जी महाराज के मतानुसार निम्न मास गृहारम्भ के लिए अशुभ है –

   क. भाद्रपद ख. मार्गशीर्ष

   ग. वैशाख घ. श्रावण

3. रामदैवज्ञ के मतानुसार वृश्चिक राशि के सूर्य में मार्गशीर्ष मास होने पर निम्न अभिमुखवाले गृह का निर्माणारम्भ शुभ होता है।

   क. पूर्वाभिमुख ख. देवद्वारभिमुख

   ग. उत्तराभिमुख घ. वृक्षाभिमुख

4. श्रीपति के मतानुसार निम्नराशि के सूर्य में गृहारम्भ नहीं करना चाहिए –

   क. कर्क ख. तुला

   ग. मेष घ. मीन

5. मासविचार की आवश्यकता नहीं होती है –

   क. ईंट से बनने वाले भवन में

   ख. घास–फूस या लकड़ी से बनने वाले भवन में

   ग. पत्थर से बनने वाले भवन में

   घ. लोहे से बनने वाले भवन में

6. पशुगृह निर्माण के लिए निम्न मास उत्तम है –

क. चैत्र ख. वैशाख

ग. आषाढ़ घ. ज्येष्ठ

उत्तर –1. ख, 2. क, 3. ग, 4. घ, 5. ख,

6. घ।

1.4.3 पंचांग शुद्धि विचार –

पंचांग के तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण ये पांच अंग है।

पक्ष – गृहारम्भ के लिए शुक्लपक्ष सभी प्रकार से सुख देने वाला है जबकि कृष्णपक्ष में गृहारम्भ करने से चारों का भय बना रहता है। अतः गृहनिर्माण कार्यों में पक्षशुद्धि का विचार अवश्य करना चाहिए।

तिथि – दोनों पक्षों में प्रतिपदा, चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी तथा अमावस्या तिथियां गृहारम्भ में त्याग देनी चाहिए। महर्षि भार्गव का भी मत है कि रिक्ता, अष्टमी एवं दर्श तिथियां गृहारम्भ में वर्जित है। कुछ विद्वानों का मत है कि गृहारम्भ में समसंख्यक तिथियां अर्थात् 2, 4, 6, 8, 10, 12, 14 व 30 तिथियां शुभ नहीं है। कुछ विद्वान गृहारम्भ हेतु पूर्णासंज्ञक तिथियों (5, 10 व 15) तथा नन्दा संज्ञक तिथियों (1, 6, 11) को शुभ मानते है। रामदैवज्ञ के मतानुसार रिक्ता अमावस्या के साथ सप्तमी तिथि भी वर्जित है।

वार – गृहारम्भ में सूर्यवार, सोमवार एवं मंगलवार ग्राह्म नहीं है ऐसा भार्गव मुनि का मत है। बुध, गुरू, शुक्र एवं शनिवारों में गृहनिर्माण प्रारम्भ करने से गृहपति का कल्याण होता है। वास्तुराजबल्लभ का मत है कि मंगलवार एवं रविवार के अतिरिक्त अन्य सभी वार गृहारम्भ हेतु शुभ है। ऐसा ही रामदैवज्ञ का भी मतहै।

नक्षत्र – पाराशर मुनि के मतानुसार गृहारम्भ हेतु शुभ नक्षत्र निम्न है – चित्रा, शतभिषा, स्वाती, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, रेवती, मूल, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा, आश्विनी, मृगशिरा एवं अनुराधा। इन नक्षत्रों में गृहारम्भ के समय वास्तुपूजन करने पर लक्ष्मी प्राप्ति होती है। भार्गव मुनि के मतानुसार चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, स्वाती, पुष्य, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, धनिष्ठा एवं शतभिषा नक्षत्र गृहारम्भ के लिए प्रशस्त है। गर्गमुनि के मतानुसार तीनों उत्तरायें (उ.षा., उ.फा., उ. भा.) एवं वसु (धनिष्ठा) नक्षत्र भवन निर्माण में प्रशस्त है। मतान्तर से गृहारम्भ में हस्त, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य, स्वातीा, रोहिणी, अनुराधा, तीनों उत्तरायें, चित्रा, अश्विनी और श्रवण नक्षत्र कल्याणकारक है। वास्तुराजयवल्लभ में अश्विनी, तीनों उत्तरायें, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, पुष्य, मृगशिरा एवं रोहिणी नक्षत्र ग्राह्म माने गये है। रामदैवज्ञ के मतानुसार ध्रुव (उत्तरात्रय, रोहिणी), मृदु (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) वरुण (शतभिषा), स्वाती, वसु (धनिष्ठा), अर्क (हस्त) तथा पुष्य नक्षत्र गृहारम्भ हेतु प्रशस्त है। प्रायः आजकल रामदैवज्ञ का मत अधिक प्रचलित है।

योग – वास्तुराजवल्लभ के मतानुसार विष्कुम्भादि 27 योगों में से गृहारम्भ में वैधृति, शूल, परिध, गण्ड, व्याघात एवं वज्र नामक योग वर्जित है। ग्रन्थान्तर में विष्कुम्भ एवं व्यतीपात को

छोड़कर अन्य सभी योग गृहारम्भ में शुभ कहे गये है। मत्स्यपुराण का वचन है कि वज्र, व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड, विष्कुम्भ, गण्ड एवं परिध इन 8 योगों को गृहारम्भ में त्याग देना चाहिए।

करण – पंचांग गणना में 7 चलकरण एवं 4 स्थिर करण है। इनमें नाग, बव, तैतिल एवं गर करण गृहारम्भ हेतु विशेष प्रशस्त है। सामान्यतया गृहारम्भ में करणशुद्धि का विचार पण्डितजन नहीं करते है।

बोधप्रश्न –

1. गृहारम्भ में त्याज्य तिथि है –

क. चतुर्थी	ख. पंचमी
ग. एकादशी	घ. पूर्णिमा

2. पूर्णासंज्ञक तिथियां है –

क. 1, 6, 11	ख. 2, 7, 12
ग. 4, 9, 14	घ. 5, 10, 15

3. गृहारम्भ में निम्नवार त्याज्य हैं –

क. बुधवार	ख. शुक्रवार
ग. शनिवार	घ. रविवार

4. निम्न नक्षत्र गृहारम्भ में ग्राह्य हैं –

क. आर्द्रा	ख. पूर्वा भाद्रपदा
ग. रोहिणी	घ. आश्लेषा

5. ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र हैं –

क. अश्विनी	ख. रोहिणी
ग. आश्लेषा	घ. रेवती

6. निम्न योग गृहारम्भ में प्रशस्त हैं –

क. विष्कुम्भ	ख. व्यतीपात
ग. आयुश्मान्	घ. व्याघात

उत्तर – 1–क, 2–घ, 3–घ, 4–ग, 5–ख, 6–ग

1.4.4 लग्नशुद्धि विचार – गृहारम्भ में चरलग्न अर्थात् मेष, कर्क, तुला, मकर राशियों को लग्नों छोड़कर शेष स्थिरराशि (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ) एवं द्विस्वभावराशि (मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन) वाले लग्न शुभ होते है। कुछ विद्वानों का मत है कि गृहारम्भ में वृश्चिक एवं कुम्भ राशि के लग्नों को नहीं लेना चाहिए। कुछ विद्वान वृष, मिथुन, कन्या, तुला, धनु एवं कुम्भराशि युक्त लग्नों को गृहारम्भ के लिए शुभ मानते है। मुहूर्तचिन्तामणिकार रामदैवज्ञ के मतानुसार भी चरराशि का लग्न नहीं लेना चाहिए। उनके अनुसार लग्न से अष्टम एवं

द्वादश भाव में कोई भी ग्रह न हो, तीसरे, छठे एवं ग्यारहवें भाव में पापग्रह हो तथा शेष स्थानों में शुभ ग्रह हों तो ऐसा लग्न गृहारम्भ के लिए अति उत्तम होता है। इसी प्रकार शुभ ग्रह बलवान होकर दशम स्थान में हो तो ऐसा लग्न भी वास्तुकर्म में शुभ होता है। अथवा पंचम नवम भावों में शुभ ग्रह हो, चन्द्रमा केन्द्रस्थान में हो और पापग्रह तीसरे, छठे या ग्याहरवें भाव में हों तो गृहनिर्माण शुभ रहता है किन्तु अष्टम स्थान में पापग्रह होने पर लग्न त्याज्य होता है।

डदाहरण – गृहारम्भ हेतु शुभ लग्न चक्र

आदर्श कुण्डली –1
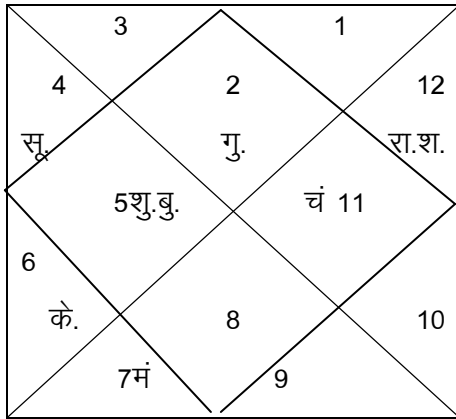
आदर्श कुण्डली – 2
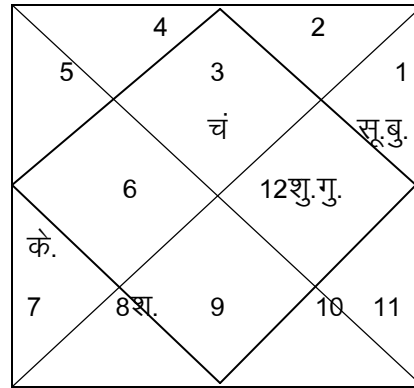
गृहारम्भ हेतु त्याज्य लग्न
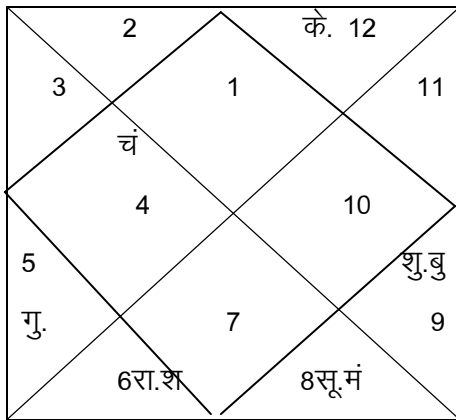
गृहारम्भ लग्न में बृहस्पति, सप्तम में बुध, षष्ठ में सूर्य, चतुर्थ में शुक्र एवं तृतीय भाव में शनि रहने पर गृह सौ वर्ष की आयु वाला होता है।

इसी प्रकार शुक्र लग्न में ग्याहरवें भाव में सूर्य, दशवें भाव में बुध एवं केन्द्र में गुरू रहने पर भी गृह 100 वर्ष वाला होता है। यदि शुक्र लग्न में, सूर्य तीसरे स्थान में, गुरू पांचवें भाव में एवं मंगल छठवें भाव में हो तो गृह की आयु दो सौ वर्ष होती है। रामदैवज्ञ के मतानुसार गृहारम्भ लग्न से चतुर्थ में गुरू, दशम में चन्द्र एकादश भाव में मंगल एवं शनि हो तो गृह की आयु 80 वर्ष होती है। गृहारम्भ लग्न में अपनी उच्च राशि मीन में शुक्र स्थित हो अथवा लग्न से चतुर्थ में कर्क राशि में गुरू बैठा हो अथवा ग्याहरवें भाव में तुला राशि में शनि बैठा हो तो ऐसी ग्रहस्थितियों में गृहारम्भ करने पर गृह धनधान्य से परिपूर्ण रहता है।

यहां ध्यान देना चाहिए कि तीन से अधिक ग्रह अपने शत्रु ग्रह की राशि में या नीच राशि में अथवा गृहयुद्ध में अन्य से पराजित हों तो गृहारम्भ लग्न शुभ नहीं होता है। इसी प्रकार सातवें या दशवें भाव में स्थित कोई भी एक शुभ फल प्रदाता ग्रह शत्रु के नवांश में हो और वर्णपति भी निर्बल हों तो गृ2ह एक वर्ष के भीतर ही दूसरे के हाथ में चला जाता है अर्थात् भवनस्वामी भवन पर अपना अधिकार खो देता है।

बोध प्रश्न –

1. गृहारम्भ लग्न में निम्न राशि ग्राह्य नहीं है –

   क. मेष ख. वृष

   ग. मिथुन घ. सिंह

2. रामदैवज्ञ के मतानुसार निम्न राशि का लग्न ग्राह्य नहीं करने चाहिए –

   क. स्थिर राशि ख. द्विस्वभाव

   ग. चर राशि घ. उपचय राशि

3. गृहारम्भ लग्न के निम्न भाव में किसी भी ग्रह की स्थिति अशुभ मानी जाती है।

   क. लग्न ख. षष्ठ

   ग. सप्तम घ. अष्टम

4. गृहारम्भ लग्न में निम्न स्थिति होने पर गृह धन धान्य से परिपूर्ण रहता है –

   क. लग्न में कर्क राशि का शुक्र हो

   ख. लग्न में मीन राशि का शुक्र हो

   ग. चतुर्थ में वृष राशि का शुक्र हो

   घ. षष्ठ में मीन राशि का शुक्र हो

5. निम्नस्थिति में गृहारम्भ शुभ नहीं होता है –

   क. शनि ग्यारहवें भाव में स्थित हो

   ख. षष्ठ भाव में मंगल बैठा हो

   ग. तीन से अधिक ग्रह अपने नीच राशि में स्थित हों

   घ. तृतीय भाव में सूर्य स्थित हो

उत्तर – 1. क, 2. ग, 3. घ, 4. ख, 5. ग

1.4.5 विभिन्न शुभ योगविचार – गृहारम्भ हेतु शुभ लग्न के विषय में उल्लिखित है कि शनिवार, स्वाती नक्षत्र, सिंह लग्न, शुक्लपक्ष, सप्तमी, शुभयोग एवं श्रावण मास, इन सात सकारों के योग में किया गया है वास्तुकर्म अर्थात् गृहारम्भ सभी प्रकार के धन धान्यादि को देने वाला है। पुष्य, ध्रुव संज्ञकनक्षत्र (उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपद व रोहिणी नक्षत्र) मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा व पूर्वाषाढ़ा इन नक्षत्रों में से किसी के साथ बृहस्पति ग्रह की स्थिति हो और गुरुवार हो तो गृहारम्भ पुत्र एवं राज्यदायक होता है। इसी प्रकार शुक्रवार के दिन विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा और आर्द्रा इनमें से किसी किसी के साथ शुक्र युक्त हो। तो गृहारम्भ धनधान्यादि को देने वाला होता है। बुधवार के दिन रोहिणी, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा व हस्त इन नक्षत्रों में से किसी में बुधग्रह स्थित हो तो गृहारम्भ करने पर गृह सुखदायक होता है। परन्तु मंगलवार को हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वषाढ़ा, और मूल नक्षत्रों में से किसी में भी मंगल की स्थिति हो तो उस दिन गृहारम्भ करने पर गृह अशुभ फलदायक होता है। इसी प्रकार शनिवार को पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपदा, ज्येष्ठ, अनुराधा, स्वाती एवं भरणी इन नक्षत्रों में से किसी में भी शनि ग्रह हो तो भी गृह का आरम्भ करना कष्टदायक होता है। यहाँ ध्यातव्य है कि गृहारम्भ काल में सूर्य, चन्द्र, गुरू व शुक्र ग्रहों में से कोई भी ग्रह निर्बल, अस्तंगत या अपनी नीच राशि में स्थित हो तो अशुभ होते हैं।

बोधप्रश्न –

1. सप्तसकार योग में सम्मिलित नहीं है –
   - क. स्वातीनक्षत्र ख. शुभ योग
   - ग. शकुनि करण घ. सप्तमी तिथि
2. गुरुवार को यदि गुरु निम्न नक्षत्र के साथ हो तो गृहारम्भ विशेष शुभ है –
   - क. भरणी ख. रोहिणी
   - ग. आर्द्रा घ. मूल
3. शुक्रवान को शुक्र की स्थिति निम्न नक्षत्र में होने पर गृहारम्भ शुभ होता है –
   - क. अश्विनी ख. रोहिणी
   - ग. उत्तराषाढ़ा घ. उत्तरा भाद्रपदा
4. बुधवार को बुध की स्थिति निम्न नक्षत्र मे होने पर गृहारम्भ शुभ होता है –
   - क. रेवती ख. भरणी
   - ग. आर्द्रा घ. चित्रा
5. शनिवार को शनि निम्न नक्षत्र मे हो तो गृहारम्भ अशुभ होता है –
   - क. भरणी ख. कृतिका
   - ग. रोहिणी घ. मृगशिरा

उत्तर –1–ग, 2–ख, 3–क, 4–घ, 5–क।

1.4.6 चक्रशुद्धिविचार –

गृहारम्भ के दिन के चन्द्र नक्षत्र एवं सूर्यनक्षत्र की गणना के आधार पर वास्तुक्षेत्र की शुभता या अशुभता का अनुमान करना ही चक्रशुद्धि विचार है। इस चक्रशुद्धि विचार को हम वृषवास्तुचक द्वारा जान सकते है। इस हेतु वास्तु पुरूष की कल्पना बैल के रूप में की गयी है जिसके शरीर में सूर्य नक्षत्र से गिनकर नक्षत्र स्थापित करना चाहिए। इसमें चन्द्रस्थित नक्षत्र की स्थिति को देखकर शुभ या अशुभ फल निम्न प्रकार से समझना चाहिए। यहाँ ध्यान देना है कि इस चक्र में अभिजित् सहित 28 नक्षत्रों की गणना करनी है।

वृष के शरीर के अंग	शिर	अग्रपाद	पृष्ठपाद	पृष्ठ	दाहिनी कोख	पूंछ	बायी कोख	मुख
सूर्य नक्षत्र से गणना	1—3	4—7	8—11	12—14	15—18	19—21	22—25	26—28
फल	अग्निभय	शून्यता	स्थिरता	लक्ष्मीप्राप्ति	लाभ	स्वामिनाश	निर्धनता	पीड़ा

उदाहरण — दिनांक 6 जून 2011 को गृहारम्भ के दिन रोहिणी नक्षत्र में सूर्य है। इस दिन चन्द्र पुष्य नक्षत्र में है। अब हम वृषवास्तुचक्र में निम्न प्रकार से नक्षत्र स्थापित करेंगे।

वृष के शरीर के अंग	शिर	अग्रपाद	पृष्ठपाद	पृष्ठ	दाहिनी कोख	पूंछ	बायी कोख	मुख
सूर्य नक्षत्र से गणना	रोहिणी, मृगसिरा, आर्द्रा	पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा	पू.फा., उ. फा., हस्त, चित्रा	स्वाती, विशाखा, ज्येष्ठा	अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पू. षा.,	उ.षा. अभिजित्, श्रवण,	धनिष्ठा शतभिषा पू.भा.उ.भा.	श्रेवती अश्विनी भरणी

ऊपर तालिका में लिखित स्थान के अनुसार सूर्यनक्षत्र रोहिणी से गिनकर रोहिणी, मृगशिरा व आर्द्रा इन तीन नक्षत्रों को बैल के शिरस्थान में रखा गया है। उसके बाद बैल के आगे के पांवों में अग्रिम चार नक्षत्र पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा रखे गये है। उसके बाद पुनःअग्रिम चार नक्षत्र पू.फा., उ.फा., हस्त व चित्रा बैल के पीछे के पांवों में रखे है। इस प्रकार बैल के शरीर के अंगों में सूर्यनक्षत्र से आरम्भ कर नक्षत्र स्थापित करने है। यहां चन्द्र नक्षत्र पुष्य है जो वृषवास्तु के आगे के पांव में स्थित है जिसका फल रिक्तता या शून्यता है। अतः यह दिन गृहारम्भ के लिए अशुभ है।

ज्योतिः प्रकाश नामक ग्रन्थ में कूर्म चक्र का उल्लेख मिलता है। जिसके अनुसार गृहारम्भ दिवस की तिथि संख्या को 5 से गुणाकर उसमें कृतिका से गिनकर जो नक्षत्र संख्या हो, उसे जोड़कर पुनः 12 जोड़ने के बाद 9 का भाग देने पर यदि शेष 1, 4 या 7 आये तो ज लमे कूर्म का निवास जानना चाहिए, उस दिन गृहारम्भ करने पर लाभ मिलता है। यदि शेष 2, 5 या 8 शेष बचे तो कूर्म का निवास जमीन मे जानना चाहिए, इस दिन

गृहारम्भ करने पर हानि होती है। यदि शेष 0, 3 या 6 आये तो कूर्म का निवास आकाश में होता है। इस दिन गृहारम्भ करने पर मृत्यु या उसके तुल्य कष्ट समझना चाहिए।

उदाहरण – दिनांक 12 अप्रैल 2011 को चैत्र शुक्ल नवमी तथा पुष्यनक्षत्र है।

क्योंकि ((तिथि संख्या × 5) + कृत्तिकादि नक्षत्रादि संख्या + 12) ÷ 9 = शेष कूर्मनिवास स्थान।

अतः ((9 × 5) + 6 + 12) ÷ 9 = 0 शेष कूर्मनिवास आकाश।

यहाँ शेष शून्य है अतः इस दिन कूर्म का निवास आकाश में है जिसके कारण इस दिन गृहारम्भ करने पर कष्ट मिलने की सम्भावना होती है।

बोध प्रश्न –

1. गृहारम्भ में चक्रशुद्धि विचार किया जाता है –

    क. वृष वास्तुचक्र से   ख. हस्तिवास्तु चक्र से
    ग. वराहवास्तुचक्र से   घ. मीनवास्तुचक्र से

2. गृहारम्भ दिन के सूर्य नक्षत्र से गिनने पर वृषावास्तु चक्र में चन्द्रनक्षत्र के पृष्ठ (पीठ) भाग में रहने पर निम्नफल मिलता है –

    क. अग्निभय   ख. निर्धनता
    ग. शून्यता   घ. लक्ष्मीप्राप्ति

3. कूर्मचक्र का उल्लेख निम्न ग्रन्थ मे मिलता है –

    क. व्यवहारकोश   ख. ज्योतिश्चिन्तामणि
    ग. ज्योतिःप्रकाश   घ. अमरकोश

4. कूर्मचक्र में अनुसार स्थल (जमीन) पर कूर्म के निवास होने पर फल मिलता है

    क. स्थिरता   ख. हानि
    ग. धनलाभ   घ. सौख्य

उत्तर – 1–क,   2–घ,   3–ग,   4–ख

– अभ्यास प्रश्न –

1. रिक्त स्थान भरिये –

क. होली से पूर्व के 8 दिन होलाष्टक विवाहादि शुभ कार्यों में निषिद्ध है।

ख. मुहूर्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ के लेख रामदैवज्ञ है।

ग. घासफूस व लकड़ी के भवनों में मासशुद्धिविचार की आवश्यकता नहीं होती है।

घ. रामदैवज्ञ के मतानुसार गृहारम्भ लग्न से 8वें व 12वें भावों में किसी भी ग्रह की स्थिति शुभ नहीं होती है।

ड. कूर्मचक्र के अनुसार कूर्म का निवास जल में रहने पर लाभ होता है।

2. निम्न का उत्तार दीजिा–

क. आश्विन शुक्ल पंचमी (1 अक्टूबर 2011) के दिन सूर्य नक्षत्र हस्त एवं चन्द्र नक्षत्र अनुराधा है। वृषवास्तु चक्र के अनुसरा गृहारम्भ के लिए शुभाशुभ विचार करें।

ख. 1 अक्टूबर 2011 दिन को शुक्लपक्ष की पंचमी तिथि एवं अनुराधा नक्षत्र के अनुसार कूर्मचक्र के अनुसार गृहारम्भ के लिए शुभाशुभ विचार करें।

3. सत्य या असत्य बताइये –

क. सप्त सकार योग गृहारम्भ में त्याज्य है।

ख. गृहारम्भ लग्न से छठवें भाव में पापग्रह की स्थिति शुभ होती है।

ग. गृहारम्भ लग्न से कर्क राशि का गुरू चतुर्थ भाव में हो तो गृह धन धान्य से परिपूर्ण रहता है।

घ. गृहारम्भ हेतु उत्तराषाढ़ा, उत्तरा फाल्गुनी एवं उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र शुभ है।

ड. चैत्र मास में धारागृह का निर्माण करना चाहिए।

1.5 नींव खोदने में विचारणीय तथ्य –

1.5.1 राहुमुख विचार – देवमन्दिर, जलाशय (तालाब कुंआ इत्यादि) एवं गृह के निर्माण करने से पूर्व राहुमुख का विचार करना आवश्यक होता है। आप जानते हैं कि गृहारम्भ पूजन के बाद शिलान्यासादि कर्म करने के लिए भूमि खोदी जाती है। भूमि खोदने को खात (नींव खोदना) कहा जाता है। इसी खात के लिए राहुमुख विचार किया जाता है। क्योंकि राहुमुख वाली दिशा में वास्तुक्षेत्र में सबसे पहले खात करना अशुभ माना जाता है। सबसे पहले खात (नींव खोदना) राहुमुख वाली कोणीयदिशा से पिछली वाली कोणीय दिशा में ही किया जाता है। गृहारम्भ के समय यदि सिंह, कन्या या तुला राशि में सूर्य स्थित हो तो राहुमुख ईशान कोण (पूर्व एवं उत्तर दिशा के बीच की दिशा) में होता है अतः ईशान कोण से पिछली कोणीय दिशा आग्नेयकोण (पूर्व एवं दक्षिण दिशा के बीच) में उस समय सर्वप्रथम नींव खोदना (खात) चाहिए। इसी प्रकार गृहारम्भ के समय वृश्चिक, धनु एवं मकर राशि में सूर्य के रहने पर राहुमुख वायव्य कोण में (पश्चिम व उत्तर के बीच की दिशा) होता है। अतः उस समय ईशान कोण में सर्वप्रथम खात खोदना चाहिए। कुम्भ, मीन एवं मेष राशि में सूर्य के रहने पर राहुमुख नैर्ऋत्युकोण (दक्षिण व पश्चिम के बीच की दिशा) में होता हैं, अतः उस समय वायव्य कोण में सर्वप्रथम खात करना चाहिए। वृष, मिथुन एवं कर्क राशि में सूर्य के रहने पर राहुमुख आग्नेय कोण में रहता है अतः इस समय नैऋत्य कोण में खात करना चाहिए।

राहुमुख एवु खात दिशा जानने के लिए आप निम्न चक्र की सहायता ले सकते है –

गृहारम्भ में राहुमुख एवं खात दिशा

क्र.	सूर्य स्थित राशिया	राहुमुख कोण	खातदिशा
1	सिंह, कन्या, तुला	ईशान	आग्नेय
2	वृश्चिक, धनु, मकर	वयव्य	ईशान
3	कुम्भ, मीन, मेष	नैर्ऋत्य	वयव्य
4	वृष, मिथुन, कर्क	आग्नेय	नैर्ऋत्य

बोधप्रश्न–

1. राहुमुख का विचार करना चाहिए –
   क. गृहारम्भ में नींव खोदने पर ख. विवाहमुहूर्त में
   घ. नक्षत्रशूल जानने में ड. वृक्षारोपण में
2. यदि गृहारम्भ के समय सूर्य कन्याराशि में स्थित हो तो राहुमुख निम्न दिशा में होगा –
   क. आग्नेय ख. ईशान
   ग. वायव्य घ. नैर्ऋत्य
3. वृश्चिक राशि में सूर्य के रहने पर गृहारम्भ के लिए खात दिशा होगी –
   क. नैर्ऋत्य ख. आग्नेय
   ग. वायव्य घ. ईशान
4. गृहारम्भ विचार में नैर्ऋत्य कोण में राहुमुख रहता है –
   क. सूर्य के कन्या राशि में रहने पर
   ख. सूर्य के मकर राशि में होने पर
   ग. सूर्य के कुम्भ राशि में होने पर
   घ. सूर्य के कर्क राशि में होने पर
5. गृहारम्भ में नैर्ऋत्य कोण में खात दिशा होती है –
   क. मिथुन ख. वृश्चिक
   ग. सिंह घ. मकर

उत्तर – 1–क, 2–ख, 3–घ, 4–ग, 5–क।

1.5.2 भूमिशयन विचार – आप जानते हैं कि गृहारम्भ के समय नींव हूतु भूमि में खात (गड्ढा) किया जाता है। खात करने से पूर्व यह विचार करना आवश्यक होता है कि भूमि शयन अवस्था (निद्रा) में हैं या जाग्रत है। भूमि शयन के विचार हेतु यह जानना आवश्यक है कि उस समय नींव खोदने के दिन सूर्य किस नक्षत्र में स्थित है? इसकी जानकरी बाजार में उपलब्ध छपे हुए पंचांग से प्राप्त की जा सकती है। सूर्य स्थित नक्षत्र से पाँचवें, सातवें, नौंवे, बाहरवें, उन्नीसवें एवं छब्बीसवें नक्षत्र में पृथ्वी शयन करती है। अर्थात् सूर्य स्थित नक्षत्र से गिनने पर 5, 7, 9, 12, 19 व 26वां नक्षत्र यदि खात दिन का चन्द्र नक्षत्र हो तो भूमि का शयन समझकर उस दिन खात नहीं करना चाहिए।

उदाहरण – दिनांक – 6 जून 2011 को सूर्य रोहिणी नक्षत्र में हो तथा चन्द्र नक्षत्र पुष्य है इस दिन भूमि शयन कर रही है या नहीं?

सूर्यनक्षत्र रोहिणी से 5 वां नक्षत्र पुष्य 7 वां, मघा 9 वां उत्तराफाल्गुनी, 12 वां स्वाती, 19 वां श्रवण एवं 26 वां नक्षत्र भरणी है।

इन नक्षत्रों में 5 वां नक्षत्र पुष्य, चन्द्र नक्षत्र भी है अतः भूमि का शयन जानना चाहिए।

–अभ्यास प्रश्न–

4. सत्य असत्य बताइये –

क. सिंह राशि से सूर्य रहने पर गृहारम्भ में सर्वप्रथम आग्नेयकोण में नींव खोदनी चाहिए।

ख. मिथुन राशि में सूर्य रहने पर राहुमुख नैर्ऋत्य कोण में होता है।

ग. राहुमुख दिशा मे सर्वप्रथम नींव खोदनी चाहिए।

घ. सूर्यस्थित नक्षत्र से दसवें नक्षत्र में चन्द्रमा के रहने पर भूमि शयन करती है।

ड. भूमिशयन के दिन नींव नहीं खोदनी चाहिए।

5. निम्न प्रश्नों का उत्तर दीजिए –

क. यदि सूर्य अश्विनी नक्षत्र में हो तथा चन्द्र चित्रा नक्षत्र में हो तो ज्ञान करें कि भूमि शयन है या नहीं ?

ख. यदि सूर्यनक्षत्र मचा है तो किन किन नक्षत्रों में भूमि का शयन होगा ?

ग. यदि राहुमुख नैर्ऋत्य कोण में है तो खात दिशा क्या होगी ?

घ. यदि खातदिशा नैर्ऋत्य कोण है तो राहुमुख किस दिशा में होगा ?

1.6 सारांश –

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके हैं कि नींव खोदने एवं गृहारम्भ हेतु मुहूर्तविचार में श्रावण मास को छोड़कर अन्य हरिशयन दिवसों, होलाष्टक, अधिकमास, भीष्मपंचक, श्राद्धपक्ष आदि को छोड़ देना चाहिए। सामान्यतः वैशाखर, श्रावण, मार्गशीर्ष व फाल्गुन शुभ मासों में, रिक्ता व अमावस्या रहित अन्य शुभ तिथियों में, बुध, गुरू, शुक्र व शनिवारों में, तीनों उत्तराओं, रोहिणी आदि शुभ नक्षत्रों में आयुष्मान आदि शुभ योगों में, गृहारम्भ लग्न से अष्टम भाव ग्रहरहित, 3, 6, 11 भावों में पापग्रह तथा केन्द्रादि शुभस्थानों में शुभ ग्रह, चर राशि रहित शुभ लग्नों में, वृषवास्तुचक्र से चक्रशुद्धि कर गृहारम्भ मुहूर्त को सुनिश्चित करना चाहिए। गृहारम्भ मुहूर्त में ही भूमिपूजन के पश्चात् नींव खोदने से पूर्व राहुमुख एवं खात दिशा तथा भूमिशयन का भी भलीभांति विचार करना चाहिए। इस प्रकार मुहूर्त शोधन करने पर उसके अनुसार नींव खोदने एवं गृहारम्भ करने पर जन सामान्य को उस गृहक्षेत्र में रहने पर सुख शान्ति एवं धन–धान्यादि समृद्धि प्राप्त होती है। इस इकाई के पढ़ने के बाद आप नींव खोदने एवं गृहारम्भ के मुहूर्त का शोधन भलीभांति कर सकेंगे।

1.7 शब्दावली –

अधिकमास – जिस चान्द्रमास में संक्रान्ति नहीं होती है उसे अधिकमास या मलमास कहा जाता है। यहां चान्द्रमास का मान शुक्लप्रतिपदा से अमावस्या तक ग्रहण करना चाहिए। इसमें मांगलिक कृत्य नहीं किए जाते है।

भीष्मपंचक – कार्तिक शुक्लएकादशी से कार्तिक शुक्लपूर्णमासी तक भीष्म पंचक होता है। इसमें मांगलिक कृत्य नहीं किए जाते हैं।

श्राद्धपक्ष – पूर्णिमान्त मान से आश्विन कृष्ण पक्ष में पितरों की तृप्ति के लिए श्राद्ध पक्ष होता है। इसमें भी मांगलिक कृत्य नहीं किए जाते हैं।

गुरू–शुक्र का उदय और अस्त – गुरू एवं शुक्र ग्रह जब सूर्य के अत्यधिक निकट होकर सामान्य आंखों से दिखलाई नहीं देते है तो उन्हें अस्त कहा जाता है। पुनः जब वे सूर्य के कुछ दूर हटकर दिखलाई पड़ते है तो उनका उदय कहा जाता है। सामान्यतयः पंचांगों में गुरू व शुक्र के उदय–अस्त की तारीखों का विशेष रूप से उल्लेख रहता है।

दर्श तिथि – अमावस्या को दर्श तिथि कहते है।

अभिजित् – अभिजित् का मान उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के अन्तिम चरण तथा श्रवण के कुलमान के पन्द्रहवें भाग के जोड़ के बराबर माना गया है। यदि हम उत्तराषाढ़ा एवं श्रवण दोनों ही नक्षत्रों का मान 60 घटी – 60 घटी मानें तो अभिजित् का कुल मान 19 घटी के बराबर हो जायेगा। अभिजित् की गणना उत्तराषाढ़ा के बाद तथा श्रवण से पहले की जाती है।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. क. होलाष्टक, ख. रामदैवज्ञ, ग. घास–फूल व लकड़ी, घ. 8 एवं 12वें,
ड. जल

2. क. यहां चन्द्रनक्षत्र अनुराधा है। जो अग्रपाद में है। अतः गृहारम्भ हेतु चक्रशुद्धि नहीं है, जिस कारण शून्यता रूपी अशुभ फल प्राप्त होने की सम्भावना है।

ख. ((5× 5) + 15 + 12) ÷ 9 = 7 शेष कूर्मनिवास जल। अतः गृहारम्भ हेतु चक्रशुद्धि है, जिस कारण लाभ रूपी शुभ फल प्राप्त होने की सम्भावना है।

3. क. असत्य, ख. सत्य, ग. सत्य, घ. सत्य ड. सत्य

4. क. सत्य, ख. असत्य, ग. असत्य, घ. असत्य ड. सत्य

5. क. नहीं ख. चित्रा, विशाखा ज्येष्ठा, उ.षा., अश्विनी एवं पुष्य ग. वायव्य
घ. आग्नेय।

1.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. दैवज्ञ श्रीरामाचार्य, मुहूर्त चिन्तामणि, टीका–केदारदत्त जोशी, पीयूषधारा टीकासहित, (द्वितीयसंस्करण 1979, पुनर्मुद्रण 1995), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

2. श्रीरामनिहोरद्विवेदी, बृहद्वास्तुमाला, सम्पादन–डॉ. ब्रह्मानन्दत्रिपाठी, (संस्करण 2001), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

3. प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, भारतीय वास्तुशास्त्र, (संस्करण 2004), श्रीलालबहादुर – शास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली

4. डॉ. देवीप्रसाद त्रिपाठी, वास्तुसार, (संस्करण 2006) परिक्रमा प्रकाशन, शहादरा, दिल्ली।

5. डॉ. अशोक थपलियाल, वास्तुप्रबोधिनी, (संस्करण 2011), अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, विजयनगर दिल्ली।

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. दैवज्ञ श्रीरामाचार्य, मुहूर्त चिन्तामणि, टीका–केदारदत्त जोशी, पीयूषधारा टीकासहित, (द्वितीयसंस्करण 1979, पुनर्मुद्रण 1995), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
2. श्रीरामनिहोरद्विवेदी, बृहद्वास्तुमाला, सम्पादन–डॉ. ब्रह्मानन्दत्रिपाठी, (संस्करण 2001), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, भारतीय वास्तुशास्त्र, (संस्करण 2004), श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली
4. डॉ. देवीप्रसाद त्रिपाठी, वास्तुसार, (संस्करण 2006) परिक्रमा प्रकाशन, शहादरा, दिल्ली।
5. डॉ. अशोक थपलियाल, वास्तुप्रबोधिनी, (संस्करण 2011), अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, विजयनगर, दिल्ली।
6. श्री भोजराजपंचांग, प्रधान सम्पादक – प्रो. आजाद मिश्र, (संस्करण 2011–12), राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल
7. विद्यापीठ पंचांग, (संस्करण 2011–12), प्रधान सम्पादक – प्रो. वाचस्पति उपाध्याय, श्रीलालबहादुरशास्त्रीय राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली
8. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, (संस्करण 2002), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न –

क. गृहारम्भ के मुहूर्त के महत्व पर प्रकाश डालिए।

ख. नींव खोदने एवं गृहारम्भ मुहूर्त के लिए शोधन में पंचांग शुद्धि किस प्रकार की जाती है? विश्लेषण कीजिए।

ग. गृहारम्भ लग्न के चरण में शुभाशुभ ग्रहस्थित्यादि का वर्णन करते हुए एक निबन्ध लिखिए।

घ. गृहारम्भ मुहूर्त हेतु शुभाशुभ योगा विचार पर एक निबन्ध लिखिए।

ड. चक्रशुद्धि क्या है तथा गृहारम्भ के लिए किस प्रकार इसका विचार किया जाता है। वर्णन कीजिए।

च. नींव खोदने में राहुमुख एवं भूमिचयन के सिद्धान्तों का विश्लेषण कीजिए।

इकाई – 2 द्वारस्थापन मुहूर्त एवं गृहप्रवेश मुहूर्त

2.1 प्रस्तावना

मुहूर्तशास्त्र से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह द्वितीय इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि नींव खोदने एवं गृहारम्भ मुहूर्त के विचार में किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? नींव खोदने एवं गृहारम्भ मुहूर्त के शोधन में कालशुद्धि, मासशुद्धि, पंचांगशुद्धि, लग्नशुद्धि, चक्रशुद्धि आदि का विचार किस प्रकार करना चाहिए? नींव खोदने में राहुमुख एवं भूमिशयन का विचार किस प्रकार करना चाहिए? आदि।

नींव खोदने के बाद शिलान्यासादि कार्य के पश्चात् भवन निर्माण शुरू हो जाने पर द्वार स्थापन अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। भवन में प्रवेश हेतु, वायु के ठीक प्रकार से आवागमन हेतु तथा भवन में पर्याप्त रूप से प्रकाश के लिए द्वारादि का विधान किया जाता है। पुराणादि के मत के अनुसार द्वार में गणेश, विष्णु आदि देवताओं का वास रहता है। जो मनुष्य के गृह को सुरक्षा एवं विघ्न–बाधाओं से बचाते हैं। इस कारण से द्वार के देवताओं की सन्तुष्टि एवं अभय प्राप्ति की कामना से द्वारस्थापन के समय उनका पूजन करने का विधान है। जो शुभ समय में किए जाने पर ही लाभदायक होता है। इसी प्रकार गृह निर्माण के बाद घर में सुख, शान्ति एवं विघ्न–बाधा रहित सुविधाओं के उपभाग की मनोकामना से गृहप्रवेश शुभ समय पर करने का विधान है। अतः हमारे प्राचीन ऋषि–मुनियों एवं आचार्यों ने गहन चिन्तन, मनन एवं विश्लेषण करने के बाद द्वारस्थापन एवं गृहप्रवेश के मुहूर्तों का प्रतिपादन किया है कि किन किन तिथियों, नक्षत्रों, लग्नादियों में द्वारस्थापन तथा गृहप्रवेश शुभ होता है। प्रस्तुत इकाई में विस्तारपूर्वक द्वारस्थापन एवं गृहप्रवेश के मुहूर्तों के विभिन्न विचारणीय बिन्दुओं का विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप द्वारस्थापन मुहूर्त एवं गृहप्रवेश मुहूर्त के विषय को समझा सकेंगे। साथ ही इस सम्बन्ध में विभिन्न मतों को जानकर मुहूर्तशोधन के विभिन्न तथ्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद –

1. आप बता सकेंगे कि किस प्रकार द्वारस्थापन एवं गृहप्रवेश मुहूर्तों का साधन किया जाता है।
2. समझा सकेंगे कि द्वारस्थापन एवं गृहप्रवेश मुहूर्त का ज्ञान व्यावहारिक है, जो जन सामान्य की सेवा, धनप्राप्ति व यशप्राप्ति में सहायक है। इसी कारण इनका अध्ययन व साधन किया जाता है।
3. द्वारस्थापन एवं गृहप्रवेश मुहूर्त शोधन के विषय में विभिन्न मतों को श्रेणीबद्ध कर विश्लेषण सकेंगे।
4. द्वारस्थापन एवं गृहप्रवेश मुहूर्त का व्यावहारिक प्रयोग कर सकेंगे।

2.3 द्वारस्थापन के मुहूर्त शोधन में आवश्यक विचार

2.3.1 कालशुद्धि व मासशुद्धि विचार

सामान्यतः गृहारम्भमुहूर्त में कहे गए कालशुद्धि का विचार ही द्वारस्थापन में भी करना चाहिए। आप जानते ही हैं कि हरिशयन, होलाष्टक, गुरू व शुक्र का अस्तांगत होना, अधिकमास, भीष्मपंचक, श्राद्धपक्ष आदि का निषेध गृहारम्भमुहूर्त में होता है। ऐसा ही विचार द्वारस्थापन में करना चाहिए। द्वारस्थापन हेतु कौन कौन से मास शुभ है, इस बारे में यद्यपि स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, अतः किसी भी मास में द्वारस्थासपन हो सकता है, फिर भी गृहारम्भमुहूर्त में कहे गए मास द्वारस्थापन हेतु विशेष शुभ जानने चाहिए।

बोध प्रश्न – हाँ या नहीं में उत्तर दीजिए–

1. द्वारस्थापन में कालशुद्धि का विचार करना चाहिए।
2. द्वारथापन में श्राद्धपक्ष शुभ होता है।
3. द्वार की स्थापना के लिए मासशुद्धि आवश्यक है।
4. गृहारम्भ में कहे गये मास द्वारस्थापन के लिए विशेष शुभ होते हैं।

उत्तर – 1. हाँ 2. नहीं 3. नहीं 4. हाँ

2.3.2 पंचांगशुद्धि विचार

तिथि – बृहद्वास्तुमाला में उल्लिखित है कि द्वारस्थापन हेतु पंचमी, सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी तिथियाँ शुभ तथा प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, षष्ठी, दशमी, पूर्णिमा एवं अमावस्या तिथियाँ अशुभ है। मतान्तर से मुहूर्तमुक्तावली के अनुसरा नन्दा संज्ञक तिथि (1,6,11), जया संज्ञक (3,8,13) तथा पूर्णा संज्ञक तिथि (5,10,15) द्वारस्थापन के लिए शुभ ह।

वार – द्वारशाखा स्थापन के लिए गुरू, चन्द्र, शुक्र, रवि तथा बुधवार शुभ हैं। कुछ विद्वान केवल शुभवारों (गुरू, चन्द्र, शुक्र तथा बुधवार) को ही शुभ मानते हैं।

नक्षत्र – द्वारशाखा स्थापन के लिए – अश्विनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा – फाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपदा, स्वाती, रेवती एवं रोहिणी शुभ नक्षत्र हैं। मतानन्तर से अश्विनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपदा, हस्त, पुष्य, श्रवण, मृगसिरा, रोहिणी, स्वाती एवं रेवती शुभ है। इसी प्रकार कुछ विद्वान रेवती, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाती और पुनर्वसु नक्षत्र को द्वारस्थापन में ग्राह्य मानते हैं। बृहद्वास्तुमाला में गुरू के मत का उल्लेख किया गया है। जिसके अनुसरा ध्रुवसंज्ञकनक्षत्र (उत्तरषाढ़ा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपदा एवं रोहिणी नक्षत्र) चित्रा तथा मृगसिरा नक्षत्र द्वारस्थापन के लिए विशेष शुभ है।

योग व करण – द्वारस्थापन में योग व करण की शुद्धि का विचार प्रायः नहीं मिलता है। फिर भी गृहारम्भ में कहे गए शुभ योगों व करणो का विचार द्वारस्थापन में भी किया जा सकता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. बृहद्वास्तुमाला के अनुसार द्वारस्थापना में शुभ तिथि है –

(क) प्रतिपदा (ख) तृतीया (ग) पंचमी (घ) दशमी

2. मतान्तर से द्वारस्थापना में शुभ तिथि है –

(क) चतुर्थी (ख) नवमी (ग) त्रयोदशी (घ) चतुर्दशी

3. द्वारस्थापना में अशुभ वार है –

(क) रविवार (ख) बुधवार (ग) गुरूवार (घ) शुक्रवार

4. द्वारस्थापना में शुभ नक्षत्र है –

(क) भरणी (ख) मृगसिरा (ग) आर्द्रा (घ) पूर्वभाद्रपदा

उत्तर– 1–ग, 2–ग, 3–क, 4–ख

2.3.3 लग्नशुद्धि विचार

आप जानते ही हैं कि घर का द्वार सुदृढ़ तथा अचल होना चाहिए। जिससे सुरक्षा की स्थिति मजबूत रहे। अतः स्थिरराशि अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ राशि के लग्नों में द्वारशाखा की स्थापना करनी चाहिए। इन राशियुक्त लग्नों के अभाव में द्विस्वभाव राशि अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन राशि वाले लग्नों में द्वारस्थापन किया जा सकता है। गृहारम्भ लग्न के समान केन्द्र (लग्न, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम भाव) व त्रिकोण (पंचम व नवम भाव) स्थानों में शुभ ग्रहों की स्थिति, त्रिक अर्थात् तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भावों में पापग्रहों की स्थिति तथा अष्टमभाव ग्रहरहित होना चाहिए।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए–

1. द्वारस्थापना के लिए शुभलग्न है –

(क) मेष (ख) कर्क (ग) सिंह (घ) मकर

2. द्वारस्थापना लग्न में शुभग्रहों की स्थिति होनी चाहिए –

(क) चतुर्थ (ख) षष्ठ (ग) अष्टम (घ) द्वादश

3. त्रिकस्थान में निम्न भाव नहीं है –

(क) तृतीय (ख) षष्ठ (ग) एकादश (घ) द्वादश

4. द्वारस्थापना लग्न में अष्टमभाव में निम्न ग्रह शुभ होता है –

(क) सूर्य, (ख) मंगल (ग) गुरू (घ) कोई नहीं

उत्तर – 1–ग, 2–क, 3–घ, 4–घ

2.3.4 चक्रशुद्धि विचार

गृहारम्भ में वृषवास्तुचक्र के विषय में आप पहले पढ़ ही चुके है। उसी प्रकार द्वारस्थापन में द्वार चक्र एवं देहली चक्र के द्वारा चक्रशुद्धि का विचार किया जाता है। इन चक्रों द्वारा चक्रशुद्धि का उद्देश्य घर की स्थिरता, सौख्य, धन–धान्यादि की समृद्धि आदि के विषय में पूर्वानुमान करना है। इन दोनों चक्रों में द्वारचक्र द्वारा प्राप्त चक्रशुद्धि ही अधिक मान्य है।

द्वारचक्र में स्थान	शिर	कोण	शाखा	देहली	मध्य या कपाटस्थान

सूर्यनक्षत्र से नक्षत्रगणना	1–4	5–12	13–20	21–23	24–27
फल	लक्ष्मीप्राप्ति	उद्वास (पदरेशगमन की इच्छा)	सुख प्राप्ति	मरण	सुख

द्वारचक्र – नाम से ही स्पष्ट है कि द्वार की आकृति बनाकर द्वारचक्र का विचार किया जाना है, यह आप समझ ही रहे होंगे। आचार्य रामदैवज्ञ के अनुसार द्वारस्थापना के दिन सूर्य जिस नक्षत्र पर स्थित है, उस नक्षत्र से गणना करनी चाहिए। सूर्य नक्षत्र से 4 नक्षत्र तक गिनकर उनको द्वारचक्र में शिर स्थान में रखना चाहिए। उससे आगे के 8 नक्षत्रों को गिनकर उनको द्वार के दोनों कोणस्थान में रखें। उसके अग्रिम 8 नक्षत्रों को गिनकर दोनों शाखाओं में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को देहली में तथा अग्रिम 4 नक्षत्र द्वार के बीच में अर्थात् कपाटस्थान में दें। इस प्रकार द्वारचक्र बनाकर उसमें द्वारस्थापना के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र पर है, उसकी स्थिति द्वारचक्र में शिर, कोण, शाखा, देहली या मध्य स्थान किस मे है, यह जानकर निम्न तालिका के अनुसार उस दिन द्वारस्थापन करने का शुभ या अशुभ फल जानना चाहिए।

उदाहरण – दिनांक 6 जून 2011, सूर्यनक्षत्र – रोहिणी, चन्द्रनक्षत्र – पुष्य

सूर्यनक्षत्र से गणना कर निम्न प्रकार से द्वारचक्र बनाने पर चन्द्रस्थित नक्षत्र पुष्य कोणस्थान में आता है। जिसका फल उपर्युक्त तालिका के अनुसार उद्वास आता है तो गृहस्वामी के लिए शुभफल नहीं है। अतः इस दिन द्वारस्थापना ठीक नहीं है।
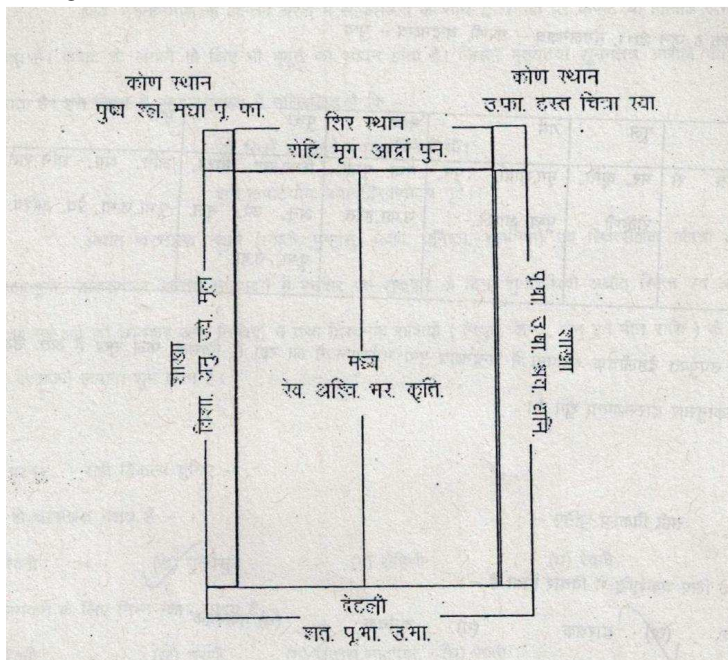
देहलीचक्र – द्वारस्थापना के दिन मंगल जिस नक्षत्र में हो, उससे गणना आरम्भ करनी चाहिए। यहाँ अभिजित् सहित 28 नक्षत्र गिनने चाहिए। अभिजित् का मान उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के अन्तिम चरण तथा श्रवण के मुलमान के पन्द्रहवें भाग के जोड़ के बराबर माना गया है। यदि हम उत्तराषाढ़ा एवं श्रवण दोनों ही नक्षत्रों का मान 60 घटी – 60 घटी मानें तो अभिजित् का कुल मान 19 घटी के बराबर हो जायेगा। अभिजित् की गणना उत्तराषाढ़ा के बाद तथा श्रवण से पहले की जाती है।

देहली चक्र से शुभाशुभ ज्ञान के लिए मंगल स्थित नक्षत्र से तीन नक्षत्र तक गिनकर उसे देहली चक्र के मूल में रखना चाहिए। आगे के 5 नक्षत्र गर्भ में, अप्रिय 4 नक्षत्र मध्य में, उसके आगे के 8 नक्षत्र पुच्छ में तथा अग्रिम 8 नक्षत्र पृष्ठ में कल्पित करनी चाहिए। द्वारस्थापना के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र में है, उसका स्थान देहली चक्र में देखने पर निम्न तालिका के अनुसार शुभाशुभ फल जानना चाहिए –

स्थान	मूल	गर्भ	मध्य	पुच्छ	पृष्ठ
मंगलनक्षत्र से गणना	1–3	4–8	9–12	13–20	21–28
फल	स्वामीमरण	सुख	धन–पुत्रादिसुख	हानि	भाग्यवृद्धि

उदाहरण – दिनांक 6 जून 2011, मंगलनक्षत्र – भरणी, चन्द्रनक्षत्र – पुष्य

स्थान	मूल	गर्भ	मध्य	पुच्छ	पृष्ठ
मंगलनक्षत्र से गणना	भर, कृति, रोहिणी	मृग, आर्द्रा, पुन., पुष्य, आश्ले.,	मघा, पू.फा., उ.फा., हस्त,	चित्रा, स्वा., विशा., अनु., ज्ये., मूल, पू.षा., उ.षा.	अभि, श्रव., धनि., शत., पू.भा., उ.भा., रेव., अश्वि

उपर्युक्त देहलीचक्र स्थापना में चन्द्रनक्षत्र पुष्य गर्भस्थान में आ रहा है, जिसका फल सुख है अतः उक्त दिन देहली चक्रानुसर द्वारस्थापना शुभ है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. द्वारस्थापना के लिए चक्रशुद्धि में विचार होता है –

(क) कुम्भचक्र (ख) द्वारचक्र (ग) कूर्मचक्र (घ) मकरचक्र

2. द्वारचक्र में गणना होती हैं –

(क) सूर्यनक्षत्र से(ख) मंगलनक्षत्र से (ग) शुक्रनक्षत्र से(घ) शनिनक्षत्र से

3. यदि द्वारचक्र में सूर्यनक्षत्र से गणना करने पर 10 वां नक्षत्र, चन्द्रनक्षत्र हो तो निम्न फल मिलता है –

(क) उद्वास (ख) सौख्य (ग) मरण (घ) लक्ष्मीप्राप्ति

4. अभिजित् नक्षत्र की गणना निम्न नक्षत्र के बाद होती है –

(क) उत्तरा फाल्गुनी (ख) उत्तराषाढ़ा (ग) उत्तरा भाद्रपद (घ) रोहिणी

5. देहलीचक्र में गणना होती है –

(क) सूर्यनक्षत्र से (ख) मंगलनक्षत्र से (ग) शुक्रनक्षत्र से (घ) शनिनक्षत्र से

उत्तरा – 1. ख, 2. क, 3. क, 4. ख, 5. ख

2.3.5 कपाटमुहूर्त विचार

प्रायः भवन निर्माण के अन्तिम चरण में साजसज्जा के साथ द्वारशाखा पर कपट या किवाड़ लगाने का कार्य होता है। कपाट के लगाने के लिए भी मुहूर्त का शोधन होता है। जिसमें मुख्यतया शुभनक्षत्र, वारादि का विचार किया जाता है। इस विषय में बृहद्वास्तुमाला में उल्लिखित है कि –

चरे स्थिरे च नक्षत्रे बुधशुक्रदिने तिथौ।
शुभे कपाटयोगः स्याद्द्विस्वाभोदये गृहे।।

अर्थात् चरसंज्ञक नक्षत्र (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) एवं स्थिरसंज्ञक नक्षत्रों (रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा) में बुधवार एवं शुक्रवार के दिन, शुभतिथियों अर्थात् रिक्ता एवं अमावस्या (4, 9, 14 एवं 30) को छोड़कर अन्य तिथियों में तथा द्विस्वभाव राशियों (मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन राशि) के लग्न में कपाट (दरवाजा) लगाना शुभ होता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. निम्न में से चरसंज्ञक नक्षत्र है –

(क) अश्विनी (ख) पुनर्वसु (ग) रोहिणी (घ) रेवती

2. कपाट लगवाने के लिए निम्न नक्षत्र ग्राह्य है –

(क) अश्विनी (ख) भरणी (ग) उत्तरा भाद्रपदा (घ) रेवती

3. कपाटमुहूर्त में निम्न वार ग्राह्य है –

(क) सूर्यवार (ख) मंगलवार (ग) गुरूवार (घ) शुक्रवार

4. कपाट लगवाने के लिए निम्न राशियां शुभ होती हैं –

(क) चरराशियां (ख) स्थिरराशियां (ग) द्विस्वभावराशियां (घ) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर – 1. ख, 2. ग, 3. घ, 4. ग

–अभ्यासप्रश्न–

1. सही या गलत बताईये–

क. द्वारस्थापना के लिए शनिवार ग्राह्य है।

ख. द्वारस्थापना हेतु अष्टमी तिथि शुभ है।

ग. द्वार स्थापित करने के लिए चर राशि वाले लग्न शुभ होते है।

घ. द्वारचक्र में सूर्यनक्षत्र से गणना करके गुरूनक्षत्र की स्थिति देखकर शुभाशुभ विचार किया जाता है।

ड. धनुराशि वाले लग्न में द्वार पर किवाड़ लगाना शुभ रहता है।

2. रिक्तस्थान भरिये –

क. मुहूर्तमुक्तावली के अनुसार नन्दा, जया तथा पूर्णा संज्ञक तिथियां द्वारस्थापन के लिए शुभ है।

ख. गुरू के मत के अनुसार .... द्वारस्थापन के लिए विशेष शुभ है।

ग. स्थिर राशि के लग्नों में द्वारशाखा की स्थापना करनी चाहिए।

घ. सर्वप्रथम सूर्य नक्षत्र से 4 नक्षत्र तक गिनकर उनको द्वार चक्र में शिर स्थान में रखना चाहिए।

ड. अभिजित् नक्षत्र का मान .... माना गया है।

च. .... नक्षत्रों में द्वार पर कपाट अर्थात् किवाड़ लगाना शुभ रहता है।

2.4 गृहप्रवेश मुहूर्त में विचारणीय विषय –

गृहप्रवेश के तीन भेद हैं –

1. अपूर्व गृह प्रवेश अर्थात् नये बने हुए भवन में वास्तुपूजनादि के बाद प्रवेश।
2. सपूर्व गृह प्रवेश अर्थात् बन्द पड़े हुए या यात्रा के बाद बहुत लम्बे समय बाद घर में पुनः प्रवेश करना।
3. जीर्ण गृह प्रवेश अर्थात् पुराने मकान का जीर्णोद्धार करने के बाद का गृहप्रवेश।

यहाँ अपूर्व गृहप्रवेश अर्थात् नए घर में प्रवेश एवं सपूर्व अर्थात् यात्रा से लौटने के बाद गृह में प्रवेश के मुहूर्त का विचार किया जा रहा है।

2.4.1 कालशुद्धि विचार –

गृहारम्भमुहूर्त में कहे गए कालशुद्धि का विचार ही अपूर्व गृह प्रवेश मुहूर्त में भी करना चाहिए। आप पहले से ही जानते हैं कि हरिशयन, होलाष्टक, गुरू व शुक्र का अस्तांगत होना, अधिकमास, भीष्मपंचक, श्राद्धपक्ष आदि का निषेध गृहारम्भमुहूर्त में होता है। ऐसा ही विचार यहाँ भी करना चाहिए। यहाँ ध्यान देना चाहिए कि नया गृहप्रवेश एवं लम्बी यात्रा के बाद गृहप्रवेश उत्तरायण (मकर संक्रान्ति से कर्क संक्रान्ति तक) में ही करना चाहिए। नये घर में प्रवेश दिन या रात्रि दोनों समय ही किया जा सकता है। सपूर्व गृह प्रवेश रात्रि में न होर दिन में ही शुभ होता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. गृहप्रवेश होता है –

(क) दो प्रकार का (ख) तीन प्रकार का
(ग) चार प्रकार का (घ) पाँच प्रकार का

2. गुरू व शुक्र के अस्त होने पर नहीं किया जाता है –

(क) सपूर्व गृहप्रवेश (ख) अपूर्व गृहप्रवेश
(ग) जीर्ण गृहप्रवेश (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. मकर संक्रान्ति से कर्क संक्रान्ति तक होता है –
(क) दक्षिण गोल (ख) उत्तर गोल
(ग) दक्षिणायन (घ) उत्तरायण

4. रात्रि में न होकर दिन में ही शुभ होता है –
(क) सपूर्व गृहप्रवेश (ख) अपूर्व गृहप्रवेश
(ग) जीर्ण गृहप्रवेश (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

उत्तर – 1–ख, 2–ख, 3–घ, 4–क

2.4.2 मासशुद्धि विचार –

अपूर्व एवं सपूर्व, दोनों प्रकार के गृहप्रवेश में माघ, फाल्गुन, वैशाख व ज्येष्ठ मास श्रेष्ठ है। नारद के मतानुसार मार्गशीर्ष (अगहन) एवं कार्तिक मास मध्यम मास है। मतान्तर है कि गृहारम्भ में कहे गए मास, नक्षत्र व वार में नये घर में तथा तृणगृह में सभी मासों में प्रवेश किया जा सकता है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि कुम्भ का सूर्य गृह प्रवेश में वर्जित करना चाहिए परन्तु सौरमास प्रवेश में ग्रहण नहीं किया जाता है।

बोध प्रश्न– सही विकल्प चुनिए –

1. गृहप्रवेश में निम्न मास श्रेष्ठ है –
(क) चैत्र (ख) वैशाख
(ग) भाद्रपद (घ) आश्विन

2. तृणगृह में प्रवेश किया जा सकता है –
(क) चैत्र से श्रावण तक (ख) माघ से श्रावण तक
(ग) वैशाख से आश्विन तक (घ) सभी मासों में

3. नारद के मतानुसार गृह प्रवेश में निम्न मास मध्यम है –
(क) चैत्र (ख) आश्विन
(ग) कार्तिक (घ) पौष

4. कुछ विद्वानों के अनुसार निम्न राशि का सूर्य गृह प्रवेश में वर्जित करना चाहिए –
(क) कुम्भ (ख) मीन
(ग) मेष (घ) वृष

उत्तर – 1–ख, 2–घ, 3–ग, 4–क.

2.4.3 पंचांगशुद्धि विचार –

तिथि – सम्पूर्ण शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में दशमी तिथि तक गृहप्रवेश शुभ है। 1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 12, 13 एवं 15 तिथियां प्रशस्त है। इनमें भी दिशानुरूप मुखवाले घरों के अनुसार प्रवेश हेतु निम्न तिथियां कही गई है –

गृहमुख / मुख्य द्वारदिशा तिथि

पूर्व	5, 10, 15
दक्षिण	1, 6, 11
पश्चिम	2, 7, 12
उत्तर	3, 8, 13

वार – गृहप्रवेश के लिए चन्द्र, बुध, गुरू, शुक्र एवं शनिवार प्रशस्त हैं। मतान्तर से शनिवार में गृहप्रवेश करने से चोरभय रहता है।

नक्षत्र – गृहप्रवेश के लिए उत्तरा फाल्गुनी., उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती और शतभिषा नक्षत्र शुभ है। मुहूर्तचिन्तामणि में पुष्य, धनिष्ठा व शतभिषा के अतिरिक्त उपर्युक्त सभी नक्षत्र प्रशस्त कहे गये है। जबकि मतान्तर में रत्नमाला के अनुसार पुष्य, मूल, अश्विनी, स्वाती एवं श्रवण नक्षत्र भी ग्राह्य कहे गए है। गृहप्रवेश में ध्यातव्य है कि जिन नक्षत्रों में पापग्रह स्थित हों तथा जो नक्षत्र पापग्रह बिद्ध हों उन्हें त्याग देना चाहिए।

योग व करण – गृहप्रवेश के लिए योग व करण शुद्धि का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. गृहप्रवेश में निम्न तिथि श्रेष्ठ है –
   (क) कृष्ण चतुर्थी
   (ग) शुक्ल नवमी (घ) शुक्ल त्रयोदशी
2. दक्षिणमुख गृह में प्रवेश किया जा सकता है–
   (क) 1, 6, 11 तिथियों में (ख) 2, 7, 12 तिथियों में
   (ग) 3, 8, 13 तिथियों में (घ) 5, 10, 15 तिथियों में
3. गृहप्रवेश में निम्न नक्षत्र प्रशस्त है –
   (क) भरणी (ख) कृतिका
   (ग) मृगशिरा (घ) आर्द्रा
4. मतान्तर में निम्न नक्षत्र भी गृहप्रवेश हेतु ग्राह्यय है –
   (क) भरणी (ख) मूल
   (ग) कृतिका (घ) आर्द्रा

उत्तर – 1–घ, 2–क, 3–ग, 4–ख

2.4.4 लग्शुद्धि विचार

सामान्यतया चरराशि (मेष, कर्क, तुला व मकर) त्याज्य है परन्तु कुछ विद्वान कुम्भ को भी वर्जित मानते हैं। मतान्तर से स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक व कुम्भ) एवं द्विस्वभाव (मिथुन, कन्या, धनु व मीन) राशि ग्राह्य हैं। मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार जन्मलग्न व जन्मराशि से उपचय राशि (3, 6, 10, 11) एवं स्थिर (2, 5, 8, 11) राशि के लग्नों में गृहप्रवेश शुभ है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि निन्दित लग्न भी यदि शुभनवांश में हो अथवा मेष, मकर, तुला व कर्क राशि भी यदि गृहेश की राशि से उपचय (3, 6, 10, 11) में हो तो निन्दित लग्नों में भी गृहप्रवेश शुभद ही होता है। बृहद्वास्तुमाला में लल्ल के मतानुसार जन्मलग्न एवं जन्मराशि से द्वादशभावस्थ राशियों के उदयकाल में गृहप्रवेश का शुभाशुभफल निम्न प्रकार से वर्णित है –

स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8
फल	नैरोग्य	धन लाभ	धन लाभ	बन्धु नाश	संतति हानि	शत्रुक्षय	स्त्री नाश	गृहेश मरण

स्थान	9	10	11	12
फल	फोड़े फुन्सी रोग	कार्य सिद्धि	धन लाभ	अशुभ

प्रवेश लग्न से 1, 2, 3, 5, 7, 9, 10 एवं 11 भावों में शुभग्रह, 3, 6 व 11 भावों में पापग्रह एवं 4 व 8 भावों में कोई ग्रह न हो तो ऐसा लग्न प्रशस्त होता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. गृहप्रवेश में निम्न लग्न श्रेष्ठ है –

   (क) मेष, (ख) कर्क

   (ग) सिंह (घ) तुला

2. निन्दित लग्न भी शुभ होता है यदि –

   (क) लग्न शुभ नवांश में हो (ख) लग्न शुभ चतुर्थांश में हो

   (ग) लग्न शुभ द्रेष्काण में हो (घ) लग्न शुभ षष्ट्यंश में हो

3. जन्मलग्न एवं जन्मराशि से द्वादशभाव में स्थित राशि के उदयकाल में गृहप्रवेश का फल–

   (क) धनलाभ (ख) कार्यसिद्धि

   (ग) शत्रुक्षय (घ) अशुभ

4. गृहप्रवेशलग्न में निम्न भाव में किसी भी ग्रह की स्थिति नहीं होनी चाहिए –

   (क) प्रथम (ख) चतुर्थ

   (ग) सप्तम (घ) दशम

उत्तर – 1–ग, 2–क, 3–घ, 4–ख

2.4.5 विभिन्न शुभाशुभ विचार

वामरवि विचार – गृहप्रवेश लग्न से सूर्य की स्थित्यनुसार वामरवि का विचार होता है। वामरवि में गृहप्रवेश उत्तम माना जाता है। गृहप्रवेश लग्न से सूर्य 8,9, 10ए 11 एवं 12 वें भाव में हो तो पूर्वाभिमुख वामरवि होता है जो पूर्वाभिमुख गृहप्रवेश के लिए शुभ होता है। गृहप्रवेश लग्न से 5, 6, 7, 8, 9 वें भावों में रवि होने पर दक्षिणाभिमुख गृहप्रवेश शुभ जानना चाहिए। इसी प्रकार गृहप्रवेशलग्न से 2, 3, 4, 5, 6 वें भावों में सूर्य रहने पर पश्चिमाभिमुख तथा 11, 12, लग्न, दूसरे एवं तीसरे भावों मे सूर्य के रहने पर उत्तराभिमुख गृह में प्रवेश को शुभ जानें।

पृष्ठस्थशुक्र विचार – शुक्र का पूर्व आदि दिशाओं में परिभ्रमण चन्द्र के समान होता है। मेष, सिंह व धनुराशि में शुक्र के रहने पर पूर्वदिशा में वृष, कन्या व मकर राशि में स्थित शुक्र दक्षिण में, मिथुन, तुला व कुम्भ राशि में शुक्र के रहने पर पश्चिम में तथा कर्क, वृश्चिक व मीन राशि में रहने पर शुक्र उत्तर दिशा में माना जाता है। गृहप्रवेश के समय मुख्य द्वार में, जिस दिशा की ओर अभिमुख होकर गृहप्रवेश करना हो, उसके सामने की दिशा में स्थित शुक्र पृष्ठास्थ अर्थात् पीठ पीछे रहता है। जो शुभफलदायी होता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. गृहप्रवेश लग्न से वामरवि विचार होता है –
   (क) चन्द्र की स्थित्यनुसार (ख) सूर्य की स्थित्यनुसार
   (ग) गुरू की स्थित्यनुसार (घ) शनि की स्थित्यनुसार
2. गृहप्रवेश लग्न से सूर्य 8, 9, 10, 11 एवं 12 वें भाव में हो तो वामरवि होता है –
   (क) पूर्वाभिमुख (ख) दक्षिणाभिमुख
   (ग) उत्तराभिमुख (घ) पश्चिमाभिमुख
3. मिथुन, तुला व कुम्भ राशि में शुक्र हो तो शुक्र निम्न दिशा मे रहता है –
   (क) पूर्व (ख) दक्षिण
   (ग) उत्तर (घ) पश्चिम
4. गृहप्रवेश में शुक्र शुभफलदायी होता है।
   (क) वामस्थ (ख) सम्मुखस्थ
   (ग) पृष्ठस्थ (घ) दक्षिणस्थ

उत्तर – 1–ख, 2–क, 3–घ, 4–ग

2.4.6 चक्रशुद्धि विचार

गृहारम्भ में वृषावास्तुचक्र के विषय में आप पहले पढ़ ही चुके हैं। उसी प्रकार गृहप्रवेश में कुम्भ या कलश चक्र एवं आहुतिविचार चक्र के द्वारा चक्रशुद्धि का विचार किया जाता है। इन चक्रों द्वारा चक्रशुद्धि का उद्देश्य घर की स्थिरता, सौख्य, धन–धान्यादि का समृद्धि आदि के विषय में पूर्वानुमान करना है। इन दोनों चक्रों में कुम्भ चक्र द्वारा प्राप्त चक्रशुद्धि ही अधिक मान्य है।

कुम्भ या कलश चक्र विचार – जैसा कि आप समझ ही रहे होंगे कि कुम्भ अर्थात् घड़े की आकृति बनाकर कुम्भ चक्र का विचार किया जाता है। आचार्य रामदैवज्ञ के अनुसार गृहप्रवेश के दिन सूर्य जिस नक्षत्र पर स्थित है, उस नक्षत्र से गणना करनी चाहिए। सूर्य नक्षत्र को कलश के मुख में, उससे आगे के 4 नक्षत्र तक गिनकर उनको घड़े के पूर्व स्थान में रखना चाहिए। उससे आगे के 4 नक्षत्रों को गिनकर उनको दक्षिण स्थान में रखें। उसके अग्रिम 4 नक्षत्रों को गिनकर पश्चिम में, उससे आगे के 4 नक्षत्रों को उत्तर में, अग्रिम 4 नक्षत्रों को कलश के गर्भ (अन्दर) में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को गुदा (कलश की पेंदी) में तथा अग्रिम 3 नक्षत्र कलश के कण्ठ में दें। इस प्रकार कलशचक्र (कुम्भचक्र) बनाकर उसमें गृहप्रवेश के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र पर है, उसकी स्थिति जानकर निम्न तालिका के अनुसार उस दिन गृहप्रवेश करने का शुभ या अशुभ फल जानना चाहिए।

सूर्यनक्षत्र से गणना	1	2–5	6–9	10–13	14–17	18–21	22–24	25–27
कुम्भचक्र में स्थान	मुख	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	गर्भ	गुदा	कण्ठ
फल	अग्निदाह	चिन्ता	धनलाभ	धनप्राप्ति	कलह	विनाश	स्थिरता	स्थिरता

उदाहरण – दिनांक 6 जून 2011, सूर्यनक्षत्र – रोहिणी, चन्द्रनक्षत्र – पुष्य

सूर्यनक्षत्र से गणना	रोहि	मृग., आर्द्रा, पुन., पुष्य	आश्ले, मघा, पू. फा., उ. फा.	हस्त, चित्रा, स्वाती, विशा	अनु., ज्ये., मूल, पू. षा	उ.षा., श्रव, धनि, शत	पू.भा., उ.भा., रेव	अश्वि, भरणी, कृत्तिका
कुम्भचक्र में स्थान	मुख	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	गर्भ	गुदा	कण्ठ

यहाँ चन्द्रनक्षत्र पुष्य है जो कलशचक्र में पूर्व दिशा के अन्तर्गत है अतः गृहप्रवेश उक्त दिन कुम्भचक्र विचार के अनुसार चिन्ताकारक होने के कारण अशुभ है।

ख. आहुतिविचार – सूर्य नक्षत्र से 3–3 नक्षत्र आगे के गिनने पर नवग्रहों के मुख में आहुति पड़ने का विचार किया जाता है। चन्द्रनक्षत्र जिस ग्रह के अन्तर्गत दिखे, उसके अनुसार शुभाशुभ निम्न प्रकार से जानना चाहिए –

ग्रह	सूर्य	बुध	शुक्र	शनि	चन्द्र	भौम	गुरू	राहु	केतु
सूर्यनक्षत्र	1–3	4–6	7–9	10–12	13–15	16–18	19–21	22–24	25–27

से गणना									
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ

उदाहरण – दिनांक 6 जून 2011, सूर्यनक्षत्र – रोहिणी, चन्द्रनक्षत्र – पुष्य

ग्रह	सूर्य	बुध	शुक्र	शनि	चन्द्र	भौम	गुरू	राहु	केतु
सूर्यनक्षत्र से गणना	रोहणी	पुन,	मघा	हस्त	विशा.	मूल	श्रवण	पू.भा.	अश्वि
	मृग.	पुष्य	पू.फा.	चित्रा	अनु	पू.षा.	धनि	उ.भा	भरणी
	आर्द्रा	आश्ले	उ.फा	स्वाती	ज्ये.	उ.षा.	शत	रेवती	कृतिका

यहाँ चन्द्रनक्षत्र पुष्य है जो बुध के अन्तर्गत है अतः गृहप्रवेश उक्त दिन आहुति विचार के अनुसार शुभ है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. गृहप्रवेश में चक्रशुद्धि का विचार किया जाता है।
   (क) द्वारचक्र से (ख) भूमि चक्र से
   (ग) कूर्मचक्र से (घ) कुम्भ चक्र से
2. गृहप्रवेश के दिन सूर्य नक्षत्र एवं चन्द्र नक्षत्र एक ही हों तो कुम्भ चक्र के अनुसार फल होता है –
   (क) धनलाभ (ख) अग्निदाह
   (ग) कलह (घ) स्थिरता
3. कुम्भ चक्र में गर्भ स्थान में चन्द्र नक्षत्र होने पर गृह प्रवेश का फल है –
   (क) विनाश (ख) अग्निदाह
   (ग) कलह (घ) स्थिरता
4. आहुति विचार के अनुसार यदि गुरू के नक्षत्रों के अन्तर्गत चन्द्रनक्षत्र हो तो –
   (क) शून्य (ख) अशुभ
   (ग) शुभ (घ) कलह

उत्तर – 1–घ, 2–ख, 3–क, 4–ग

–अभ्यास प्रश्न–

3. सही या गलत बताईये –

क. अपूर्वगृहप्रवेश का तात्पर्य है यात्रा के बाद पुनः घर में प्रवेश करना।

ख. नवगृहप्रवेश उत्तरायण में करना चाहिए।

ग. गृहप्रवेश करने के लिए चर राशि वाले लग्न शुभ होते है।

घ. कुम्भचक्र में सूर्यनक्षत्र से गणना कर शुक्रस्थित नक्षत्र की स्थिति देखकर शुभाशुभ विचार किया जाता है।

ङ. वामरवि होने पर गृहप्रवेश शुभ रहता है।
4. रिक्तस्थान भरिये –
क. सम्पूर्ण शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में .... तिथि एक गृहप्रवेश शुभ है।
ख. .... तिथियां गृहप्रवेश के लिए शुभ है।
ग. रत्नमाला के अनुसार .... नक्षत्र भी गृहप्रवेश के लिए शुभ है।
घ. मतान्तर से .... के लग्नों में गृहप्रवेश करना चाहिए।
ङ. सूर्य नक्षत्र से 18 वें नक्षत्र से 21 वें नक्षत्र तक गिनकर उनको कुम्भ चक्र में .... स्थान में रखना चाहिए।
च. गृहप्रवेश लग्न से सूर्य .... भावों में होने पर उत्तरमुखगृह के लिए वामरवि होता है।

2.5 सारांश –

शुभ मुहूर्त में गृहारम्भ होा जाने के बाद गृह निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। जिसमें द्वारस्थापना का अपना विशिष्ट महत्व है। द्वारस्थापना के लिए मुहूर्त शोधन में कालशुद्धि का विचार गृहारम्भमुहूर्त के समान ही करना चाहिए। पंचांगशुद्धि के अन्तर्गत तिथि, नक्षत्र, वारादि का शोधन करते हुए शुभलग्न का चयन करना चाहिए। द्वारस्थापना में द्वारचक्रशुद्धि का अवश्य विचार करना चाहिए। इस प्रकार भलीभांति छांटे हुए मुहूर्त में द्वारस्थापना करने पर शुभफल की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार द्वार में किवाड़ लगाने के लिए भी तिथि, नक्षत्र, वारादि का शोधन करते हुए शुभलग्न का शोधन करना चाहिए। गृहनिर्माणोपरान्त वास्तुपूजनादि पूर्वक गृहप्रवेश सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं वास्तुकर्म सुसम्पन्नता का प्रतीक है। इसके लिए भी कालशुद्धि, पंचांगशुद्धि, लग्नशुद्धि आदि का अच्छी तरह विचार करना चाहिए। साथ ही गृहप्रवेश के लिए वामरविविचार, पृष्ठस्थशुक्रविचार एवं कुम्भचक्रशुद्धि अवश्य करनी चाहिए। यदि चाहें तो गृहप्रवेश दिन की शुभता जानने के लिए आहुतिचक्र विचार भी किया जा सकता है। इस प्रकार भलीभांति शोधित मुहूर्त में गृहप्रवेश करने पर घर में आने वाली सभी विघ्न–बाधाएं दूर होकर गृहनिवासियों को सभी प्रकार की सुख–सुविधाएं एवं शुभफल की प्राप्ति होती है।

2.6 शब्दावली

उत्तरायण – मकर संक्रान्ति अर्थात् लगभग 14 जनवरी से लेकर कर्क संक्रान्ति अर्थात् लगभग 16 जुलाई तक उत्तरायण होता है। क्योंकि इस समय सूर्य अपने दक्षिण के चरमस्थान से उत्तर की ओर आने लगते हैं। अतः उत्तर की ओर अयन अर्थात् चलन ही उत्तरायण है।

चरादि राशि – भारतीय ज्योतिष में बारह राशियों को उनके गुण, स्वाभावादि के अनुसार तीन भेदों में बांटा गया है – चर, स्थिर एवं द्विस्वभाव। जिन राशियों का स्वभाव पर अर्थात् चंचल या चलायमान है उनकी चर संज्ञा है। मेष, कर्क, तुला व मकर राशियां चर है। इसी प्रकार धैर्ययुक्त, स्थिर मति वाली राशियां वृष, सिंह, वृश्चिक व कुम्भ राशियां स्थिरसंज्ञक

है। जो मध्यम स्थिति को धारण करके, चर एवं स्थिर दोनों के मिश्रित स्वाभाव वाली राशियां है वे मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन द्विस्वभाव संज्ञक है।

नवांश – एक राशि मे 30 अंश होते है। इसके नौ भाग करने पर एक भाग का मान 3 अंश 20 कला का होता है। इस प्रकार एक राशि में 3 अंश 20 कला के 9 खण्ड होंगे इसे ही नवांश कहते है। प्रत्येक नवांश की संज्ञा भी मेषादि क्रम से होती है। जैसे मेष राशि का प्रथम नवांश मेष, द्वितीय वृष आदि। यहाँ ध्यान देना है कि मेष, सिंह व धनु राशि में नवांश की गणना मेष से, वृष, कन्या एवं मकर राशि में नवांश की गणना मकर से, मिथुन, तुला एवं कुम्भ राशि में नवांश की गणना तुला से तथा कर्क, वृश्चिक एवं मीन राशि में नवांश की गणना कर्क से करनी चाहिए।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

1. क. गलत, ख. सही, ग. गलत, घ. गलत, ड. सही

2. क. मुहूर्तमुक्तावली

ख. ध्रुवसंज्ञकनक्षत्र (उत्तराषाढ़ा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपदा एवं रोहिणी), चित्रा तथा भृगसिरा नक्षत्र।

ग. स्थिरराशि अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ राशि।

घ. शिर।

ड. उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के अन्तिम चरण तथा श्रवण के कुल मान के पन्द्रहवें भाग के जोड़ के बराबर।

च. चरसंज्ञक नक्षत्र (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) एवं स्थिर संज्ञक नक्षत्रों (रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा) में।

3. क. गलत, ख. सही, ग. गलत, घ. गलत, ड. सही

4. क. दशमी

ख. 1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 12, 13, 15

ग. पुष्य, मूल, अश्विनी, स्वाती एवं श्रवण

घ. स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक व कुम्भ) एवं द्विस्वभाव (मिथुन, कन्या, धनु व मीन) राशि

ड. गर्भ

च. लग्न, द्वितीय, तृतीय, एकादश एवं द्वादश

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दैवज्ञ श्रीरामाचार्य, मुहूर्त चिन्तामणि, टीका–केदारदत्त जोशी, पीयूषधारा टीकासहित, (द्वितीयसंस्करण 1979, पुनर्मुद्रण 1995), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

2. श्रीरामनिहोरद्विवेदी, बृहद्वास्तुमाला, सम्पादन–डॉ0 ब्रह्मानन्दत्रिपाठी, (संस्करण 2001), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

3. प्रो. शुक्रदेव चतुर्वेदी, भारतीय वास्तुशास्त्र, (संस्करण 2004), श्रीलालबहादुर – शास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली।

4. डॉ. देवीप्रसाद त्रिपाठी, वास्तुसार, (संस्करण 2006) परिक्रमा प्रकाशन, शहादरा, दिल्ली

5. डॉ. अशोक थपलियाल, वास्तुप्रबोधिनी, (संस्करण 2011), अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, विजयनगर, दिल्ली।

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. दैवज्ञ श्रीरामाचार्य, मुहूर्त चिन्तामणि, टीका–केदारदत्त जोशी, पीयूषधारा टीकासहित, (द्वितीयसंस्करण 1979, पुनर्मुद्रण 1995), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

2. श्रीरामनिहोरद्विवेदी, बृहद्वास्तुमाला, सम्पादन–डॉ0 ब्रह्मानन्दत्रिपाठी, (संस्करण 2001), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

3. प्रो. शुक्रदेव चतुर्वेदी, भारतीय वास्तुशास्त्र, (संस्करण 2004), श्रीलालबहादुर – शास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली।

4. डॉ. देवीप्रसाद त्रिपाठी, वास्तुसार, (संस्करण 2006) परिक्रमा प्रकाशन, शहादरा, दिल्ली

5. डॉ. अशोक थपलियाल, वास्तुप्रबोधिनी, (संस्करण 2011), अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, विजयनगर, दिल्ली।

6. प्रो. आजादमिश्र, श्री भोजराजपंचांग, (संस्करण 2011), अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, विजयनगर दिल्ली।

7. प्रो. वाचस्पति उपाध्याय, विद्यापीठ पंचांग, (संस्करण 2011–12), श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली

8. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, (संस्करण 2002), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्वारस्थापन में मासशुद्धि व पंचांगशुद्धि क्या होती है? विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. द्वारस्थापन में लग्नशुद्धि का विचार कैसे किया जाता है? विश्लेषण कीजिए।
3. द्वारस्थापना हेतु चक्रशुद्धि किस प्रकार की जाती है? विस्तृत निबन्ध लिखिए।
4. गृहप्रवेश में मुहूर्तशोधन में कालशुद्धि, मासशुद्धि एवं पंचांगशुद्धि का विचार किस प्रकार किया जाता है? विश्लेषण कीजिए।
5. गृहप्रवेश में शुभ लग्न का विचार कैसे होता है? विवेचना कीजिए।
6. गृहप्रवेश में वामरवि एवं पृष्ठस्थ शुक्र विचार पर निबन्ध लिखिए।
7. गृहप्रवेश में चक्रशुद्धिविचार के विषय में आप क्या जानते है? कल्पिद उदाहरण सहित लिखिए।

इकाई – 3 जीर्णगृहप्रवेश मुहूर्त एवं जीर्णकूपारम्भ मुहूर्त

3.1 प्रस्तावना

मुहूर्तशास्त्र से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह तृतीय इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि द्वार स्थापना एवं नये गृह में प्रवेश के मुहूर्त विचार में किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ? द्वारस्थापना एवं नये गृह में प्रवेश के मुहूर्तशोधन में कालशुद्धि, मासशुद्धि, पंचांगशुद्धि, लग्नशुद्धि, चक्रशुद्धि आदि का विचार किस प्रकार करना चाहिए ? साथ ही कपाट लगवाने के लिए मुहूर्तशोधन एवं गृहप्रवेश में वामरवि व पृष्ठास्थ शुक्र का विचार किस प्रकार करना चाहिए? आदि।

गृहभवन की आयु पूरी होने के बाद मकान की खराब हालत होने, अत्यधिक टूट–फूट या पुराने हो जाने पर, आग से जल जाने अथवा वर्षा, भूकम्पादि प्राकृतिक आपदाओं के कारण क्षतिग्रस्त होने पर उसके जीर्णोद्धार अर्थात् मरम्मत आदि के बाद या तोड़कर पुनः बनाए जाने पर जो गृहप्रवेश किया जाता है, उसे द्वन्द्व या जीर्णगृहप्रवेश कहा जाता है। जीर्णोद्धार के बाद घर में पहले के समान सुख, शान्ति एवं विघ्न–बाधा रहित सुविधाओं के उपभाग की मनोकामना से जीर्णगृहप्रवेश शुभ समय पर करने का विधान है। इसी प्रकार पुराने एवं कम पानी वाले कुओं की मरम्मत करने के लिए भी शुभमुहूर्त आवश्यक है। अतः हमारे प्राचीन ऋषि–मुनियों एवं आचार्यों ने गहन चिन्तन, मनन एवं विश्लेषण करने के बाद जीर्णगृहप्रवेश एवं जीर्णकूपारम्भ के मुहूर्तों का प्रतिपादन किया है कि किन किन तिथियों, नक्षत्रों, लग्नादियों में जीर्णगृहप्रवेश एवं जीर्णकूपारम्भ शुभ होता है। प्रस्तुत इकाई में विस्तारपूर्वक जीर्णगृहप्रवेश एवं जीर्णकूपारम्भ के मुहूर्तों के विभिन्न विचारणीय बिन्दुओं का विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जीर्णगृहप्रवेश एवं जीर्णकूपारम्भ मुहूर्त के विषय को समझा सकेंगे। साथ ही इस सम्बनध में विभिन्न मतों को जानकर मुहूर्तशोधन के विभिन्न तथ्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद –

1. आप बता सकेंगे कि किस प्रकार जीर्णगृहप्रवेश एवं जीर्णकूपारम्भ मुहूर्तों का साधन किया जाता है।
2. जीर्णगृहप्रवेश एवं जीर्णकूपारम्भ मुहूर्त शोधन के विषय में विभिन्न मतों को श्रेणीबद्ध का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. जीर्णगृहप्रवेश एवं जीर्णकूपारम्भ मुहूर्त का व्यावहारिक प्रयोग कर सकेंगे।
4. समझा सकेंगे कि जीर्णगृहप्रवेश एवं जीर्णकूपारम्भ मुहूर्त का ज्ञान व्यावहारिक है, जो जन सामान्य की सेवा, धनप्राप्ति व यशप्राप्ति में सहायक है। इसी कारण इनका अध्ययन व साधन किया जाता है।

3.3 जीर्णगृहप्रवेश के मुहूर्तशोधन में विचारणय आयाम –

पूर्व की इकाई के अध्ययन से आप जानते ही है कि गृहप्रवेश के तीन भेद है –
1. अपूर्व गृह प्रवेश अर्थात् नये बने हुए भवन में वास्तुपूजनादि के बाद प्रवेश।
2. सपूर्व गृह प्रवेश अर्थात् बन्द पड़े हुए या यात्रा के बाद बहुत लम्बे समय बाद घर में पुनः प्रवेश करना।
3. जीर्ण गृह प्रवेश अर्थात् पुराने मकान का जीर्णोद्धार करने के बाद का गृहप्रवेश।

इससे पूर्व की इकाई में आप अपूर्व एवं सपूर्व गृहप्रवेश के मुहूर्तशोधन के विषय में पढ़ चुके है। अब जीर्णगृहप्रवेश अर्थात् जीर्णोद्धार के बाद तैयार घर में प्रवेश के मुहूर्त का विचार किया जा रहा है। मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार जीर्णगृहप्रवेश में लगभग अपूर्वगृहप्रवेश की तरह ही मुहूर्तशोधन होता है परन्तु इसमें निम्न विशेष विचार भी करना चाहिए –

जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि मार्गोर्जयोः श्रावणिकेऽपि सत्स्यात्।
वेशोऽम्बुपेज्यानिलवासवेषु नावश्यमस्तादिविचारणाऽत्र।

अर्थात् पुराने या अग्नि आदि से क्षतिग्रस्त भवन का उद्धार या नया बनवा दिए जाने पर गृहप्रवेश के लिए मार्गशीर्ष, कार्तिक एवं श्रावण मास भी शुभ होते है। साथ ही अपूर्वगृहप्रवेश के लिए कहे गए नक्षत्रों के अतिरिक्त शतभिषा, पुष्य एवं धनिष्ठा नक्षत्र भी श्रेष्ठ है। इसमें गुरू–शुक्रादि के अस्तादि कालशुद्धि का विचार नहीं करना चाहिए।

अब आप विस्तारपूर्वक जीर्णगृहप्रवेश के मुहूर्तशोधन के विषय में अध्ययन करेंगे।

3.3.1 कालशुद्धि विचार –

अपूर्वगृहप्रवेशमुहूर्त में कहे गए कालशुद्धि का विचार प्रायः जीर्णगृहप्रवेशमुहूर्त में भी होता है। आप पहले से ही जानते हैं कि हरिशयन, होलाष्टक, गुरू व शुक्र का अस्तांगत होना, अधिकमास, भीष्मपंचक, श्राद्धपक्ष आदि का निषेध अपूर्वगृहप्रवेश में होता है। इनमें से श्राद्धपक्ष, होलाष्टक आदि का विचार यहाँ भी करना चाहिए। परन्तु यहाँ ध्यान देना चाहिए कि जीर्णगृहप्रवेश, गुरू व शुक्र के अस्तांगत होने पर भी किया जा सकता है। मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधारा टीका में उल्लिखित है कि शुक्रास्त, गुरू–अस्त, इन दोनों का बाल्यत्व व वृद्धत्व, सिंहस्थ गुरू, मकरस्थ गुरू, लुप्तसंवत्सरादि दोषों का विचार जीर्णगृहप्रवेश में करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसी प्रकार नया गृहप्रवेश उत्तरायण (मकरसंक्रान्ति से कर्कसंक्रान्ति तक) में ही करना चाहिए परन्तु जीर्णगृहप्रवेश, उत्तरायण एवं दक्षिणायन, दोनों में ही किया जा सकता है। यह अवश्य है कि जिस प्रकार नये घर में प्रवेश दिन या रात्रि दोनों समय ही किया जा सकता है। उसी प्रकार जीर्णगृहप्रवेश दिन या रात्रि, कभी भी शुभ होता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. जीर्णगृहप्रवेश होता है –

(क) उत्तरायण में (ख) दक्षिणायन में
(ग) उपर्युक्त दोनों में (घ) किसी में भी नहीं

2. गुरू व शुक्र के अस्त होने पर भी किया जाता है –

(क) गृहारम्भ (ख) अपूर्व गृहप्रवेश
(ग) जीर्ण गृहप्रवेश (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. श्राद्धपक्ष में भी करना चाहिए –
(क) अपूर्व गृहप्रवेश (ख) जीर्ण गृहप्रवेश
(ग) गृहारम्भ (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

4. पीयूषधारा टीका निम्न ग्रन्थ की टीका है –
(क) मुहूर्तचिन्तामणि (ख) मुहूर्तमार्तण्ड
(ग) मुहूर्तकल्पद्रुम (घ) बृहद्वास्तुमाला

उत्तर – 1–ग, 2–ग, 3–घ, 4–क

3.3.2 मासशुद्धि विचार –

अपूर्वगृहप्रवेश में कहे गये माघ, फाल्गुन, वैशाख व ज्येष्ठ मास जीर्णगृहप्रवेश के लिए भी श्रेष्ठ है। नारद के मतानुसार मार्गशीर्ष (अगहन) एवं कार्तिक मास अपूर्वगृहप्रवेश हेतु मध्यम मास है। परन्तु जीर्णगृहप्रवेश में उपर्युक्त मार्गशीर्ष व कार्ति मास के साथ श्रावण मास भी उत्तम होता है। गृहारम्भ में कहे गए मास, नक्षत्र व वार में नये घर में तथा तृणगृह में सभी मासों में प्रवेश किया जा सकता है। इसी प्रकार जीर्णगृहप्रवेश में भी समझन चाहिए। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि कुम्भ का सूर्य गृह प्रवेश में वर्जित करना चाहिए परन्तु सौरमास प्रवेश में ग्रहण नहीं किया जाता है। यहाँ केवल चन्द्रमास का ही विचार होता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. जीर्णगृहप्रवेश में निम्न मास श्रेष्ठ है –
(क) चैत्र (ख) श्रावण
(ग) भाद्रपद (घ) आश्विन

2. जीर्णगृहप्रवेश में निम्न मास ग्राह्य नहीं है –
(क) चैत्र (ख) श्रावण
(ग) कार्तिक (घ) मार्गशीर्ष

3. तीनों प्रकार के गृहप्रवेश में निम्न मास ग्राह्य है –
(क) श्रावण (ख) कार्तिक
(ग) मार्गशीर्ष (घ) माघ

4. गृहप्रवेश में विचार होता है –
(क) नक्षत्रमास (ख) सौरमास का
(ग) चान्द्रमास का (घ) उपर्युक्त सभी का

उत्तर – 1–ख, 2–क, 3–घ, 4–ग

3.3.3 पंचांगशुद्धि विचार –

तिथि – आप जानते हैं कि अपूर्व गृहप्रवेश में सम्पूर्ण शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में दशमी तिथि तक शुभ है। 1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 12, 13 एवं 15 तिथियां प्रशस्त है। इनमें भी दिशानुरूप मुखवाले घरों के अनुसार प्रवेश हेतु निम्न तिथियां कही गई है –

गृहमुख/मुख्यद्वारदिशा	तिथि
पूर्व	5, 10, 15
दक्षिण	1, 6, 11
पश्चिम	2, 7, 12
उत्तर	3, 8, 13

जीर्णगृहप्रवेश में भी उपर्युक्त तिथियां ही ग्राह्य है।

वार – पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि अपूर्व एवं सपूर्व गृहप्रवेश के लिए चन्द्र, बुध, गुरू, शुक्र एवं शनिवार प्रशस्त है। मतान्तर से शनिवार में गृहप्रवेश करने से चोरभय रहता है। जीर्णगृहप्रवेश में भी इसी प्रकार रविवार एवं मंगलवार को छोड़कर अन्य वार प्रशस्त है।

नक्षत्र– आप जानते हैं कि गृहप्रवेश के लिए उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती और शतभिषा नक्षत्र शुभ है। मतान्तर में पुष्य, मूल, अश्विनी, स्वाती एवं श्रवण नक्षत्र भी ग्राह्य कहे गए है। मुहूर्तचिन्तामणि में उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, मृगशिरा, अनुराधा एवं रेवती नक्षत्र अपूर्वगृहप्रवेश हेतु प्रशस्त कहे गए है। वहीं जीर्णगृहप्रवेश में अपूर्वगृहप्रवेश हेतु प्रशस्त कहे गए नक्षत्रों के अतिरिक्त स्वाती, पुष्य, धनिष्ठा एवं शतभिषा नक्षत्र भी ग्राह कहे गए है। तीनों प्रकार के गृहप्रवेश में ध्यातव्य है कि जिन नक्षत्रों में पापग्रहस्थित हों तथा जो नक्षत्र पापग्रह बिद्ध हों उन्हें त्याग देना चाहिए।

योग व करण – तीनों ही प्रकार के गृहप्रवेश के लिए योग व करणशुद्धि का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. त्रिविध गृहप्रवेश में निम्न तिथि श्रेष्ठ है –

(क) कृष्ण चतुर्थी (ख) कृष्ण चतुर्दशी

(ग) शुक्ल नवमी (घ) शुक्ल त्रयोदशी

2. दक्षिणमुख गृह में प्रवेश किया जा सकता है –

(क) 1, 6, 11 तिथियों में (ख) 2, 7, 12 तिथियों में

(ग) 3, 8, 13 तिथियों में (घ) 5, 10, 15 तिथियों में

3. मुहूर्तचिन्तामणि के मत में जीर्णगृहप्रवेश में निम्न नक्षत्र प्रशस्त है –

(क) भरणी (ख) कृतिका

(ग) धनिष्ठा (घ) आर्द्रा

4. मतान्तर में निम्न नक्षत्र भी गृह प्रवेश हेतु ग्राह्य है –

(क) भरणी (ख) मूल

(ग) कृतिका (घ) आर्द्रा

उत्तर – 1–घ, 2–क, 3–ग, 4–ख

3.3.4 लग्नशुद्धि विचार –

त्रिविध गृह प्रवेश में चर राशि (मेष, कर्क, तुला व मकर) त्याज्य हैं परन्तु कुछ विद्वान कुम्भ को भी वर्जित मानते है। अतः स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक व कुम्भ) एवं द्विस्वभाव (मिथुन, कन्या, धनु व मीन) राशि ग्राह्य है। मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार जन्मलग्न व जन्मराशि से उपचय राशि (3, 6, 10, 11) एवं स्थिर (2, 5, 8, 11) राशि के लग्नों में त्रिविध गृहप्रवेश शुभ है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि निन्दित लग्न भी यदि शुभनवांश में हो अथवा मेष, मकर, तुला व कर्क राशि भी यदि गृहेश की राशि से उपचय (3, 6, 10, 11) में हो तो निन्दित लग्नों में भी गृहप्रवेश शुभद ही होता है। बृहद्वास्तुमाला में वर्णित लल्ल के मतानुसार जन्मलग्न एवं जन्मराशि से द्वादशभावस्थ राशियों के उदयकाल में गृहप्रवेश का शुभाशुभफल निम्न प्रकार से होता है –

स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9
फल	नैरोग्य	धन लाभ	धन लाभ	बन्धु नाश	संतति हानि	शत्रुक्षय	स्त्री नाश	गृहेश मकरण	फोड़े फुन्सी रोग

स्थान	10	11	12
फल	कार्य सिद्धि	धन लाभ	अशुभ

प्रवेश लग्न से 1, 2, 3, 5, 7, 9, 10 एवं 11 भावों में शुभग्रह, 3, 6, व 11 भावों में पापग्रह एवं 4 व 8 भावों में कोई ग्रह न हो तो ऐसा लग्न प्रशस्त होता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. जीर्णगृहप्रवेश में निम्न लग्न श्रेष्ठ है –

(क) कर्क (ख) तुला

(ग) वृश्चिक (घ) मकर

2. निन्दित लग्न भी शुभ होता है यदि मेष, मकर, तुला व कर्क राशि गृहेश की राशि से निम्न स्थानों में हो –

(क) उपचय (3, 6, 10, 11) (ख) केन्द्र (1, 4, 7, 10)

(ग) त्रिकोण (1, 9, 5) (घ) त्रिक (3, 6, 11)

3. जन्मलग्न एवं जन्मराशि से पंचक भाव में स्थित राशि के उदयकाल में गृह प्रवेश का फल–

(क) धनलाभ (ख) कार्यसिद्धि

(ग) संततिसुख (घ) संततिहानि

4. जीर्णगृहप्रवेशलग्न में निम्न भाव में किसी भी ग्रह की स्थिति नहीं होनी चाहिए –

(क) सप्तम (ख) अष्टम

(ग) नवम (घ) दशम

उत्तर – 1–ग, 2–क, 3–घ, 4–ख

3.3.5 विभिन्न शुभाशुभ विचार

वामरवि विचार – गृहप्रवेश लग्न से सूर्य की स्थित्यनुसार वामरवि का विचार होता है। वामरवि में गृहप्रवेश उत्तम माना जाता है। गृहप्रवेश लग्न से सूर्य 8, 9, 10, 11 एवं 12 वें भाव में हो तो पूर्वाभिमुख वामरवि होता है जो पूर्वाभिमुख गृहप्रवेश के लिए शुभ होता है। गृहप्रवेश लग्न से 5, 7, 8, 9 वें भावों में रवि होने पर दक्षिणाभिमुख गृहप्रवेश शुभ जानना चाहिए। इसी प्रकार गृहप्रवेशलग्न से 2, 3, 4, 5, 6 वें भावों में सूर्य रहने पर पश्चिमाभिमुख तथा 11, 12 लग्न, दूसरे एवं तीसरे भावों में सूर्य के रहने पर उत्तराभिमुख गृह में प्रवेश को शुभ जानें। यह वामरवि विचार त्रिविध प्रवेश में देखना चाहिए।

पृष्ठस्थशुक्र विचार – शुक्र का पूर्व आदि दिशाओं में परिभ्रमण चन्द्र के समान होता है। मेष, सिंह व धनु राशि में शुक्र के रहने पर पूर्व दिशा में, वृष, कन्या व मकर राशि में स्थित शुक्र दक्षिण में, मिथुन, तुला व कुम्भ राशि में शुक्र के रहने पर पश्चिम में तथा कर्क, वृश्चिक व मीन राशि में रहने पर शुक्र उत्तर दिशा में माना जाता है। गृह प्रवेश के समय मुख्य द्वार में, जिस दिशा की ओर अभिमख होकर गृहप्रवेश करना हो, उसके सामने की दिशा में स्थित शुक्र पृष्ठस्थ अर्थात् पीठ पीछे रहता है। जो शुभफलदायी होता है। जीर्णगृह प्रवेश में भी इसका विचार किया जाना चाहिए।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. गृहप्रवेश लग्न से निम्न की स्थिति के अनुसार वामरवि विचार होता है –

(क) सूर्य (ख) चन्द्र

(ग) गुरू (घ) शनि

2. गृहप्रवेश लग्न से सूर्य 2, 3, 4, 5, 6 वें भावों में हो तो वामरवि होता है –

(क) पूर्वाभिमुख (ख) पश्चिमाभिमुख

(ग) उत्तराभिमुख (घ) दक्षिणाभिमुख

3. कर्क, वृश्चिक व मीन राशि में शुक्र हो तो शुक्र निम्न दिशा में रहता है –

(क) पूर्व (ख) दक्षिण

(ग) पश्चिम (घ) उत्तर

4. गृहप्रवेश में शुक्र शुभ होता है।

(क) पूर्वस्थ (ख) सम्मुखस्थ

(ग) पृष्ठस्थ (घ) पश्चिस्थ

3.3.6 चक्रशुद्धि विचार –

त्रिविधगृहप्रवेश में कुम्भ या कलश चक्र एवं आहुतिविचार चक्र के द्वारा चक्रशुद्धि का विचार किया जाता है। इन चक्रों द्वारा चक्रशुद्धि का उद्देश्य घर की स्थिरत, धन–धान्यादि की समृद्धि आदि के विषय में पूर्वानुमान करना है। इन दोनों चक्रों में कुम्भ चक्र द्वारा प्राप्त चक्रशुद्धि ही अधिक मान्य है।

कुम्भ या कलश चक्र विचार – जैसा कि आप समझ ही रहे होंगे कि कुम्भ अर्थात् घड़े की आकृति बनाकर कुम्भ चक्र का विचार किया जाता है। आचार्य रामदैवज्ञ के अनुसार गृहप्रवेश के दिन सूर्य जिस नक्षत्र पर स्थित है, उस नक्षत्र से गणना करनी चाहिए। सूर्य नक्षत्र को कलश के मुख में, उससे आगे के 4 नक्षत्र तक गिनकर उनको घड़े के पूर्व स्थान में रखना चाहिए। उससे आगे के 4 नक्षत्रों को गिनकर उनको दक्षिण स्थान में रखें। उसके अग्रिम 4 नक्षत्रों को गिनकर पश्चिम में, उससे आगे के 4 नक्षत्रों को उत्तर में, अग्रिम 4 नक्षत्रों को कलश के गर्भ (अन्दर) में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को गुदा (कलश की पेदी) में तथा अग्रिम 3 नक्षत्र कलश के कण्ठ में दें। इस प्रकार कलश चक्र (कुम्भ चक्र) बनाकर उसमें गृहप्रवेश के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र पर है, उसकी स्थिति जानकर निम्न तालिका के अनुसार उस दिन गृहप्रवेश करने का शुभ या अशुभ फल जानना चाहिए।

सूर्यनक्षत्र से गणना	1	2–5	6–9	10–13	14–17	18–21	22–24	25–27
कुम्भचक्र में स्थान	मुख	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	गर्भ	गुदा	कण्ठ
फल	अग्निदाह	चिन्ता	धनलाभ	धनप्राप्ति	कलह	विनाश	स्थिरता	स्थिरता

उदाहरण – दिनांक 6 जून 2011, सूर्यनक्षत्र – रोहिणी, चन्द्रनक्षत्र – पुष्य

सूर्यनक्षत्र से गणना	रोहि.	मृग., आर्द्रा, पुन., पुष्य	आश्ले, मघा, पू. फा., उ. फा.	हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा	अनु., ज्ये., मूल, पू.षा.	उ.षा. श्रवण, धनि., शत,	पू.भा., उ.भा., रेवती	अश्वि., भरणी, कृत्तिका
कुम्भचक्र में स्थान	मुख	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	गर्भ	गुदा	कण्ठ

यहाँ चन्द्रनक्षत्र पुष्य है जो कलशचक्र में पूर्व दिशा के अन्तर्गत है अतः गृहप्रवेश उक्त दिन कुम्भ चक्र विचार के अनुसार चिन्ताकारक होने के कारण अशुभ है।

ख. आहुति विचार – सूर्य नक्षत्र से 3–3 नक्षत्र आगे के गिनने पर नवग्रहों के मुख में आहुति पड़ने का विचार किया जाता है। चन्द्रनक्षत्र जिस ग्रह के अन्तर्गत दिखें, उसके अनुसार शुभाशुभ निम्न प्रकार से जानना चाहिए –

ग्रह	सूर्य	बुध	शुक्र	शनि	चन्द्र	भौम	गुरू	राहु	केतु
सूर्यनक्षत्र से गणना	1–3	4–6	7–9	10–12	13–15	16–18	19–21	22–24	22–25
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ

उदाहरण – दिनांक 6 जून 2011, सूर्यनक्षत्र – रोहिणी, चन्द्रनक्षत्र – पुष्य

ग्रह	सूर्य	बुध	शुक्र	शनि	चन्द्र	भौम	गुरू	राहु	केतु
सूर्यनक्षत्र से गणना	रोहिणी	पुन,	मघा	हस्त	विशा.	मूल	श्रावण	पू.भा.	अश्वि,
	मृग.	पुष्य	पू.फा.	चित्रा	अनु.	पू.षा.	धनि.	उ.भा.	भरणी
	आर्द्रा	आश्ले.	उ.फा.	स्वाती	ज्ये.	उ.षा.	शत.	रेवती	कृतिका

यहाँ चन्द्रनक्षत्र पुष्य है जो बुध के अन्तर्गत है अतः जीर्णगृप्रवेश उक्त दिन आहुति विचार के अनुसार शुभ है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. त्रिविध गृहप्रवेश में चक्रशुद्धि का विचार किया जाता है।

(क) द्वारचक्र से (ख) मीन चक्र से

(ग) कूर्मचक्र से (घ) कुम्भ चक्र से

2. गृहप्रवेश के दिन सूर्य नक्षत्र से सातवां चन्द्रनक्षत्र हों तो कुम्भ चक्र के अनुसार फल होता है –

(क) अग्निदाह (ख) धनलाभ

(ग) कलह (घ) कुम्भ चक्र से

3. कुम्भ चक्र में उत्तर दिशा में चन्द्रनक्षत्र होने पर गृहप्रवेश का फल है –

(क) कलह (ख) अग्निदाह

(ग) विनाश (घ) स्थिरता

4. आहुति विचार के अनुसरा यदि शुक्र ग्रह के मुख में चन्द्र नक्षत्र हो तो –

(क) शून्य (ख) अशुभ

(ग) शुभ (घ) कलह

उत्तर– 1–घ, 2–ख, 3–क, 4–ग

अभ्यासप्रश्न – 1. सही या गलत बताईये –

क. जीर्णगृहप्रवेश का तात्पर्य है यात्रा के बाद पुनः घर में प्रवेश करना।

ख. जीर्णगृहप्रवेश उत्तरायण एवं दक्षिणायन दोनों में किया जा सकता है

ग. त्रिविधगृहप्रवेश करने के लिए द्विस्वभाव राशि वाले लग्न अशुभ होते है।

घ. कुम्भचक्र में सूर्य नक्षत्र से गणना करके चन्द्रस्थित नक्षत्र की स्थिति देखकर शुभाशुभ विचार किया जाता है।

ड. पृष्ठस्थ शुक्र होने पर गृहप्रवेश शुभ रहता है।

2. रिक्त स्थान भरिये –

क. जीर्णगृह प्रवेश में .... मास शुभ है।

ख. .... तिथियां त्रिविध गृहप्रवेश के लिए शुभ हैं।

ग. मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार अपूर्व गृह प्रवेश में कहे गए नक्षत्रों के अतिरिक्त .... नक्षत्र भी जीर्णगृहप्रवेश के लिए शुभ है।

घ. .... के लग्नों में गृहप्रवेश करना चाहिए।

ड. सूर्य नक्षत्र से गिनकर 10 वें नक्षत्र से 13 वें नक्षत्र को कुम्भ चक्र में .... स्थान में रखना चाहिए।

च. गृह प्रवेश लग्न से सूर्य .... भावों में होने पर पूर्वमुखगृह के लिए वामरवि होता है।

3.4 जीर्णकूपारम्भ मुहूर्त में विचारणीय पहलू

दीर्घकाल तक प्रयोग होने एवं टूट–फूट होने के कारण अथवा भूकम्पादि के कारण भौगोलिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण या बहुत कम प्रयोग में आने के कारण कुए खराब व दूषित हो जाते हैं। नए कुएं के निर्माण में खर्च एवं मेहनत अधिक होता है साथ ही बनने में लम्बे समय की आवश्यकता होती है। इसके उलट पुराने कुएं की मरम्मत करवा कर उसका जीर्णोद्धार सस्ता, कम मेहनत वाला एवं जल्दी ही हो जाता है। अतः हमारे ऋषि–मुनियों एवं आचार्यों ने कुआं, बावड़ी आदि जलाशय स्थलों का जीर्णोद्धार करवाना पुण्यप्रद माना है। इसीलिए बृहद्वास्तुमाला में वर्णित है –

वापी–कूप–तड़ागादि–प्रासाद–भवनानि च।
जीर्णान्युद्धरते यस्तु पुण्यमष्टगुणं लभेत्।।

अर्थात् जो मनुष्य बावड़ी, कुआं, तालाब आदि जलाशय स्थलों एवं प्रसाद (देवमन्दिर या राजमहल) व भवनों के पुराने एवं टूट–फूट हो जाने पर उनका उद्धार (मरम्मत करवा

कर पुनः प्रयोग करने लायक बनाना) कर देता है, उसे नए जलाशय या भवनादि बनाने पर मिलने वाले पुण्यफल का आठ गुना फल मिल जाता है।

अतः कुआं आदि का जीर्णोद्धार सामाजिक व धार्मिक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। जिसको शुभकाल में किए जाने पर अवश्य ही शुभ फल की प्राप्ति होती है। अब हम जीर्ण कुएं के आरम्भ हेतु मुहूर्तशोधन में विचारणीय पहलुओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

3.4.1 कालशुद्धि एवं मासशुद्धि विचार

जीर्णकूपारम्भ में कालशुद्धि के विषय में उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। फिर भी शुभकार्य होने के कारण कालशुद्धि का कुछ विचार यहाँ भी करना ही चाहिए। आप जानते ही हैं कि हरिशयन, होलाष्टक, गुरू व शुक्रर का अस्तांगत होना, अधिकमास, भीष्मपंचक, श्राद्धपक्ष आदि का निषेध मांगलिक एवं शुभ कार्यों में होता ही है। ऐसा ही विचार जीर्णकूपारम्भ में करना चाहिए, परन्तु गुरू व शुक्र का अस्तांगत एवं उनके बाल्यत्व, वृद्धत्व आदि विचार की यहाँ आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार जीर्णकूपारम्भ में कौन कौन से मास शुभ हैं, इस बारे में भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, अतः किसी भी मास में जीर्णकूपारम्भ हो सकता है।

बोध प्रश्न – हाँ या नहीं में उत्तर दीजिए –

1. जीर्णकूपारम्भ में कालशुद्धि का कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए।
2. जीर्णकूपारम्भ में शुक्र व गुरू का उदयास्तादि विचार नहीं करना चाहिए।
3. जीर्णकूपारम्भ के लिए मासशुद्धि आवश्यक है।
4. जीर्णकूपारम्भ में श्राद्धपक्ष विशेष शुभ होता है।

उत्तर – 1. नहीं, 2. हाँ 3. नहीं 4. नहीं

3.4.2 पंचांगशुद्धि विचार –

प्रायः कूपारम्भ में कही गई पंचांग शुद्धि ही जीर्णकूपारम्भ में ही ग्राह्य होती है। यहाँ पंचांग शुद्धि में नक्षत्र शुद्धि का विशेष विचार जानना चाहिए।

तिथि – नन्दा संज्ञक तिथि (1, 6, 11), भद्रा संज्ञक तिथि (2, 7, 12), जया संज्ञक (3, 8, 13) तथा पूर्णा संज्ञक तिथि (5, 10, 15) कूपारम्भ के लिए शुभ है। रिक्ता तिथि (4, 9, 14) एवं अमावस्या तिथि मे कूपारम्भ नहीं करना चाहिए। जीर्णकूपारम्भ में भी इसी प्रकार विचार करना चाहिए।

वार – कूपारम्भ में बुध, गुरू व शुक्रवार प्रशस्त होते है। जीर्णकूपारम्भ में भी इन्हीं वारों का ग्रहण करना चाहिए। साथ ही जीर्णकूपारम्भ में सोमवार भी लिया जा सकता है।

नक्षत्र – मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधारा टीका में वसिष्ठमुनि के मत से जीर्णकूपारम्भ में ग्राह्य नक्षत्र के विषय में उल्लिखित है –

शशांकतोयांशकरार्यमित्रध्रुवाम्बुपित्र्ये वसुरेवतीषु।
उद्यानवाप्यादितडागकूपकार्याणि सिध्यन्ति जलं ध्रुवं स्यात्।।

अर्थात् चन्द्र जलचर राशियों के नवांश में हो तथा उत्तरफाल्गुनी, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, पूर्वाषाढ़ा, मघा, धनिष्ठा तथा रेवती नक्षत्रों में जीर्ण उद्यान, बावड़ी, तालाब एवं कुएं के कार्य को करने पर कार्य सिद्ध हो जाता है तथा निश्चित रूप से जल की प्राप्ति होती है।

मुहूर्तचिन्तामणि में कूपारम्भ में अनुराधा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, धनिष्ठा, मघा, पूर्वाषाढ़ा, रेवती, पुष्य एवं मृगसिरा इन नक्षत्रों को प्रशस्त माना है। वहाँ जीर्णकूपारम्भ के विषय में अलग से नहीं कहा गया है। अतः उपर्युक्त नक्षत्र ही जीर्णकूपारम्भ मुहूर्त हेतु मानने चाहिए।

योग व करण – जीर्ण कूपारम्भ में योग व करण की शुद्धि का विचार प्रायः नहीं मिलता है। फिर भी शुभ योगों व करणों का विचार जीर्ण कूपारम्भ में भी किया जा सकता है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. जीर्ण कूपारम्भ में शुभ तिथि है –
   (क) प्रतिपदा (ख) चतुर्थी (ग) नवमी (घ) अमावस्या
2. जीर्ण कूपारम्भ में निम्न संज्ञक तिथियां अशुभ है –
   (क) नन्दा (ख) भद्रा (ग) जया (घ) रिक्ता
3. जीर्ण कूपारम्भ में शभ वार है –
   (क) रविवार (ख) मंगलवार (ग) गुरूवार (घ) शनिवार
4. जीर्ण कूपारम्भ में शुभ नक्षत्र है –
   (क) भरणी (ख) मघा, (ग) आर्द्रा (घ) पूर्वाभाद्रपदा

उत्तर – 1–क, 2–घ, 3–ग, 4–ख,

3.4.3 लग्नशुद्धि विचार

कूपारम्भ में लग्नशुद्धि के समान जीर्णकूपारम्भ में भी लग्नशुद्धि का विचार किया जा सकता है। मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार कूपारम्भ लग्न में बुध या गुरू हो, पापग्रह निर्बल हों, शुक्र दशमभाव में हो तथा जलचर राशियों में चन्द्र हो तो शुभ होता है। इसी प्रकार जीर्णकूपारम्भ में भी विचार करना चाहिए। वस्तुतः जलचर राशि या नवांश में चन्द्र, शुक्र व लग्न के होने पर भी जीर्णकूपारम्भ प्रशस्त जानना चाहिए। इसी प्रकार जीर्णकूपारम्भलग्न से केन्द्र (लग्न, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम भाव) व त्रिकोण (पंचम व नवम भाव) स्थानों में शुभ ग्रहों की स्थिति, त्रिक अर्थात् तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भावों में पापग्रहों की स्थिति तथा अष्टमभाव ग्रहरहित होना चाहिए।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. जीर्णकूपारम्भ लग्न में निम्न ग्रह की स्थिति शुभ है –
(क) सूर्य (ख) मंगल (ग) बुध (घ) शनि
2. जीर्णकूपारम्भ लग्न में अशुभ ग्रहों की स्थिति होनी चाहिए –
(क) षष्ठ (ख) सप्तम (ग) अष्टम (घ) दशम
3. जीर्णकूपारम्भ लग्न से निम्न भाव में शुक्र ग्रह की स्थिति शुभ है –
(क) तृतीय (ख) दशम (ग) एकादश (घ) द्वादश
4. जलराशियों के नवांश में निम्न की स्थिति शुभ होती है–
(क) सूर्य (ख) मंगल (ग) शनि (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर – 1–ग, 2–क, 3–ख, 4–घ

3.4.4 चक्रशुद्धि विचार

वृषवास्तुचक्र, द्वारचक्र, देहलीचक्र, कूर्मचक्र आदि के विषय में आप पहले पढ़ ही चुके है। उसी प्रकार कूपारम्भ में कूपचक्र द्वारा चक्रशुद्धि का विचार किया जाता है। इस चक्र द्वारा चक्रशुद्धि का उद्देश्य जल प्राप्ति के विषय में पूर्वानुमान करना है। जीर्णकूपारम्भ में भी कूपचक्र द्वारा चक्रशुद्धि की जा सकती है।

कूपचक्र – नाम से आप समझ ही रहे होंगे कि कुएं की आकृति बनाकर कूपचक्र का विचार किया जाना है। कूपचक्र मुख्यतः 4 प्रकार का बनता है। जिसके अनुसार शुभाशुभ का विचार करना चाहिए।

सूर्यभात्कूपचक्र – बृहाद्वास्तुमाला के अनुसार कूपारम्भ के दिन सूर्य जिस नक्षत्र पर स्थित है, उस नक्षत्र से गणना करनी चाहिए। सूर्य स्थित नक्षत्र से 3 नक्षत्र तक गिनकर उनको कूपचक्र के मध्य स्थान में रखना चाहिए। उससे आगे के 3 नक्षत्रों को गिनकर उनको कूपचक्र में पूर्व दिशा में रखें। उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर आग्नेय में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को दक्षिण में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को गिनकर उनको कूपचक्र में नैर्ऋत्य में रखें। उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर पश्चिम में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को वायव्य में, उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर उत्तर दिशा में तथा अग्रिम 3 नक्षत्र ईशान कोण में दें। इस प्रकार कूपचक्र बनाकर उसमें कूपारम्भ के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र पर है, उसकी स्थिति कूपचक्र में मध्य या किस दिशा या कोण में है, यह जानकर निम्न तालिका के अनुसार उस दिन कूपारम्भ करने पर प्राप्त जल की मात्रा, स्वाद आदि के बारे में जानना चाहिए।

स्थान	मध्य	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
नक्षत्र	1–3	4–6	7–9	10–12	13–15	16–18	19–21	22–24	25–27
फल	स्वादिष्ट जल	थोड़ा जल	स्वादिष्ट जल	जल हानि	स्वादिष्ट जल	नमकीन जल	शीतल जल	मीठा जल	नमकीन जल

उदाहरण – दिनांक 6 जून 2011, सूर्यनक्षत्र – रोहिणी, चन्द्रनक्षत्र – पुष्य

स्थान	मध्य	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
सूर्यनक्षत्र से नक्षत्र	रोहिणी	पुन.	मघा	हस्त	विशा.	मूल	श्रवण	पू.भा.	अश्वि.
गणना	मृग.	पुष्य	पू.फा.	चित्रा	अनु.	पू.षा.	धनि.	उ.भा.	भरणी
	आर्द्रा	आश्ले.	उ.फा.	स्वाती	ज्ये.	उ.षा	शत.	रेवती	कृतिका

सूर्यनक्षत्र से गणना कर उक्त प्रकार से कूपचक्र बनाने पर चन्द्रस्थित नक्षत्र पुष्य पूर्व दिश ामें आता है। जिसका फल उपर्युक्त तालिका के अनुसार थोड़े जल की प्राप्ति आता है जो शुभफल नहीं है। अतः इस दिन कूपारम्भ ठीक नहीं है।

रोहिणीभात्कूपचक्र – रोहिणी नक्षत्र से 3 नक्षत्र तक गिनकर उनको कूपचक्र में मध्य स्थान में रखना चाहिए। उससे आगे के 3 नक्षत्रों को गिनकर उनको कूपचक्र मे पूर्व दिशा में रखें। उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर आग्नेय में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को दक्षिण में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को गिनकर उनको कूपचक्र में नैर्ऋत्य में रखें। उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर पश्चिम में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को वायव्य में, उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर उत्तर दिशा में तथा अग्रिम 3 नक्षत्र ईशान कोण में दें। इस प्रकार कूपचक्र बनाकर उसमें कूपारम्भ के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र पर है, उसकी स्थिति कूपचक्र में मध्य या किस दिशा या कोण में है, यह जानकर निम्न तालिका के अनुसार उस दिन कूपारम्भ करने पर प्राप्त जल की मात्रा, स्वाद आदि के बारे में जानना चाहिए।

रोहिणी कूच चक्र

स्थान	मध्य	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
नक्षत्र गणना	रोहिणी	पुन.	मघा	हस्त	विशा.	मूल	श्रवण	पू.भा.	अश्वि.
	मृग.	पुष्य	पू.फा.	चित्रा	अनु.	पू.षा.	धनि.	उ.भा.	भरणी
	आर्द्रा	आश्ले.	उ.फा.	स्वाती	ज्ये.	उ.षा	शत.	रेवती	कृतिका
फल	स्वादिष्ट जल	अल्प जल	सुजल	जल हीन	अमृत जल	सुजल	जल हानि	स्वादु या मीठा जल	कड़वा, नमकीन, कम व तीक्ष्ण जल

पूर्वाक्त उदाहरण में कूपारम्भ दिन को चन्द्र पुष्य नक्षत्र में है। जो रोहिणी कूपचक्र में पूर्व दिशा में है जिसका फल जल हीनता है।

भौमभात्कूपचक्र – भौम स्थित नक्षत्र को तालिका में पहले स्थान में रखना चाहिए। उससे आगे के 5 नक्षत्रों को गिनकर उनको तालिका में दूसरे स्थान में रखें। उसके अग्रिम 4 नक्षत्रों को गिनकर तीसरे में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को चौथे में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को गिनकर उनको पांचवें स्थान में रखें। उसके अग्रिम 4 नक्षत्रों को गिनकर छठें में, उससे

आगे के 3 नक्षत्रों को सातवें में, उसके अग्रिम 4 नक्षत्रों को गिनकर आठवें में दें। इस प्रकार कूपचक्र बनाकर उसमें कूपारम्भ के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र पर है, उसकी स्थिति कूपचक्र में जानकर निम्न तालिका के अनुसार उस दिन कूपारम्भ करने पर कर्त्ता को प्राप्त सुख–दु:खादि के बारे में जानना चाहिए।

नक्षत्र गणना	भौम नक्षत्र	2–6	7–10	11–13	14–16	17–20	21–23	24–27
फल	जल में वधभय	सिद्धि	अभंग (शुभ)	रोग	असिद्धि	यश	यश	जल में नष्ट

उदाहरण – दिनांक 6 जून 2011, भौमनक्षत्र – भरणी, चन्द्रनक्षत्र – पुष्य

भौमस्थित नक्षत्र से गणना	भरणी	कृति, रोहि, मृग, आर्द्रा, पुन	पुष्य आश्ले, मघा, पू.फा.	उ.फा. हस्त चित्रा	स्वाती, विशा, अनु	ज्ये., मूल, पू.षा. उ.षा.	श्रव, धनि., शत	पू. भा., उ.भा., रेवती, अश्वि

यहाँ चन्द्रनक्षत्र पुष्य तीसरे भाग में है जिसका फल अभंग अर्थात् नाश रहित है। जो शुभ फलदायी है।

राहुभात्कूपचक्र – राहु नक्षत्र से कूपचक्र गणना में अभिजित् सहित 28 नक्षत्रों की गणना करनी चाहिए। राहु स्थित नक्षत्र से 3 नक्षत्रों को गिनकर उनको कूपचक्र में पूर्व दिशा में रखें। उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर आग्नेय में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को दक्षिण में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को गिनकर उनको कूपचक्र में नैर्ऋत्य में रखें। उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर पश्चिम में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को वायव्य में, उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर उत्तर दिशा में तथा अग्रिम 3 नक्षत्र ईशान कोण में दें। उससे आगे के 4 नक्षत्रों को कूप मध्य में दें। इस प्रकार कूपचक्र बनाकर उसमें कूपारम्भ के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र पर है, उसकी स्थिति कूपचक्र में मध्य या किस दिशा या कोण में है, यह जानकर निम्न तालिका के अनुसार उस दिन कूपारम्भ करने पर जल की प्राप्ति एवं कर्त्ता को प्राप्त होने वाले शुभाशुभ के बारे में जानना चाहिए।

स्थान	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य
नक्षत्र	1–3	4–6	7–9	10–12	13–15	16–18	19–21	22–24	25–28
फल	शोक	जल लाभ	स्वामी मरण	दु:ख	सुख सौभाग्य	जल वृद्धि	जल हीन	जल सिद्धि	जल परिपूर्ण

उदाहरण – दिनांक 6 जून 2011, राहुनक्षत्र – मूल, चन्द्रनक्षत्र – पुष्य

स्थान	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य

नक्षत्र गणना	मूल	अभि.	शत	रेवती	कृतिका	आर्द्रा	आश्लेषा	उ.फा.	स्वाती
	पू.षा.	श्रव	पू.फा.	अश्वि	रोहिणी	पुनर्वसु	मघा	हस्त	विशाखा
	उ.षा	धनि	उ.फा.	भरणी	मृगसिरा	पुष्य	पू.फा.	चित्रा	अनुराधा
									ज्येष्ठा

उक्त तालिका के अनुसार चन्द्रनक्षत्र पुष्य वायव्य कोण में आ रहा है। जिसका फल जलवृद्धि है। अतः यह दिन कूपारम्भ एवं कर्त्ता के लिए शुभ है।

यहाँ ध्यान देना है कि उपर्युक्त चारों प्रकारों में से यदि तीन या अधिक प्रकार में शुभ फल आये तो जीर्णकूपारम्भ शुभ समझें। यदि दो प्रकार से शुभ फल हो तो मध्यम फलदायी और यदि दो प्रकार से कम में अशुभ फल आये तो जीर्णकूपारम्भ शुभ समझें।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. जीर्णकूपारम्भ में सूर्यभात्कूपचक्र में गणना होती है –

(क) सूर्यनक्षत्र से(ख) मंगलनक्षत्र से (ग) रोहिणीनक्षत्र से (घ) राहुनक्षत्र से

2. यदि सूर्यभात्कूपचक्र में सूर्यनक्षत्र से गणना करने पर 10 वां नक्षत्र, चन्द्रनक्षत्र हो तो निम्न फल मिलता है –

(क) स्वादुजल (ख) जलहानि (ग) क्षारजल (घ) अल्पजल

3. यदि रोहिणीभात्कूपचक्र में गणना करने पर 13 वां नक्षत्र, चन्द्रनक्षत्र हो तो निम्न फल मिलता है –

(क) स्वादुजल (ख) क्षारजल (ग) अमृतजल (घ) जलहानि

4. यदि भौमभात्कूपचक्र में गणना करने पर 21 वां नक्षत्र, चन्द्रनक्षत्र हो तो निम्न फल मिलता है –

(क) यश (ख) रोग (ग) सिद्धि (घ) जलभंग

5. यदि राहुभात्कूपचक्र में गणना करने पर 25 वां नक्षत्र, चन्द्रनक्षत्र हो तो निम्न फल मिलता है –,

(क) यश (ख) शोक (ग) जलभंग (घ) जल से परिपूर्ण

उत्तर – 1. क, 2. ख, 3. ग, 4. क, 5. घ

– अभ्यास प्रश्न –

3. सही या गलत बताईये –

क. जीर्णकूपारम्भ के लिए रविवार ग्राह्य है।

ख. जीर्णकूपारम्भ हेतु अष्टमी तिथि शुभ है।

ग. जीर्णकूपारम्भ के लिए पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र प्रशस्त है।

घ. जीर्णकूपारम्भ लग्न में गुरू शुभ होते है।

ड. भौमभात्कूपचक्र में सूर्यनक्षत्र से गणना करके मंगलनक्षत्र की स्थिति देखकर शुभाशुभ विचार किया जाता है।

4. रिक्तस्थान भरिये –

क. .... तिथियां जीर्णकूपारम्भ के लिए अशुभ है।

ख. वसिष्ठ के अनुसार चन्द्र .... के नवांश में हो तो कूपारम्भ के लिए विशेष शुभ है।

ग. कूपारम्भ लग्न में .... की स्थिति प्रशस्त होती है।

घ. सूर्य नक्षत्र से 4 नक्षत्र तक गिनकर उनको सूर्यभात्कूपचक्र में .... दिशा में रखना चाहिए।

ड. अभिजित् नक्षत्र सहित 28 नक्षत्रों की गणना .... कूपचक्र में होती है।

च. रोहिणीभात्कूपचक्र में उत्तर दिशा में चन्द्र नक्षत्र होने पर .... प्राप्ति होती है।

3.5 सारांश

जीर्णगृहप्रवेश के लिए मुहूर्त शोधन में कालशुद्धि, मासशुद्धि, पंचांगशुद्धि के अन्तर्गत तिथि, नक्षत्र, वारादि का शोधन, शुभलग्न, चक्रशुद्धि एवं अन्य विशेष बातों का विचार प्रायः अपूर्वगृहप्रवेशमुहूर्त के समान ही करना चाहिए। कहा जा सकता है कि त्रिविध गृहप्रवेश हेतु मुहूर्त शोधन लगभग एक ही प्रकार से किया जाता है, फिर भी जीर्णगृह प्रवेश में अपूर्व गृह प्रवेश से ज्यादा मास (श्रावण, कार्तिक व मार्गशीर्ष) एवं नक्षत्र (शतभिषा, पुष्य, स्वाति व धनिष्ठा) ग्राह्य होते हैं। साथ ही इसमें गुरू व शुक्र के उदयास्तादि का विचार नहीं होता है। इस प्रकार भली भांति छांटे हुए मुहूर्त में जीर्णगृहप्रवेश करने पर शुभफल की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार से जीर्णकूपारम्भ के लिए भी कालशुद्धि, पंचांगशुद्धि, लग्नशुद्धि आदि का विचार कूपारम्भमुहूर्त शोधन के समान ही होता है। उपर्युक्त प्रकार से मुहूर्त शोधन किए जाने पर अवश्य ही शुभ फल की प्राप्ति होती है।

3.6 शब्दावली

सूर्यभात्कूप चक्र – संस्कृत भाषा में 'भम्' शब्द नक्षत्र के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है। अतः सूर्यनात् का अर्थ हुआ सूर्य जिस नक्षत्र में स्थित है, उससे। कूपचक्र का तात्पर्य कुएं की आकृति बनाकर, उसमें दिशाओं को निर्देशित कर देखकर, वहाँ चन्द्र नक्षत्र की स्थिति के अनुसार शुभाशुभ फल जानना।

गुरू व शुक्र का बाल्यत्व व वृद्धत्व – आप जानते ही है कि पृथ्वी से देखने पर जब चन्द्र आदि सभी ग्रह सूर्य के निकट हो जाते हैं तो सूर्य के तेज प्रभाव के कारण ये दिखाई नहीं देते। इसे ग्रहों का अस्त कहा जाता है। जैसे अमावस्या को सूर्य के निकट होने के कारण वह दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार गुरू व शुक्र भी सूर्य सान्निध्य के कारण जब से दिखाई नहीं देते, उस दिन से उनका अस्त कहा जाता है। जब वे सूर्य की तेजस्विता से मुक्त होकर दिखाई देना प्रारम्भ करते हैं, तो उनका उदय कहा जाता है। उदय दिन से लगभग

3 दिन बाद तक इनका बाल्यत्व एवं अस्त दिन से लगभग 3 दिन पहले इनका वृद्धत्व माना गया है। इनके बाल्यत्व के दिनों में भी मांगलिक कार्य नहीं किए जाते हैं।

सिंहस्थ गुरू – जिस समय गुरू सिंह राशि में स्थित होता है उसे सिंहस्थ गुरू काल कहा जाता है। इसी प्रकार मकर राशि में गुरू की स्थिति के कारण मकरस्थ गुरू काल होता है। इन दोनों स्थितियों में भी सामान्यतः मांगलिक कार्य वर्जित माने गए हैं।

लुप्तसंवत्सर – जिस समय गुरू एक संवत्सर में दो राशियों में संचार करते हुए, पुनः वक्री होकर पूर्व राशि में वापिस न जाय, त बवह लुप्तसंवत्सर या महातिचार कहलाता है। इसमें भी सामान्यतः मांगलिक कार्य त्याज्य माने जाते हैं।

जलचरराशि – कर्क, वृश्चिक एवं मकर राशि का 15 अंश से लेकर 30 अंश तक।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. क. गलत, ख. सही, ग. गलत, घ. सही ड. सही
2. क. श्रावण, कार्तिक एवं मार्गशीर्ष।
   ख. 1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 12, 13 एवं 15
   ग. स्वाती, पुष्य, धनिष्ठा एवं शतभिषा नक्षत्र।
   घ. स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक व कुम्भ) एवं द्विस्वभाव (मिथुन, कन्य, धनु व मीन) राशि
   ड. पश्चिम
   च. 8, 9, 10, 11 एवं 12 वें भाव
3. क. गलत, ख सही, ग. सही, घ. सही, ड. गलत
4. क. रिक्त तिथि (4, 9, 14) एवं अमावस्या तिथि।
   ख. जलचर राशि
   ग. बुध एवं गुरू
   घ. पूर्व
   ड. राहुभात्कूपचक्र
   च. स्वादु या मीठे जल की।

3.8 संदर्भग्रन्थ सूची

1. दैवज्ञ श्रीरामाचार्य, मुहूर्त चिन्तामणि, टीका–केदारदत्त जोशी, पीयूषधारा टीकासहित, (द्वितीयसंस्करण 1979, पुनर्मुद्रण 1995), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

2. श्रीरामनिहोरद्विवेदी, बृहद्वास्तुमाला, सम्पादन – डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, (संस्करण 2001), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

3. प्रो. शुक्रदेव चतुर्वेदी, भारतीय वास्तुशास्त्र, (संस्करण 2004), श्रीलालबहादुर – शास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली

4. डॉ. देवीप्रसाद त्रिपाठी, वास्तुसार, (संस्करण 2006), परिक्रमा प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली।

5. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष (संस्करण 2002), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

6. डॉ. अशोक थपलियाल, वास्तुप्रबोधिनी, (संस्करण 2011), अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, विजयनगर, दिल्ली।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. दैवज्ञ श्रीरामाचार्य, मुहूर्त चिन्तामणि, टीका–केदारदत्त जोशी, पीयूषधारा टीकासहित, (द्वितीयसंस्करण 1979, पुनर्मुद्रण 1995), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

2. श्रीरामनिहोरद्विवेदी, बृहद्वास्तुमाला, सम्पादन – डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, (संस्करण 2001), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

3. प्रो. शुक्रदेव चतुर्वेदी, भारतीय वास्तुशास्त्र, (संस्करण 2004), श्रीलालबहादुर – शास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली

4. डॉ. देवीप्रसाद त्रिपाठी, वास्तुसार, (संस्करण 2006), परिक्रमा प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली।

5. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष (संस्करण 2002), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

6. डॉ. अशोक थपलियाल, वास्तुप्रबोधिनी, (संस्करण 2011), अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, विजयनगर, दिल्ली।

7. श्री भोजराजपंचांग, (संस्करण 2011–12), प्रधानसम्पादक – प्रो. आजादमिश्र, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल

8. विद्यापीठपंचांग, प्रधानसम्पादक – प्रो. वाचस्पति उपाध्याय, (संस्करण 2011–12), श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जीर्णगृहप्रवेश में मुहूर्तशोधन में कालशुद्धि, मासशुद्धि एवं पंचांगशुद्धि का विचार किस प्रकार किया जाता है? विश्लेषण कीजिए।

2. जीर्णगृहप्रवेश में शुभ लग्न का विचार कैसे होता है? विवेचना कीजिए।

3. जीर्णगृहप्रवेश में वामरवि एवं पृष्ठस्थ शुक्र विचार पर निबन्ध लिखिए।

4. जीर्णगृहप्रवेश में चक्र शुद्धि विचार के विषय में आप क्या जानते हैं? कल्पित उदाहरण सहित लिखिए।

5. जीर्णकूपारम्भ में मासशुद्धि व पंचांग शुद्धि क्या होती है? विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

6. जीर्णकूपारम्भ में लग्नशुद्धि का विचार कैसे किया जाता है? विश्लेषण कीजिए।

7. जीर्णकूपारम्भ हेतु चक्रशुद्धि किस प्रकार की जाती है? विस्तृत निबन्ध लिखिए।

इकाई – 4 कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ मुहूर्त

4.1 प्रस्तावना

मुहूर्तशास्त्र से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह चतुर्थ इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि जीर्णोद्धार किए हुए गृह में प्रवेश के मुहूर्त विचार में किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? इसी प्रकार जीर्णकूपारम्भ के लिए किस प्रकार मुहूर्तशोधन करना चाहिए? जीर्णगृहप्रवेश एवं जीर्णकूपारम्भ के मुहूर्तशोधन में कालशुद्धि, मासशुद्धि, पंचांगशुद्धि, लग्नशुद्धि, चक्रशुद्धि आदि का विचार किस प्रकार करना चाहिए? आदि।

प्राणवायु के बाद जीने के लिए जल की आवश्यकता पड़ती है। साथ ही भोजन, स्नानादि नित्यकर्म एवं कृषि की सिंचाई के लिए भी जल की जरूरत होती ही है। जल की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बहुत पुराने समय से ही घर, ग्राम एवं नगरों में बावडी, कुआं, तालाब, सरोवर आदि जलाशय स्थलों के निर्माण की परम्परा रही है। जिसके शुभारम्भ एवं लोकार्पण के लिए हमारे ऋषि मुनियों एवं आचार्यों ने गहन चिन्तर कर मुहूर्तशोधन प्रतिपादित किया है। प्रस्तुत इकाई में विस्तारपूर्वक बावडी, कुआं, तालाबादि जलाशय स्थलों के प्रारम्भ एवं प्रतिष्ठा के मुहूर्तों के विभिन्न विचारणीय बिन्दुओं का विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कूप, तडाग एवं जलाशय मुहूर्त के विषय को समझा सकेंगे। साथ ही इस सम्बन्ध में विभिन्न मतों को जानकर मुहूर्तशोधन के विभिन्न तथ्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद –

1. आप बता सकेंगे कि किस प्रकार कूप, तडाग एवं जलाशय मुहूर्तों का साधन किया जाता है।
2. कूप, तडाग एवं जलाशय मुहूर्त शोधन के विषय में विभिन्न मतों को श्रेणीबद्ध कर विश्लेषण सकेंगे।
3. कूप, तडाग एवं जलाशय मुहूर्त का व्यावहारिक प्रयोग कर सकेंगे।
4. समझा सकेंगे कि कूप, तडाग एवं जलाशय मुहूर्त का ज्ञान व्यावहारिक है, जो जन सामान्य की सेवा, धन प्राप्ति व यश प्राप्ति में सहायक है। इसी कारण इनका अध्ययन व साधन किया जाता है।

4.3 कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ मुहूर्तशोधन की आवश्यकता

जिस प्रकार हमारे शरीर में रक्त से परिपूर्ण नसों का जाल फैला हुआ है, उसी प्रकार भूमि के गर्भ में जलशिराएं या जलधाराएं रहती है। इनमें वर्षा के द्वारा संचित जल प्रवाहित होता है, परन्तु स्थान भेद के कारण एवं मिट्टी के गुण–दोष के आधार पर कुछ मीठी जल धाराएं होती है तो कुछ नमकीन। साथ ही खोदने पर कहीं कम पानी निकलता है तो कहीं भरपूर। अतः हमारे ऋषि–मुनियों एवं आचार्यों ने गहन चिन्तन, मनन

एवंविश्लेषण करने के बाद भूगर्भ से मधुर एवं पर्याप्त जल प्राप्ति की आकांक्षा को दृष्टिगत रखते हुए स्थान के गुण–दोष, वनस्पतियों की उपस्थिति तथा जीव–जन्तुओं की चेष्टादि के द्वारा जल प्राप्ति के सम्भावित स्थलों का प्रतिपादन किया। साथ ही सम्भावित स्थलों से किस प्रकार सुनिश्चित प्रकार से जल प्राप्ति हो, इसके लिए पूर्वानुमान करने के लिए उन्होंने शुभ काल में कार्यारम्भ हेतु मुहूर्तशोधन की प्रविधि का अन्वेषण किया। ग्रह–नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर शुभ समय में कार्य का आरम्भ करने पर उसमें सुनिश्चित सफलता मिलती है एवं उसका समापन निसंदिग्ध व भली भांति हो जाता है। अतः उनके द्वारा गहन शोध के बाद कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ के मुहूर्त शोधन का प्रतिपादन किया गया। आज के समय में कूपादि का प्रयोग कम होकर उसका स्थान टंकी, बोरिंग आदि ने ले लिया है। अतः इन मुहूर्तो का प्रयोग टंकी स्थापित करने, बोरिंग कराने, नलकूप, चापाकल इत्यादि के निर्माणारम्भ में भी किया जा सकता है। यहाँ जलाशयारम्भ का तात्पर्य सरोवर इत्यादि बड़े जलाशयों के निर्माणारम्भ से है।

बोध प्रश्न – रिक्त स्थान भरिये –

क. जिस प्रकार हमारे शरीर में रक्त से परिपूर्ण नसों का जाल फैला हुआ है, उसी प्रकार भूमि के गर्भ में .... रहती है।

ख. ऋषि–मुनियों एवं आचार्यों ने गहन चिन्तन, मनन एवं विश्लेषण करने के बाद भूगर्भ से मधुर एवं पर्याप्त जल प्राप्ति की आकांक्षा को दृष्टिगत रखते हुए .... के द्वारा जलप्राप्ति के सम्भावित स्थलों का प्रतिपादन किया।

ग. .... के आधार पर शुभ समय में कार्य का आरम्भ करने पर उसमे सुनिश्चित सफलता मिलती है।

घ. जलाशयारम्भ का तात्पर्य .... के निर्माणारम्भ से है।

ड. आज के समय में कूपादि का प्रयोग कम होकर उसका स्थान .... ने ले लिया है।

उत्तर – क. जलधाराएं ख. स्थान के गुण–दोष, वनस्पतियों की उपस्थिति तथा जीव–जन्तुओं की चेष्टादि ग. ग्रह–नक्षत्रों की स्थिति, घ. सरोवर इत्यादि बड़े जलाशयों ड. टंकी, बोरिंग आदि

4.4 कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ मुहूर्त शोधन के विभिन्न आयाम

4.4.1 कालशुद्धि एवं मासशुद्धि विचार

कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ में कालशुद्धि के विषय मे उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। फिर भी शुभ कार्य होने के कारण काल शुद्धि का कुछ विचार यहाँ भी करना ही चाहिए। आप जानते ही है कि हरिशयन, होलाष्टक, गुरू व शुक्र का अस्तांगत होना, अधिकमास, भीष्मपंचक, श्राद्धपक्ष आदि का निषेध मांगलिक एवं शुभ कार्यों में होता ही है। ऐसा ही विचार कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ में करना चाहिए, परन्तु गुरू व शुक्र का अस्तांगत एवं उनके बाल्यत्व, वृद्धत्व आदि विचार की यहाँ आवश्यकता है। इसी प्रकार कूप,

तडाग एवं जलाशयारम्भ में कौन कौन से मास शुभ हैं, इस बारे में भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, अतः किसी भी मास में कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ हो सकता है।

बोध प्रश्न – सत्य या असत्य में उत्तर दीजिए –

1. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ में कालशुद्धि का कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए।
2. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ में श्राद्धपक्ष अशुभ होता है।
3. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ के लिए मासशुद्धि आवश्यक नहीं है।
4. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ में शुक्र व गुरु का उदयास्तादि विचार करना चाहिए।

उत्तर – 1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य

4.4.2 पंचांगशुद्धि विचार –

तिथि – नन्दा संज्ञक तिथि (1, 6, 11), भद्रा संज्ञक तिथि (2, 7, 12), जया संज्ञक (3, 8, 13) तथा पूर्णा संज्ञक तिथि (5, 10, 15) कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ के लिए शुभ है। रिक्ता तिथि (4, 9, 14) एवं अमावस्या तिथि में कूपारम्भ नहीं करना चाहिए।

वार – कूपारम्भ में बुध, गुरू व शुक्रवार प्रशस्त होते है। तडाग एवं जलाशयारम्भ में भी इन्हीं वारों का ग्रहण करना चाहिए। तडागादि जलाशयारम्भ हेतु वसिष्ठ ने शुक्रवार एवं सोमवार को शुभ कहा है।

नक्षत्र – मुहूर्त चिन्तामणि में कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ में ग्राह्य नक्षत्र के विषय में उल्लिखित है –

मित्रार्कध्रुववासवाम्बुपमघातोयान्त्यपुष्येन्दुभिः।

अर्थात् अनुराधा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, धनिष्ठा, मघा, पूर्वाषाढ़ा, रेवती, पुष्य एवं मृगसिरा ये नक्षत्र – कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ हेतु प्रशस्त है। बृहद्वास्तुमाला में चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, मूल, अश्विनी, शतभिषा एवं श्रवण नक्षत्र भी वापी, कूप, जलाशयादि के निर्माणारम्भ में शुभ कहे गए हैं।

कूपारम्भ हेतु मुहूर्त चिन्तामणि की पीयूषधारा टीका में श्रीपति के मत का उल्लेख है कि हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, मघा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा एवं रोहिणी नक्षत्र श्रेष्ठ हैं। बृहद्वास्तुमाला में श्रीपति द्वारा ऊपर कहे गए नक्षत्रों में पुष्य के स्थान में चित्रा एवं स्वाती नक्षत्र कहा गया है।

तडागारम्भ हेतु पीयुषधारा टीका में वसिष्ठ का मत वर्णित है कि अनुराधा, मृगसिरा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, शतभिषा एवं पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र प्रशस्त है। बृहद्वास्तुमाला में वसिष्ठ द्वारा ऊपर कहे गए नक्षत्रों में शतभिषा को छोड़कर धनिष्ठा, मूल एवं चित्रा नक्षत्र भी ग्राह्य कहे गए हैं।

वापी अर्थात् बावडी निर्माण हेतु बृहद्वास्तुमाला में स्वाती, अश्विनी, पुष्य, हस्त, अनुराधा, पुनर्वसु, रेवती एवं शतभिषा प्रशस्त कहे गए है।

योग व करण – कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ में योग व करण की शुद्धि का विचार प्रायः नहीं मिलता है। फिर भी शुभ योगों व करणों का विचार भी किया जा सकता

है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ में शुभ तिथि है –

(क) द्वितीया (ख) चतुर्थी (ग) नवमी (घ) अमावस्या

2. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ मे निम्न संज्ञक तिथियां अशुभ है –

(क) नन्दा (ख) भद्रा (ग) जया (घ) रिक्ता

3. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ में शुभ वार है –

(क) रविवार (ख) मंगलवार (ग) शुक्रवार (घ) शनिवार

4. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ हेतु शुभ नक्षत्र है –

(क) कृत्तिका (ख) अनुराधा (ग) आर्द्रा (घ) पूर्वाफाल्गुनी

5. वसिष्ठ के मतानुसार तडागनिर्माणारम्भ में निम्न नक्षत्र ग्राह्य है –

(क) चित्रा (ख) मूल (ग) शतभिषा (घ) धनिष्ठा

उत्तर – 1–क, 2–घ, 3–ग, 4–ख, 5–ग

रिक्त स्थान भरिये –

1. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ के लिए .... तिथियां शुभ है।

2. कूपारम्भ मे .... वार प्रशस्त होते है।

3. तडागारम्भ हेतु वसिष्ठ का मत है कि .... नक्षत्र प्रशस्त है।

4. बृहद्वास्तुमाला में वापी अर्थात् बावडी निर्माण हेतु .... नक्षत्र प्रशस्त कहे गए है।

5. कूपारम्भ हेतु श्रीपति का मत है कि .... नक्षत्र श्रेष्ठ है।

उत्तर –

1. नन्दा संज्ञक तिथि (1, 6, 11), भद्रा संज्ञक तिथि (2, 7, 12), जया संज्ञक (3, 8, 13) तथा पूर्णा संज्ञक तिथि (5, 10, 15)।

2. बुध, गुरू व शुक्रवार।

3. अनुराधा, मृगसिरा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, शतभिषा एवं पूर्वाषाढ़ा।

4. अश्विनी, पुष्य हस्त, अनुराधा, पुनर्वसु, रेवती, स्वाती एवं शतभिषा।

5. हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, मघा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा एवं रोहिणी।

4.4.3 लग्नशुद्धि विचार

बृहद्वास्तुमाला के अनुसार मकर, कुम्भ एवं मीन लग्न में कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ करना चाहिए। मुहूर्तचिन्तामणि का मत है कि कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ लग्न में बुध या गुरु हों, पापग्रह निर्बल हों, शुक्र दशमभाव में हो तथा जलचर राशियों में चन्द्र हो तो शुभ होता है। बृहद्वास्तुमाला में लग्नस्थ चन्द्र भी प्रशस्त माना गया है। वस्तुतः जलचर राशि या नवांश में चन्द्र, शुक्र व लग्न के होने पर भी कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ

प्रशस्त जानना चाहिए। इसी प्रकार कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ से केन्द्र (लग्न, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम भाव) व त्रिकोण (पंचम व नवम भाव) स्थानों में शुभ ग्रहों की स्थिति, त्रिक अर्थात् तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भावों में पापग्रहों की स्थिति तथा अष्टमभाव ग्रह रहित होना चाहिए।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ हेतु निम्न लग्न शुभ है –

(क) मेष (ख) सिंह (ग) वृश्चिक (घ) मीन

2. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ लग्न में शुभग्रहों की स्थिति होनी चाहिए –

(क) पंचम (ख) षष्ठ (ग) अष्टम (घ) द्वादश

3. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ लग्न से निम्न भाव में गुरु ग्रह की स्थिति विशेष शुभ है –

(क) लग्न (ख) दशम (ग) एकादश (घ) द्वादश

4. जलचर राशियों या नवांश में निम्न की स्थिति शुभ होती है –

(क) सूर्य (ख) मंगल (ग) शुक्र (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर – 1–घ, 2–क, 3–क, 4–ग

4.4.4 चक्रशुद्धि विचार

जीर्णकूपारम्भ में कूपचक्रशुद्धि के विषय में आप पहले पढ़ ही चुके हैं। वैसे ही कूपारम्भ में कूपचक्र द्वारा चक्रशुद्धि का विचार किया जाता है। इस चक्र द्वारा चक्रशुद्धि का उद्देश्य के विषय में पूर्वानुमान करना है। इसी प्रकार तालाब के आरम्भ में तडाग चक्र तथा जलाशयादि निर्माण में निर्वारचक्र द्वारा चक्रशुद्धि करनी चाहिए।

कूपचक्र–कूपचक्र के विषय में आप पूर्व की इकाई में पढ़ चुके है। फिर भी संक्षेप में यहाँ पुनः बताया जा रहा है। जिससे आपका पुनः अभ्यास हो जाय।

सूर्यभात्कूपचक्र – कूपारम्भ के दिन सूर्य जिस नक्षत्र पर स्थित है, उस नक्षत्र सेगणना करनी चाहिए। जो निम्न तालिका से स्पष्ट है। उस दिन के चन्द्रनक्षत्र को तालिका में देखकर कूपारम्भ करने पर प्राप्त जल की मात्रा, स्वाद आदि के बारे मे जानना चाहिए।

स्थान	मध्य	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
नक्षत्र गणना	1–3	4–6	7–9	10–12	13–15	16–18	19–21	22–24	25–27
फल	स्वादिष्ट जल	थोड़ा जल	स्वादिष्ट जल	जल हानि	स्वादिष्ट जल	नमकीन जल	शीतल जल	मीठा जल	नमकीन जल

उदाहरण – दिनांक 26 अगस्त 2011, सूर्यनक्षत्र – मघा, चन्द्रनक्षत्र – पुनर्वसु

स्थान	मध्य	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
सूर्यनक्षत्र	मघा	हस्त	विशा.	मूल	श्रवण	पू.भा.	अश्वि.	रोहिणी	पुनर्वसु

से नक्षत्र गणना	पू.फा.	चित्रा	अनु.	पू.षा.	धनि.	उ.भा.	भरणी	मृग.	पुष्य
	उ.फा	स्वाती	ज्ये.	उ.षा.	शत.	रेवती	कृतिका	आर्द्रा	आश्ले.

सूर्यनक्षत्र से गणना कर उक्त प्रकार से कूपचक्र बनाने पर चन्द्रस्थित नक्षत्र पुनर्वसु ईशान दिशा में आता है। जिसका फल उपर्युक्त तालिका के अनुसार नमकीन जल की प्राप्ति आता है जो शुभफल नहीं है। अतः इस दिन कूपारम्भ ठीक नहीं है।

रोहिणीभात्कूपचक्र – रोहिणी नक्षत्र से गणना करके कूपारम्भ दिवस के चन्द्र स्थित नक्षत्र की स्थिति कूपचक्र में देखकर उस दिन कूपारम्भ करने पर प्राप्त जल की मात्रा, स्वाद आदि के बारे में जानना चाहिए।

रोहिणी कूप चक्र

स्थान	मध्य	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
नक्षत्र गणना	रोहिणी	पुन.	मघा	हस्त	विशा.	मूल	श्रवण	पू.भा.	अश्वि.
	मृग.	पुष्य	पू.फा.	चित्रा	अनु.	पू.षा.	धनि.	उ.भा.	भरणी
	आर्द्रा	आश्ले.	उ.फा.	स्वाती	ज्ये.	उ.षा.	शत.	रेवती	कृतिका
फल	स्वादिष्ट जल	अल्प जल	सुजल	जल हीन	अमृत जल	सुजल	जल हानि	स्वादु या मीठा जल	कड़वा, नमकीन, कम व तीक्ष्ण जल

पूर्वाक्त उदाहरण में कूपारम्भ दिन को चन्द्र पुनर्वसु नक्षत्र में है। जो रोहिणी कूपचक्र में पूर्व दिशा में है जिसका फल कम जल की प्राप्ति है।

भौमभात्कूपचक्र – भौम स्थित नक्षत्र से कूपचक्र बनाकर उसमें कूपारम्भ के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र पर है, उसकी स्थिति कूपचक्र में जानकर निम्न तालिका के अनुसार उस दिन कूपारम्भ करने पर कर्त्ता को प्राप्त सुख–दुःखादि के बारे में जानना चाहिए।

नक्षत्र गणना	भौम नक्षत्र	2–6	7–10	11–13	14–16	17–20	21–23	24–27
फल	जल में वधभय	सिद्धि	अभंग (शुभ)	रोग	असिद्धि	यश	यश	जल में नष्ट

उदाहरण – दिनांक 26 अगस्त 2011, भौम नक्षत्र – पुनर्वसु, चन्द्रनक्षत्र –पुनर्वसु

नक्षत्र से गणना	पुनर्वसु	पुष्य, आश्ले	हस्त चित्रा	अनु, ज्ये, मूल,	पू.षा., उ. षा., श्रव,	धनि., शत,	रेवती, अश्वि.	कृति, रोहि, मृग,

	मघा, पू.फा., उ.फा.	स्वाती, विशा,		पू.भा., उ.भा.,	भरणी	आर्द्रा

यहाँ चन्द्रनक्षत्र पुनर्वसु तालिका में प्रथम भाग में है जिसका फल जल में वध होने का भय है। जो अशुभ फलदायी है।

राहुभात्कूपचक्र – राहु नक्षत्र से निम्न तालिका के अनुसार कूपचक्र गणना में अभिजित्सहित 28 नक्षत्रों की गणना करनी चाहिए। उसमें कूपारम्भ के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र पर है, उसकी स्थिति निम्न तालिका के अनुसार उस दिन कूपारम्भ करने पर कर्त्ता को प्राप्त सुख–दुःखादि के बारे में जानना चाहिए।

स्थान	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य
नक्षत्र गणना	1–3	4–6	7–9	10–12	13–15	16–18	19–21	22–24	25–28
फल	शोक	जल लाभ	स्वामी मरण	दुःख	सुख सौभाग्य	जल वृद्धि	जल हीन	जल सिद्धि	जल से परिपूर्ण

उदाहरण – दिनांक 26 अगस्त 2011, राहुनक्षत्र – ज्येष्ठा, चन्द्रनक्षत्र – पुनर्वसु

स्थान	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य
नक्षत्र गणना	ज्येष्ठा	उ.षा.	धनि	उ.भा	भरणी	मृगसिरा	पुष्य	पू.फा.	चित्रा स्वा
	मूल	अभि	शत	रेवती	कृतिका	आर्द्रा	आश्लेषा	उ.फा.	विशाखा
	पू.षा.	श्रव	पू.भा.	अश्वि	रोहिणी	पुनर्वसु	मघा	हस्त	अनुराधा

उक्त तालिका के अनुसार चन्द्रनक्षत्र पुनर्वसु वायव्य कोण में आ रहा है। जिसका फल जलवृद्धि है। अतः यह दिन कूपारम्भ एवं कर्त्ता के लिए शुभ है।

तडाग चक्र – बृहद्वास्तुमाला में ब्रह्मयामल नामक ग्रन्थ के आधार पर तडाग चक्र उल्लेख किया गया है। जिसके अनुसार सूर्य नक्षत्र से गणना करके 2 नक्षत्र तडाग चक्र में पूर्व में, उसके आगे के 2 नक्षत्र आग्नेय में, उससे अग्रिम 2 नक्षत्र दक्षिण, उसके आगे के 2 नक्षत्र नैर्ऋत्य में, उससे अग्रिम नक्षत्र पश्चिम, उसके आगे के 2 नक्षत्र वायव्य में, उससे अग्रिम 2 नक्षत्र उत्तर, उसके आगे के 2 नक्षत्र ईशान में, उससे अग्रिम 5 नक्षत्र मध्य में तथा उसके आगे के 6 नक्षत्र वारिवाह में स्थापित करना चाहिए। उसमें कूपारम्भ के दिन चन्द्र स्थित नक्षत्र की स्थिति जानकर निम्न तालिका के अनुसार उस दिन कूपारम्भ करने पर प्राप्त होने वाले जल के बारे में जानना चाहिए।

तडाग चक्र में दिशा	सूर्यनक्षत्र से गणना	फल
पूर्व	2	बहुशोक

आग्नेय	2	बहु जल
दक्षिण	2	जलनाश
नैर्ऋत्य	2	अमृतजल
पश्चिम	2	स्वादिष्ट जल
वायव्य	2	जल का सूखना
उत्तरे	2	स्थिर जल
ईशाने	2	गन्दा जल
मध्य	5	शीघ्रजल
वारिवा	6	जल की पूर्णता

उदाहरण – दिनांक 26 अगस्त 2011, सूर्यनक्षत्र – मघा चन्द्रनक्षत्र – पुनर्वसु

तडाग चक्र में दिशा	सूर्यनक्षत्र से गणना	फल
पूर्व	मघा. पू.फा.	बहुशोक
आग्नेय	उ.फा., हस्त	बहु जल
दक्षिण	चित्रा, स्वाती	जलनाश
नैर्ऋत्य	विशाखा, अनुराधा	अमृतजल
पश्चिम	ज्येष्ठा, मूल	स्वादिष्ट जल
वायव्य	पू.षा., उ.षा.	जल का सूखना
उत्तरे	श्रवण, धनिष्ठा	स्थिर जल
ईशाने	शतभिषा, पू.भा.	गन्दा जल
मध्य	उ.भा., रेवती, अश्वि, भरणी, कृत्तिका	शीघ्रजल
वारिवाह	रोहिणी, मृगसिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा	जल की पूर्णता

तडागचक्र में चन्द्रनक्षत्र पुनर्वसु वारिवाह में आ रहा है। जिसका फल जल की पूर्णता है, जो शुभ फलदायी है।

निर्वारचक्र – निर्वार चक्र में राहु के नक्षत्र से 3 नक्षत्र तक गिनकर उनको निर्वारचक्र में पूर्व दिशा में रखना चाहिए। उससे आगे के 3 नक्षत्रों को गिनकर उनको निर्वारचक्र में आग्नेय में रखें। उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर दक्षिण में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को नैर्ऋत्य में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को गिनकर उनको निर्वार चक्र में पश्चिम में रखें। उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर वायव्य में, उससे आगे के 3 नक्षत्रों को उत्तर दिशा में, उसके अग्रिम 3 नक्षत्रों को गिनकर ईशान कोण में तथा अग्रिम 4 नक्षत्र मध्य स्थान में दें। इस प्रकार अभिजित् सहित 28 नक्षत्रों की गणना करके निर्वारचक्र में पूर्व आदि दिशाओं मे 3–3

नक्षत्र और मध्य में 4 नक्षत्र स्थापित करना चाहिए। उसमें जलाशयारम्भ के दिन चन्द्र जिस नक्षत्र पर है, उसकी स्थिति निर्वारचक्र में मध्य या किस दिशा या कोण में है, यह जानकर निम्न तालिका के अनुसार उस दिन जलाशयारम्भ करने पर प्राप्त शुभाशुभ फल जानना चाहिए –

स्थान	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य
नक्षत्र गणना	3	3	3	3	3	3	3	3	4
फल	पानी का सुख	भय	दुःख	दुःख	भय	भय	धन वृद्धि	भय	पानी का सुख

उदाहरण – दिनांक 26 अगस्त 2011, राहुनक्षत्र – ज्येष्ठा, चन्द्रनक्षत्र – पुनर्वसु

दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य
राहु नक्षत्र	ज्येष्ठा	उ.षा.	धनि	उ.भा	भरणी	मृगसिरा	पुष्य	पू.फा.	चित्रा, स्वाती
से गणना	मूल	अभि	शत	रेवती	कृतिका	आर्द्रा	आश्लेषा	उ.फा.	विशाखा
	पू.षा.	श्रव	पू.भा.,	अश्वि	रोहिणी	पुनर्वसु	मघा	हस्त	अनुराधा

यहाँ चन्द्रनक्षत्र पुनर्वसु वायव्य दिशा में है। जिसका फल भय है। जो अशुभ फलदायी है।

बोध प्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. यदि सूर्यभात्कूपचक्र में सूर्य नक्षत्र से गणना करने पर 15 वां नक्षत्र, चन्द्रनक्षत्र हों तो निम्न फल मिलता है –

(क) स्वादुजल (ख) जलहानि (ग) क्षारजल (घ) अल्पजल

2. यदि रोहिणीभात्कूपचक्र में गणना करने पर 8 वां नक्षत्र, चन्द्रनक्षत्र हो तो निम्न फल मिलता है –

(क) स्वादुजल (ख) क्षारजल (ग) अमृतजल (घ) सुजल

3. यदि तडागचक्र में गणना करने पर 21 वां नक्षत्र, चन्द्रनक्षत्र हो तो निम्न फल मिलता है –

(क) शोक (ख) शीघ्रजल (ग) जल का सूखना (घ) जलनाश

4. यदि राहुभात् निर्वारचक्र में गणना करने पर 12 वां नक्षत्र, चन्द्रनक्षत्र हो तो निम्न फल मिलता है –

(क) जल का सुख (ख) भय (ग) दुःख (घ) धन की वृद्धि

उत्तर – 1. क, 2. घ, 3. ख, 4. ग.

4.4.5 राहुमुख विचार –देवमन्दिर, जलाशय (तालाब कुआं इत्यादि) एवं गृह के निर्माण करने से पूर्व राहुमुख का विचार करना आवश्यक होता है। आप जानते है कि गृहारम्भ पूजन के बाद शिलान्यासादि कर्म करने के लिए भूमि खोदी जाती है। उसी प्रकार जलाशयारम्भ में भी खात होता है। भूमि खोदने को खात (नींव खोदना) कहा जाता है। इसी खात के लिए राहुमुख विचार किया जाता है। क्योंकि राहुमुख वाली दिशा में वास्तुक्षेत्र में सबसे पहले खात करना अशुभ माना जाता है। सबसे पहले खात (नींव खोदना) राहुमुख वाली कोणी या दिशा से पिछली वाली कोणीय दिशा में ही किया जाता है। जलाशयारम्भ के समय यदि मकर, कुम्भ एवं मीन राशि में सूर्य स्थित हो तो राहुमुख ईशान कोण (पूर्व एवं उत्तर दिशा के बीच की दिशा) में होता है अतः ईशान कोण से पिछली कोणीय दिशा आग्नेयकोण (पूर्व एवं दक्षिण दिशा के बीच की दिशा) में उस समय सर्वप्रथम खोदना (खात) चाहिए। इसी प्रकार गृहारम्भ के समय मेष, वृष या मिथुन राशि में सूर्य के रहने पर राहुमुख वायव्य कोण में (पश्चिम व उत्तर के बीच की दिशा) होता है। अतः उस समय ईशान कोण में सर्वप्रथम खात खोदना चाहिए। कर्क, सिंह या कन्या राशि में सूर्य के रहने पर राहुमुख नैर्ऋत्युकोण (दक्षिण व पश्चिम के बीच की दिशा) में होता है, अतः उस समय वायव्य कोण में सर्वप्रथम खात करना चाहिए। तुला, वृश्चिक या धनु राशि में सूर्य के रहने पर राहुमुख आग्नेय कोण में रहता है अतः इस समय नैर्ऋत्य कोण में खात करना चाहिए।

राहुमुख एवं खात दिशा जानने के लिए आप निम्न चक्र की सहायता ले सकते है –

<u>जलाशयारम्भ में राहुमुख एवं खात दिशा</u>

क्र.	सूर्य स्थित राशियां	राहुमुख कोण	खात दिशा
1	मकर, कुम्भ या मीन	ईशान	आग्नेय
2	मेष, वृष या मिथुन	वायव्य	ईशान
3	कर्क, सिंह या कन्या	नैर्ऋत्य	वायव्य
4	तुला, वृश्चिक या धनु	आग्नेय	नैर्ऋत्य

भूमिशयन विचार – आप जानते हैं कि गृहारम्भ के समय भूमि शयन का विचार किया जाता है। इसी प्रकार जलाशयारम्भ में भी करना चाहिए। सूर्य स्थित नक्षत्र से गिनने पर 5, 7, 9, 12, 19 व 26 वां नक्षत्र यदि खात दिन का चन्द्र नक्षत्र हो तो भूमि का शयन समझकर उस दिन खात नहीं करना चाहिए।

बोधप्रश्न –

1. राहुमुख का विचार करना चाहिए –

 क. जलाशयारम्भ में ख. विवाहमुहूर्त में

 ग. नक्षत्रशूल जानने में घ. वृक्षारोपण में

2. यदि जलाशयारम्भ के समय सूर्य कन्या राशि में स्थित हो तो राहुमुख निम्न दिशा में होगा –

 क. आग्नेय ख. ईशान

ग. वायव्य घ. नैर्ऋत्य

3. वृश्चिक राशि में सूर्य के रहने पर जलाशयारम्भ के लिए खात दिशा होगी –
   क. आग्नेय ख. नैर्ऋत्य
   ग. वायव्य घ. ईशान
4. जलाशयारम्भ विचार में आग्नेय कोण में राहुमुख रहता है –
   क. सूर्य के कन्या राशि में रहने पर
   ख. सूर्य के सिंह राशि में होने पर
   ग. सूर्य के वृश्चिक राशि में होने पर
   घ. सूर्य के कर्क राशि में होने पर
5. जलाशयारम्भ में ईशान कोण में खात दिशा होती है –
   क. मिथुन ख. वृश्चिक
   ग. सिंह घ. मकर

उत्तर– 1–क, 2–घ, 3–ख, 4–ग, 5–क।

– अभ्यास प्रश्न –

1. सही या गलत बताइये –
   क. तडागरम्भ के लिए सोमवार ग्राह्य है।
   ख. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ हेतु चतुर्दशी तिथि शुभ है।
   ग. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ के लिए पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र प्रशस्त है।
   घ. कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ हेतु मीन लग्न शुभ है।
   ड. तडागचक्र में शुक्र नक्षत्र से गणना करके चन्द्रनक्षत्र की स्थिति देखकर शुभाशुभ विचार किया जाता है।
2. रिक्त स्थान भरिये –
   क. श्रीपति के अनुसार कूपारम्भ हेतु .... नक्षत्र श्रेष्ठ है।
   ख. वसिष्ठ के मत में तडागारम्भ हेतु .... नक्षत्र प्रशस्त है।
   ग. बृहद्वास्तुमाला के अनुसार .... लग्न में कूप, तडाग एवं जलाशयारम्भ करना चाहिए।
   घ. रोहिणी नक्षत्र से 7 से 9 नक्षत्र तक गिनकर रोहिणीभात्कूपचक्र में .... दिशा में रखना चाहिए। उसका फल .... है।
   ड. तडाग चक्र .... ग्रन्थ में वर्णित है।
   च. निर्वार चक्र में मध्य में चन्द्र नक्षत्र होने पर .... प्राप्ति होती है।
3. निम्न का उत्तर लिखिए –

क. रोहिणीभात्कूपचक्र में चन्द्र नक्षत्र की स्थिति दक्षिण में होने पर क्या फल मिलता है?
ख. राहुभात्कूपचक्र में उत्तर में चन्द्र नक्षत्र की स्थिति होने पर क्या फल मिलेगा ?
ग. भौमभात्कूपचक्र में भौम स्थित नक्षत्र से 14 वां नक्षत्र यदि चन्द्रनक्षत्र हो तो उसका क्या

फल होगा?

घ. तडागचक्र में सूर्य नक्षत्र पुनर्वसु से गिनने पर कौन कौन सेनक्षत्र वायव्य कोण में आयेंगे ?

ङ. निर्वारचक्र में गणना कहाँ से की जाती है?

4.5 कूप, तडाग एवं जलाशय की प्रतिष्ठा मुहूर्त

कूप, तडाग एवं जलाशय का निर्माण पूरा हो जाने पर उसका उपभाग या जलकल्याण के लिए खोलने के लिए (जिसे प्रतिष्ठा, लोकार्पण या उत्सर्ग भी कहा जाता है) मुहूर्तशोधन हेतु निम्न प्रकार से विचार करना चाहिए।

4.5.1 कालशुद्धि एवं मासशुद्धि विचार –कूप, तडाग एवं जलाशय की प्रतिष्ठा उत्तरायण में करनी चाहिए। इसी प्रकार गुरू, शुक्र एवं चन्द्र के अस्त न होने पर ही इनकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए। साथ ही मांगलिक एवं शुभकार्यों में निषिद्ध हरिशयन, होलाष्टक, अधिकमास, भीष्मपंचक, श्राद्धपक्ष आदि का विचार भी यहाँ अवश्य करना चाहिए। कूप, तडाग एवं जलाशय के उत्सर्ग हेतु माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख एवं ज्येष्ठ मास शस्त है। भविष्यपुराण में वर्णन है कि यदि अत्यावश्यक होतो कार्तिक मास अथवा शुभ फल देने वाली संक्रान्तियों में भी तालाब की प्रतिष्ठा विधि को सम्पन्न किया जा सकता है।

अग्निपुराण में संक्रान्ति भेद से फलभेद कहा गया है –

वापीकूपतडागानां तस्मिन्काले विधिः स्मृतः। सुदिने शुभनक्षत्रे प्रतिष्ठा शुभदा मता।।

कर्कटे पुत्रलाभश्च सौख्यं तु मकरे भवेत्। मीने यशोऽर्थलाभश्च कुम्भे च सुबहूदकम्।।

वृषे च मिथुने वृद्धिर्वृश्चिके च जलं भवेत्। पितृतृप्तिश्च कन्यायां तुलायां शाश्वती गता।।

अर्थात् सुन्दर वारयुक्त दिन, शुभनक्षत्र में वापी, कूप, तडागादि की प्रतिष्ठा शुभ है। कर्क संक्रान्ति पर उपर्युक्त प्रतिष्ठा करने पर पुत्र लाभ होता है। इसी प्रकार मकर संक्रान्ति में सौख्य, मीन संक्रान्ति में यश, एवं अर्थलाभ, कुम्भसंक्रान्ति में जलाशय में बहुत मात्रा में सुन्दर जल रहता है। वृष एवं मिथुन संक्रान्ति में धन–धान्यादि वृद्धि, वृश्चि कमे जल की उपलब्धता, कन्या में पितरों की तृप्ति तथा तुला संक्रान्ति में निरन्तरता चली जाती है।

बोधप्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. कूप, तडाग एवं जलाशय की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

(क) उत्तरायण में (ख) दक्षिणायन में (ग) कभी भी

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

2. कूप, तडाग एवं जलाशय के उत्सर्ग हेतु निम्न मास प्रशस्त है –

(क) भाद्रपद (ख) पौष (ग) फाल्गुन

(ग) आश्विन

3. अत्यावश्यक होने पर निम्न मास मे भी तालाब की प्रतिष्ठा विधि को सम्पन्न किया जा सकता है –

(क) भाद्रपद (ख) कार्तिक (ग) आश्विन (घ) पौष

4. वापी, कूप, तडागादि की प्रतिष्ठा कर्क संक्रान्ति पर करने पर प्राप्त होता है।

(क) जल का सुख (ख) भय (ग) दुःख (घ) पुत्रलाभ

उत्तर – 1. क, 2. ग, 3. ख, 4. घ

4.5.2 पंचांगशुद्धि विचार –यहाँ मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार पंचांग शुद्धि दी जा रही है।

तिथि – मुहूर्त चिन्तामणि के अनुसार शुक्ल पक्ष में रिक्ता (4, 9, 14) को छोड़कर अन्य शुभ तिथियों 1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13 एवं पूर्णिमा में अथवा कर्त्ता के नक्षत्र, तिथि आदि में भी जलाशयादि की प्रतिष्ठा की जा सकती है।

वार – जलाशयादि प्रतिष्ठा में भौमवार को छोड़कर अन्य सभी वार ग्राह्य है।

नक्षत्र – वापी, कूप, तडागादि की प्रतिष्ठा में मृदु संज्ञक अर्थात् मृगसिरा, रेवती, चित्रा व अनुराधा नक्षत्र, क्षिप्र संज्ञक अर्थात् हस्त, अश्विनी, पुष्य व अभिजित् नक्षत्र, चर संज्ञक अर्थात् स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा व शतभिषा नक्षत्र एवं ध्रुव संज्ञक अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद व रोहिणी नक्षत्र प्रशस्त होते हैं।

योग एवं करण – यद्यपि जलाशयादि प्रतिष्ठा हेतु योग व करण शुद्धि का वर्णन नहीं मिलता है। फिर भी शुभ योगों एवं करणों में ही जलाशयादि प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

बोधप्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. कूप, तडाग एवं जलाशय की प्रतिष्ठा निम्न तिथि में नहीं करनी चाहिए।

(क) नन्दा (ख) जया (ग) रिक्ता (घ) पूर्णा

2. जलाशयादि प्रतिष्ठा में निम्न वार ग्राह्य नहीं है –

(क) रविवार (ख) भौमवार (ग) बुधवार (घ) शनिवार

3. वापी, कूप, तडागादि की प्रतिष्ठा में निम्न संज्ञक नक्षत्र ग्राह्य नहीं है –

(क) मृदु (ख) क्षिप्र (ग) तीक्ष्ण (घ) चर

4. क्षिप्र संज्ञक नक्षत्र नहीं है –

(क) हस्त (ख) अश्विनी (ग) पुष्य (घ) रोहिणी

उत्तर – 1. ग, 2. ख, 3. ग, 4. घ

4.5.3 लग्नशुद्धि विचार –सिंह, मेष एवं धनु लग्न को छोड़कर अन्य शुभ राशि के लग्नों में जलाशयादि की प्रतिष्ठा की जा सकती है। मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार जिस लग्न में चन्द्र एवं पापग्रह 3, 6 एवं 11 स्थानों में हों, तथा अष्टम एवं द्वादशभावों को छोड़कर अन्य शुभभावों में शुभग्रहों की स्थिति हो, उस लग्न में जलाशयादि की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

बोधप्रश्न – सही विकल्प चुनिए –

1. कूप, तडाग एवं जलाशय प्रतिष्ठा निम्न राशि के लग्न में करनी चाहिए।
(क) मेष (ख) वृष (ग) सिंह (घ) धनु
2. कूप, तडाग एवं जलाशय प्रतिष्ठा में लग्न से 3, 6, एवं 11 स्थानों में निम्न ग्रह शुभ नहीं है–
(क) रवि (ख) भौम (ग) गुरू (घ) शनि
3. कूप, तडाग एवं जलाशय प्रतिष्ठा में लग्न से चन्द्र की स्थिति निम्न भाव में शुभ है –
(क) 2 (ख) 3 (ग) 8 (घ) 12
4. कूप, तडाग एवं जलाशय प्रतिष्ठा में लग्न से शुभ ग्रहों की स्थिति शुभ है –
(क) 5 (ख) 6 (ग) 8 (घ) 12
उत्तर – 1. ख, 2. ग, 3. ख, 4. क

– अभ्यास प्रश्न –

4. सत्य या असत्य बताइये –
क. कूप, तडाग एवं जलाशय की प्रतिष्ठा उत्तरायण में करनी चाहिए।
ख. कूप, तडाग एवं जलाशय की प्रतिष्ठा गुरू, शुक्र एवं चन्द्र के अस्त होने पर भी किया जा सकता है।
ग. मुहूर्त चिन्तामणि के अनुसार शुक्ल पक्ष में रिक्ता (4, 9, 14) तिथि को छोड़कर अन्य तिथियों में कूप, तडाग एवं जलाशय की प्रतिष्ठा की जानी चाहिए।
घ. वापी, कूप, तडागादि की प्रतिष्ठा में अश्विनी नक्षत्र ग्राह्य नहीं है।
ड. सिंह, मेष एवं धनु लग्न में जलाशयादि की प्रतिष्ठा की जा सकती है।
5. रिक्त स्थान भरिये –
क. कूप, तडाग एवं जलाशय के उत्सर्ग हेतु .... मास शस्त है।
ख. भविष्यपुराण के अनुसार यदि अत्यावश्यक हो तो .... में भी तालाब की प्रतिष्ठा विधि को सम्पन्न किया जा सकता है।
ग. मुहूर्त चिन्तामणि के अनुसार शुक्ल पक्ष में .... तिथियों में जलाशयादि की प्रतिष्ठा की जा सकती है।
घ. वापी, कूप, तडागादि की प्रतिष्ठा में .... नक्षत्र प्रशस्त होते हैं।
ड. मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार जिस लग्न में चन्द्र एवं पापग्रह .... स्थानों में हों, तथा . ... में शुभग्रहों की स्थिति हो, उस लग्न में जलाशयादि की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

4.6 सारांश –

कूप, तडाग एवं जलाशय आरम्भ के लिए मुहूर्तशोधन में कालशुद्धि, मासशुद्धि, पंचांगशुद्धि के अन्तर्गत तिथि, नक्षत्र, वारादि का शोधन, शुभलग्न, चक्रशुद्धि एवं अन्य विशेष बातों का विचार प्रायः जीर्णकूपारम्भ के समान ही करना चाहिए। फिर भी कूप, तडाग एवं जलाशय आरम्भ करने के मुहूर्त में कुछ विशेष बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं, जिनकी आवश्यकता जीर्णकूपारम्भ में नहीं होती। चक्रशुद्धि में तडागचक्र, निर्वारचक्र आदि का विचार

तालाब, जलाशयादि के आरम्भ हेतु अलग अलग किया जा सकता है। इसी प्रकार से कूप, तडाग एवं जलाशय की प्रतिष्ठा के लिए भी कालशुद्धि, पंचांगशुद्धि, लग्नशुद्धि आदि का विशेष विचार करना चाहिए। उपर्युक्त प्रकार से मुहूर्तशोधन किए जाने पर अवश्य ही शुभ फल की प्राप्ति होती है।

4.7 शब्दावली

मित्रार्कध्रुववासवाम्बुपमघातोयान्त्यपुष्येन्दुभिः – यह श्लोक का आधा भाग है। इसको अलग अलग करके इसका अर्थ स्पष्ट करते हैं। मित्र, अर्क, ध्रुव, वासव, अम्बुप, मघा, तोय, अन्त्य, पुष्य एवं इन्दुभिः। यहाँ प्रायः नक्षत्रों के स्वामियों के नाम निर्देश किए गए हैं, जिनसे नक्षत्र का अभिज्ञान होता है। जैसे मित्र, अनुराधा नक्षत्र का स्वामी है। अतः मित्र कहने से अनुराधा नक्षत्र जानना चाहिए। इसी प्रकार अर्क अर्थात् सूर्य से हस्त नक्षत्र, वासव से धनिष्ठा, अम्बुप अर्थात् वरुण से शतभिषा, तोय अर्थात् पानी से पूर्वाषाढ़ा, इन्दु अर्थात् चन्द्र से मृगसिरा नक्षत्र जानना चाहिए। आप जानते ही हैं कि उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा एवं रोहिणी नक्षत्र ध्रुव संज्ञक हैं। मघा एवं पुष्य नाम स्पष्ट ही है। अन्त्य शब्द से अन्तिम नक्षत्र रेवती जानना चाहिए।

संक्रान्ति –सूर्य एवं अन्य ग्रहों का एक राशि से दूसरे राशि में संक्रमण अर्थात् जाना ही संक्रान्ति है। परन्तु लोकव्यवहार में संक्रान्ति का तात्पर्य केवल सूर्य का नई राशि में प्रवेश करने के दिन से है। जैसे निरयण मान से लगभग 14 जनवरी को सूर्य धनु राशि से मकर राशि में प्रवेश करता है। अतः उसे मकर संक्रान्ति के नाम से जाना जाता है। ऐसे ही अन्य संक्रान्ति भी जाननी चाहिए।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. क. सही, ख. गलत, ग. सही, घ. सही, ड. गलत

2. क. हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, अनुराधा, मघा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा एवं रोहिणी

   ख. अनुराधा, मृगसिरा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य

   ग. मकर, कुम्भ एवं मीन

   घ. आग्नेय, सुजल

   ड. ब्रह्मयामल

   च. जल का सुख

3. क. निर्जल या जलहीन, ख. निर्जल या जलहीन, ग. असिद्धि,
घ. अनुराधा व ज्येष्ठा, ड. राहु जिस नक्षत्र पर स्थित हो।

4. क. सत्य, ख. असत्य, ग. सत्य, घ. असत्य
   ड. असत्य

5. क. माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख एवं ज्येष्ठ

ख. कार्तिक मास अथवा शुभ फल देने वाली संक्रान्तियों में

ग. 1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 12, 13 एवं पूर्णिमा में

घ. मृदु संज्ञक अर्थात् मृगसिरा, रेवती, चित्रा व अनुराधा नक्षत्र, क्षिप्र संज्ञक अर्थात् हस्त, अश्विनी, पुष्य व अभिजित् नक्षत्र, चर संज्ञक अर्थात् स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा व शतभिषा नक्षत्र एवं ध्रुव संज्ञक अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद व रोहिणी

ड. 3, 6 एवं 11,अष्टम एवं द्वादशभावों को छोड़कर अन्य शुभ भावों।

4.9 संदर्भग्रन्थ सूची

1. आचार्य वराहमिहिर, बृहत्संहिता, टीका – अच्युतानन्द झा, (संस्करण 1959), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।

2. दैवज्ञ श्रीरामाचार्य, मुहूर्त चिन्तामणि, टीका – केदारदत्त जोशी, पीयूषधारा टीकासहित, (द्वितीयसंस्करण 1979, पुनर्मुद्रण 1995), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

3. श्रीरामनिहोरद्विवेदी, बृहद्वास्तुमाला, सम्पादन–डॉ0. ब्रह्मानन्दत्रिपाठी, (संस्करण 2001), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

4. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, (संस्करण 2002), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

5. डॉ. देवीप्रसाद त्रिपाठी, वास्तुसार, (संस्करण 2006), परिक्रमा प्रकाश्न, शाहदरा, दिल्ली

6. डॉ. अशोक थपलियाल, वास्तुप्रबोधिनी, (संस्करण 2011), अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, विजयनगर, दिल्ली।

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. आचार्य वराहमिहिर, बृहत्संहिता, टीका – अच्युतानन्द झा, (संस्करण 1959), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।

2. दैवज्ञ श्रीरामाचार्य, मुहूर्त चिन्तामणि, टीका – केदारदत्त जोशी, पीयूषधारा टीकासहित, (द्वितीयसंस्करण 1979, पुनर्मुद्रण 1995), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

3. श्रीरामनिहोरद्विवेदी, बृहद्वास्तुमाला, सम्पादन–डॉ0. ब्रह्मानन्दत्रिपाठी, (संस्करण 2001), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

4. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, (संस्करण 2002), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

5. डॉ. देवीप्रसाद त्रिपाठी, वास्तुसार, (संस्करण 2006), परिक्रमा प्रकाश्न, शाहदरा, दिल्ली

6. डॉ. अशोक थपलियाल, वास्तुप्रबोधिनी, (संस्करण 2011), अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, विजयनगर, दिल्ली।

7. श्री भोजराजपंचांग, (संस्करण 2011–12), प्रधानसम्पादक – प्रो. आजाद मिश्र, राष्ट्रि संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल

8. विद्यापीठपंचांग, प्रधानसम्पादक – प्रो. वाचस्पति उपाध्याय, (संस्करण 2011–12), श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कूप, तडाग एवं जलाशयादि के आरम्भ में मुहूर्तशोधन में कालशुद्धि एवं मासशुद्धि विचार किस प्रकार किया जाता है? विश्लेषण कीजिए।

2. कूप, तडाग एवं जलाशयादि के आरम्भ में पंचांगशुद्धि एवं लग्नशुद्धि का विचार कैसे होता है? विवेचना कीजिए।

3. कूप, तडाग एवं जलाशयादि के आरम्भ में चक्रशुद्धिविचार के विषय में आप क्या जानते हैं? कल्पित उदाहरण सहित लिखिए।

4. कूप, तडाग एवं जलाशयादि की प्रतिष्ठा में मासशुद्धि व पंचांगशुद्धि क्या होती है? विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

5. कूप, तडाग एवं जलाशयादि की प्रतिष्ठा में पंचांगशुद्धि कैसे की जाती है? इस पर निबन्ध लिखिए।

खण्ड – 4

विविध मुहूर्त्त

इकाई – 01 : दुकान खोलना एवं क्रय–विक्रय मुहूर्त

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

व्यवसायिक कार्यों में लाभ हेतु वस्तुओं के क्रय एवं विक्रय से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। प्रस्तुत इकाई के द्वारा हम यह जान पायेंगे कि हमें व्यापार के लिए दुकान का निर्धारण तथा उसके लिए उपर्युक्त समय का ज्ञान कैसे करें। किस समय में कौन–कौन सी वस्तुओं का क्रय (खरीदें) करें और कब उसे हम विक्रय (बेचें) करें, जिससे अल्प श्रम तथा लागत में अधिकाधिक लाभ प्राप्त हो सके।

दुकान के विविध प्रकारों का परिज्ञान करते हुए हम प्रमुख मुहूर्तों का ज्ञान चार्ट के माध्यम से ही करेंगे, जिससे कम समय में शुभ मुहूर्त का निर्धारण कर सकेंगे। आज के व्यापारिक जीवन में लाभ एवं हानि के आकलन से इस इकाई की उपादेयता स्वतः सिद्ध होगी। हम व्यापार में सेवकों के विविध प्रकार के परीक्षण का ज्ञान भी कर लेंगे, जिससे उनसे होने वाले लाभ एवं हानि की जानकारी पहले ही प्राप्त हो सकेगी। व्यापार हेतु धन का उपयोग तथा व्यापार हेतु ऋण ग्रहण करने का मुहूर्त भी हम समझा सकेंगे। क्रय–विक्रय के विभिन्न भेदों का वर्गीकरण कर उनके शुभ मुहूर्त का ज्ञान भी अभिष्ट होगा।

1.2 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

(क) दुकान खोलने का मुहूर्त जान पायेंगे।

(ख) दुकान के विविध भेदों का वर्गीकरण समझ पायेंगे।

(ग) दुकान के वस्तुओं के खरीदने का मुहूर्त स्वयं जान जायेंगे।

(घ) विक्रय के लिए उपयुक्त काल मुहूर्त का ज्ञान भी सहज रूप से हो सकेगा।

(ड.) क्रय में किन–किन वस्तुओं को कब खरीदें तथा उसे संग्रहित करने का ज्ञान भी संभव होगा।

(च) आज व्यवसायिक संकट से उबरने में हमें प्रस्तुत मुहूर्तों से सफलता प्राप्त हो सकेंगी।

(छ) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इससे लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

(ज) धन का प्रयोग तथा व्यापार हेतु ऋण ग्रहण करने का समय जान पायेंगे।

(झ) दुकान में सेवकों को रखने हेतु ज्योतिषीय परीक्षण भी हो सकेगा।

(ञ) धन का उपयोग किस वस्तु पर तथा कब और कितना करें आदि का ज्ञान इस इकाई का लक्ष्य है।

(ट) अलग–अलग वस्तुओं के आधार पर क्रय–विक्रय हेतु विविध विभाजनों का ज्ञान भी संभव होगा।

1.3 दुकान खोलने का मुहूर्त –

ज्योतिष शास्त्र कालविधान शास्त्र है। काल का अर्थ होता है समय और शास्त्र का अर्थ एक सारणिबद्ध अनुशासन या परम्परा। अभिप्राय यह हुआ कि समय के विविध शुभाशुभ रूपों का निरूपण करना इसका मुख्य प्रतिपाद्य है। ग्रह–नक्षत्रों के माध्यम से हम समय के शुभाशुभ प्रभाव को जान सकते हैं और उसका लाभ समय सापेक्ष ले सकते हैं। मुहूर्त का अर्थ भी समय ही होता है। अतएव प्रत्येक कार्य के बिना विघ्न की समाप्ति तथा उससे लाभ प्राप्त करने की कामना से हम शुभ मुहूर्त का ज्ञान करना चाहते हैं। इस इकाई का प्रतिपाद्य विषय व्यापारिक कार्यो में लाभ के उद्देश्य से संग्रहित किया गया है। हम किस समय में दुकान आरम्भ करें, जिससे हमें व्यापार में लाभ तथा उन्नति प्राप्त हो और हमारा कार्य, व्यापार हमेशा चलता रहे।

जिस समय ज्योतिष शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना हुई उस समय मनुष्यों का व्यापार सीमित रूप में तथा क्षेत्रीय आधार पर विभाजित था परन्तु आज के युग में यह व्यापक तथा विस्तृत क्षेत्र में फैल चुका है। अतएव प्राचीन ज्योतिष विद्वानों के बीज रूप मुहूर्त का विस्तार आवश्यक हो गया है, जिससे कार्य के और व्यापार के आधार पर हम दुकान के स्वरूप का ज्ञान कर पायेंगे। जैसे हमें कपड़ा का दुकान खोलना है, तो सबसे पहले हम दुकान खोलने वाले व्यक्ति का नाम और फार्म (व्यवसायिक) का नाम जानेंगे तथा दुकान के स्थल का नाम जानकर काकिणी विचार के द्वारा लाभ हानि जानेंगे, इसके बाद दुकान खोलने वाले या फार्म की राशि से शुक्र एवं चन्द्र का विचार कर नक्षत्र, वार, योग आदि मिलाकर कपड़ा दुकान खोलने का आदेश करेंगे। क्योंकि वस्त्र के कारक ग्रह शुक्र एवं चन्द्र हैं जिनका विचार जन्म कुण्डली के आधार पर भी करना चाहिए फिर कपड़ा दुकान का निश्चय करें।

1.4 दुकान खोलने वाले मुहूर्त के मुख्य प्रभाव कारक तत्व –

(क) काकिणी विचार–

हम पूर्व में यह जान गये हैं कि प्रत्येक दुकान को खोलने के पूर्व हमें काकिणी का विचार अवश्य करना चाहिए। क आदि वर्गो के कुछ मानक अंकों के आधार पर शास्त्रीय रीति से काकिणी का अंक ज्ञान किया जाएगा। (1) यथा– वर्गांक ज्ञान

वर्ग		अंक	
अ	–	अः	(1)
क	–	ड.	(2)
च	–	ञ	(3)
ट	–	ण	(4)
त	–	न	(5)
प	–	म	(6)
य	–	व	(7)
श	–	ह	(8)

काकिणी ज्ञान विधि –

उपरोक्त अपने वर्गांक को दूना करके दूसरे के वर्गांक को जोड़कर और योगफल में 8 का भाग देने पर जिसका शेष अधिक होता है। वह धनदाता होता है। यहाँ अपने अर्थात् जिसको दुकान खोलना है तथा दूसरा जिस स्थान पर दुकान खोलना है। इस प्रकार दुकान के स्थान एवं दुकानदार दोनों का अलग–अलग संख्या निकालकर यह देखें कि किसका ज्यादा अंक है, यदि स्थान का ज्यादा हो तो अच्छा कहा जाता है।

उदाहरण – जैसे परशुराम नामक व्यक्ति को वाराणसी के लंका नामक स्थान में दुकान खोलना है, तो इनकी काकिणी कैसी है।

सर्वप्रथम परशुराम में आदि वर्ण का वर्गांक = 6, लंका के ल वर्ण का वर्गांक = 7 है। अब विधि के आधार पर –

= परशुराम का – 6 × 2 + 7 = योग 19 ÷ 8 = 3 शेष।

लंका का = 7 × 2 + 6 = 20 ÷ 8 = 4 शेष।

यहाँ लंका का शेषांक अधिक होने से परशुराम को लंका में दुकान खोलने पर अर्थ लाभ निश्चित होगा ऐसा जानना चाहिए। यहाँ यदि दोनों के शेष बराबर हों तो आय–व्यय बराबर तथा स्थान का जितना अधिक होगा उतना अधिक अर्थ लाभ जानना चाहिए। यदि नहीं बन रहा है तो स्थान या व्यक्ति या फार्म के नाम को बदलकर जानना चाहिए।

(ख) पंचांग एवं ग्रहशुद्धि विचार –

दुकान खोलने के लिए काकिणी ज्ञान के बाद अब आवश्यक है कि हम जिस दिन दुकान आरम्भ करना चाहते हैं वो दिन कौन सा होगा। प्राचीन मुहूर्त शास्त्रीय ग्रन्थों में दुकान खोलने के लिए एक ही प्रकार की व्यवस्था प्राप्त होती है। वहाँ वस्तु भेद या दुकान भेद का कोई वर्गीकरण प्राप्त नहीं होता है। तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण को पंचांग कहते हैं। मुहूर्तचिन्तामणि, मुहूर्तरत्नमाला, मुहूर्तमार्तण्ड, आदि ग्रन्थों में सभी कार्यों के लिए अलग–अलग मुहूर्त बताये गये हैं। जिसमें पूर्वोक्त पाँचों अंगों की शुद्धि का विचार कर दुकान खोलने के मुहूर्त का निर्धारण किया जाएगा। हमें निम्नलिखित तिथि, वारादि में ही यह कार्य करना चाहिए। इनको पंचांग में देखकर और स्थिति का निर्धारण करना चाहिए, जिससे शुभ मुहूर्त में दुकान का आरम्भ हो सके। अब पंचांग एवं ग्रह शुद्धि को सारिणी के द्वारा प्रदर्शित करेंगे, जिससे हम इस मुहूर्त का चयन आसानी से कर सकें।

''दुकानन खोलने का मुहूर्त चक्र''

तिथि	1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 12, 13, 15
वार	रवि, चन्द्र, बुध, गुरू, शुक्र, शनि
नक्षत्र	मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, 3 उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्वि, पुष्य
लग्न	1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 12
ग्रह शुद्धि	चन्द्र एवं शुक्र लग्न में हों, 12, 8, में पापग्रह न हों, 2, 11, 10 में शुभग्रह हों।
विशेष	कुछ आचार्य भू–रूदन दिन वर्जित करते हैं। भूरूदन दिन–मासान्त, वर्षान्त, 30 (अमावस्या), होलिका दहन दिन (फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा)

वर्तमान में कुछ ज्योतिषी कार्य एवं व्यापार के आधार पर दुकान खोलने का मुहूर्त भिन्न–भिन्न बताते हैं पर यह किसी भी आचार्य ने नहीं बताया है।

(1) अभ्यास प्रश्न–

(1) रिक्त स्थान भरिए।

(क) कालविधान शास्त्र .... है।

(ख) तिथियाँ .... होती हैं।

(ग) भद्रा शुभ/अशुभ होती है। (चिन्ह लगावें)

(2) लघु उत्तरीय प्रश्न–

(क) काकिणी किसे कहते हैं?

(ख) मुहूर्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ कौन है?

(ग) दुकान खोलने के लिए दिन कौन से है?

(घ) काकिणी ज्ञान का सूत्र क्या है?

(ड.) दुकान खोलने में प्रयुक्त नक्षत्रों का नमा लिखें?

(3) बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) व्यवसायिक मुहूर्त के अन्तर्गत आता है?

(1) उपनयन मुहूर्त (2) विवाह मुहूर्त

(3) निष्क्रमण मुहूर्त (4) क्रय–विक्रय मुहूर्त

(ख) काकिणी के लिए आवश्यक नहीं है?

(1) 4 (2) 6 (3) 2 (4) 3

1.4.2 क्रय–मुहूर्त

पहले के पाठ्यांश के आधार पर हम यह जान गये हैं कि हमें दुकान कब और किस स्थान पर खोलना है। अब हम प्रस्तुत प्रकरण में यह बताने जा रहें है कि हम अपनी दुकान के लिए सामग्री या वस्तुओं का क्रय कब करें, जिससे अधिकाधिक लाभ प्राप्त हो सके। ज्योतिष शास्त्र के मुहूर्त ग्रन्थों में क्रय (खरीदने) करने के लिए 2 प्रकार के मुहूर्तो की चर्चा है। प्रथम प्रकार के अन्तर्गत यह बताया गया है कि सभी प्रकार की वस्तुओं की क्रय करने का एक ही मुहूर्त है तथा दूसरे स्थान पर कुछ वस्तुओं के क्रय हेतु पृथक्–पृथक् मुहूर्त प्राप्त होता है। हम इसे चक्र के माध्यम से आसानी से जान सकेंगे।

<u>क्रय–मुहूर्त (सभी वस्तुओं हेतु)</u>

तिथि	1 (कृ.)., 2, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 12, 13, 15
वार	चन्द्र, सूर्य, बुध, गुरू, शुक्र, शनि
नक्षत्र	रेवती, शतभिष्, अश्विनी, श्रवण, चित्रा
लग्न	किसी आचार्य के मत से वृश्चिक (8) लग्न को छोड़कर शेष लग्नों में करना चाहिए

(क) रत्न क्रय मुहूर्त

तिथि	1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 12, 13, 15
वार	सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरू, शुक्र
नक्षत्र	पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, ज्येष्ठा, श्रवण, शतभिष्
शुद्धि	भद्रा, कुयोग, मलमास, गुरू–शुक्रास्त में छोड़कर पुरूष का चन्द्रबल अनुकूल होने पर रत्न क्रय करें।

(ख अश्व (वाहन) क्रय मुहूर्त

तिथि	1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 12, 13, 15
वार	रवि, चन्द्र, बुध, गुरू, शुक्र
नक्षत्र	हस्त, अश्विनी, पुष्य, रेवती, धनिष्ठा, मृगशिरा, स्वाति, शतभिष, पुनर्वसु

(ग) भूमि क्रय मुहूर्त

तिथि	5, 6, 10, 11, 1, 15
वार	गुरूवार, शुक्रवार
नक्षत्र	मृगशिरा, पुनर्वसु, आश्लेषा, मघा, विशाखा, अनुराधा, पू0षा0, पू0फा0, पू0भा0, मूल, रेवती।
लग्न	2, 5, 8
शुद्धि	1, 5, 9 में शुभग्रह हों।

इस प्रकार कुत्रचिद् गो–क्रय मुहूर्त भी प्राप्त होते हैं। क्रय मुहूर्त के अन्तर्गत बेचना (विक्रय) तथा विक्रय मुहूर्त के अन्तर्गत क्रय करने को शास्त्र में ठीक नहीं माना गया है। यहाँ आचार्य राम दैवज्ञ मुहूर्तचिन्तामणि में कहते हैं कि–

''क्रयर्क्षे विक्रयो नेष्टः विक्रयर्क्षे क्रयोऽपि न''

–मु0चि0, नक्षत्र, प्रक0, 16 श्लोक।

अतएव हमें मुहूर्त में वस्तु को खरीदना चाहिए तथा दूसरे व्यापारी का आदेश प्राप्त कर उसकी वस्तु को बाँध कर अपने दुकान में किनारे रख दें तथा दूसरे दिन उसे दे दें। ऐसा करने पर पूर्व श्लोक के साथ समन्वय हो जाएगा और कार्य भी हो जाएगा।

(2) अभ्यास प्रश्न –

(1) असत्य/सत्य लिखें।

(क) क्रय किये गये वस्तु की काकिणी बनावें।

(ख) क्रय मुहूर्त में वृश्चिम लग्न गृहीत है।

(ग) मंगलवार को क्रय नहीं करना चाहिए।

(घ) पुष्य नक्षत्र में रत्न नहीं खरीदें।

(2) लघु उत्तरीय प्रश्न –

(क) क्रय मुहूर्त की तिथि में वर्जित तिथि लिखें।

(ख) रत्न क्रय में वारों का उल्लेख करें।

(ग) अश्व क्रय में नक्षत्रों का नाम लिखें।

(घ) भूमि क्रय हेतु दिवसों का नाम बतावें।

1.4.3 विक्रय–मुहूर्त

व्यवसायिक कार्य हेतु पूर्व के प्रकरणों में हम दुकान खोलने तथा उसमें द्रव्य देकर वस्तुओं को खरीदने (क्रय) का ज्ञान कर चुके हैं। अब हमें पैसा लेकर खरीदे गये वस्तुओं का विक्रय (बेचना) करना है और इस विक्रय मुहूर्त का ज्ञान हम प्रस्तुत प्रकरण में सीखेंगे।

सर्वप्रथम यहाँ पूर्व प्रकरणांश की भाँति इसमें भी एक सामान्य रूप से प्रसिद्ध विक्रय मुहूर्त प्राप्त होता है तथा कुछ विशेष स्थलों पर विशेष वस्तुओं की विक्रय मुहूर्त की चर्चा प्राप्त होती है। इसे चक्र के द्वारार बता रहे हैं।

विक्रय मुहूर्त (सभी वस्तु हेतु)

तिथि	1, 2, 3, 5, 7, 10, 11, 13
वार	रवि, चन्द्र, बुध, गुरू, शुक्र
नक्षत्र	3 पूर्वा, विशाखा, कृत्तिका, आश्लेषा, भरणी
ग्रह शुद्धि	शुभग्रह केन्द्र एवं त्रिकोण में हो, पापग्रह त्रिषडाय में हों, कुंभ लग्न के अतिरिक्त किसी लग्न में।

विशेष रूप से अश्व, हस्ति (हाथी) तथा रत्न के लिए विक्रय मुहूर्त एवं क्रय मुहूर्त दोनों की पृथक् व्यवस्था प्राप्त होती है, जिससे हम इनका क्रय एवं विक्रय निर्धारण करते हैं। यहाँ पूर्वोक्त तिथि एवं दिन तथा ग्रहशुद्धि की चर्चा है, परन्तु नक्षत्रों में किचिद् वस्तुजन्य भेद दिखाई देता है, जिसका ज्ञान हम कर सकते हैं।

1.4.4

उपर्युक्त पाठ्यांश में हम यह जान गये हैं कि हम किस समय दुकान खोलें तथा उसमें स्थित वस्तुओं का कब क्रय–विक्रय करें। अब आगे हम यह बताने जा रहें है कि और क्या–क्या आवश्यक जानकारी है, जिसका हमें व्यवसायिक लाभ लेने में विशेष ध्यान रखना चाहिए। यहाँ अब हम यह जानकारी देना चाहेंगे कि व्यापार के प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं– (1) दुकान, (2) दुकानदार, (3) क्रय, (4) विक्रय, (5) सेवक, (6) वस्तु।

प्रस्तुत अंगों में केवल दो अंग सेवक विचार तथा वस्तु निर्धारण शेष है। इस भाग में हम पहले यह बताने का प्रयास करेंगे कि सेवक का स्वामी के साथ सम्बन्ध विचार करें तथा उसे दुकान में रखें, जिससे लाभ एवं सुरक्षा दोनों कायम रहे।

ग्रन्थकार कहते हैं, जिस प्रकार लड़का एवं लड़की के विवाह हेतु गुण मेलापक देखते हैं, गृह तथा गृहस्वामी का मेलापक विचार करते हैं उसी प्रकार से सेव्य (स्वामी) एवं सेवक दोनों का विचार करना चाहिए। यहाँ आचार्य कहते हैं कि –

''सेव्यसेवकयोश्चैवं गृहतत्स्वामिनोरपि।
परस्परं मित्रयोश्च एका नाड़ी प्रशस्यते।।

अर्थात् प्रस्तुतांश के द्वारा सेवक और स्वामी की एक नाड़ी दोनों के सम्बन्ध के लिए उत्तम बताई गई है। यद्यपि विवाह में यह अच्छा नहीं माना गया है। परन्तु इस प्रसंग में

एक नाड़ी ग्राह्म है। अतएव सेवक रखने के पहले हमें इनके मेलापक का विचार करके रखना चाहिए।

वस्तु के निर्धारण में हमें वार, ग्रह, शुद्धि नक्षत्र एवं वाराधिपति के रंग, धातु, रस, व्यापार, कार्य एवं जन्मांग चक्र में आजीविका की वस्तु या क्षेत्र आदि का विशेष ध्यान रखना चाहिए, जिससे वस्तु लाभ प्राप्त हो सके।

(3) अभ्यास प्रश्न –

(1) वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

(क) विक्रय मुहूर्त में किस वार का ग्रहण नहीं है?

(1) शनिवार (2) मंगलवार

(3) शुक्रवार (4) रविवार

(ख) केन्द्र कहते हैं?

(1) 8 (2) 9 (3) 7 (4) 5

(ग) त्रिकोण में आता है?

(1) 4 (2) 5 (3) 8 (4) 12

(घ) एक नाड़ी अच्छी होती है?

(1) पति–पत्नी में (2) गुरू–शिष्य में

(3) सेवक–स्वामी में (4) किसी में नहीं

(2) असत्य/सत्य लिखें।

(क) व्यापार का मुख्य अंग दुकान है।

(ख) क्रय के मुहूर्त में विक्रय ठीक नहीं है।

(ग) वर–कन्या के मेलापक जैसा स्वामी एवं सेवक का विचार करें।

(घ) विक्रय मुहूर्त में पापग्रह केन्द्र में हों।

1.5 सारांश–

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपने जाना कि–

- व्यापार का ज्योतिष के साथ क्या सम्बन्ध है तथा काल (समय) के प्रतिपादक इस शास्त्र का व्यापार पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

- दुकान खोलने के लिए हमें काकिणी का विचार सबसे पहले करनी चाहिए तथा लाभप्रद स्थान का चयन काकिणी के द्वारा करनी चाहिए।

- दुकानदार के दुकान के स्थल का निर्धारण करके दुकान खोलने के लिए आवश्यक पंचांग शुद्धि सहित नक्षत्रादि का विचार किया जाता है।

- इसके बाद काकिणी तथा पंचांग शुद्धि वा दुकान खोलने वाले मुहूर्त के आधार पर दुकान खोलना चाहिए।

- दुकान खोलने के बाद उसमें सामग्री या वस्तुओं के क्रय (खरीदी) करने के लिए मुहूर्त चक्र द्वारा मुहूर्त निर्धारण कर और वस्तुओं को दुकान में रख दिया जाता है।

- पुनः खरीदें गये सामग्री को विक्रय मुहूर्त में बेचते है, जिससे अधिकाधिक लाभ प्राप्त हो।

- जातक के जन्मांग एवं नवांश चक्र के द्वारा व्यापार योग्य वस्तु या सामग्री का निर्धारण उसके ग्रह स्थिति से किया जाता है, जिससे व्यापार की सफलता तथा पर्याप्त लाभ की प्राप्ति संभव हो सके।

- दुकान के आकार में परिवर्तन (बड़े) होने पर उसमें सेवकों (नौकरो) को रखने के पहले मेलापक विधि से उनके नाम के आदि वर्ण से तथा दुकानदार (स्वामी) के आदि वर्ण से विधिवत् विचार करके नौकरों को दुकान में रखना चाहिए, जिससे किसी भी प्रकार का नौकर के साथ विवाद न हो तथा दुकान अच्छी प्रकार से चलती रहे।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली–

(1) मुहूर्त–

मुहूर्त शब्द काल का वाचक है। काल (समय) शुभ या अशुभ होता है, उसी प्रकार शुभ मुहूर्त एवं अशुभ मुहूर्त भी होते है। आचार्य श्रीपति मुहूर्तरत्नमाला में कहते हैं कि–

''दिनस्य यः पंचदशो विभागः रात्रेस्तथातद्धिमुहूर्तमानम्''

–मु0चि0, पीयूषधारा टीका, पृ0 3

अर्थात् दिनमान के 15वें भाग तथा रात्रिमान के 15वें भाग का नाम मुहूर्त है।

इस प्रकार 24 घंटे में 30 मुहूर्त होते हैं, या 60 घटिका में 30 मुहूर्त। परन्तु दिनमान एवं रात्रिमान के छोटे–बड़े होने पर इनका मान भी छोटा बड़ा होता रहता है। इस प्रकार मुहूर्त का अर्थ समय का एक खण्ड होता है। जिसका अमरकोश में मुहूर्त = 2 घटिका बताया गया है। यह मध्यम मान होता है।

1 घटिका = 24 मिनट

इसलिए, 24 × 2 = 48 मिनट = मुहूर्त (मध्यममान) होता है।

(2) काकिणी–

क आदि वर्णो के माध्यम से कुछ मानक तैयार कर जो परिणाम स्वरूप हानि–लाभ का आकलन किया जाता है, उसे काकिणी कहते हैं। यह विधा वास्तु शास्त्र तथा किसी स्थान विशेष में बसने या व्यापार कार्य में प्रयोग की जाती है। इसे ही हम काकिणी कहते हैं।

(3) भूरूदन–

हमारे पूर्वज महर्षियों ने अपनी अलौकिक मेधा के द्वारा तथा सतत् प्रयोग के आधार पर मानव जैसे व्यवहारादि भावों को प्राकृतिक वस्तुओं पर भी परीक्षण किया है तथा उनको भावनात्मक वर्गो में विभाजित कर बताया है। हमारी भूमि के लिए कुछ दिन निश्चित किये गये हैं, जिन्हें भूरूदन दिन बताया गया है। अर्थात् इस दिन हमारी भूमि रूदन (रोना) करती है। अतएव रूदन संज्ञा दी गई है।

भू रूदन दिन – मासान्त, वर्षान्त, अमावस्या, होलिका दहन (पूर्णिमा फाल्गुन शुक्ल)।

(4) भद्रा–

पंचांग (तिथि + वार + नक्षत्र + योग + करण) के अन्तर्गत करण प्राप्त होता है, जिसमें 2 प्रकार के करण होते हैं (1) चल करण – ये 6 बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि (भद्रा) हैं। (2) स्थिर करण – ये 4 (शकुनि, चतुष्पद, नाग, किस्तुघ्न) हैं। तिथि का अर्द्ध (1/2) भाग करण का मान होता है और विष्टि करण का ही नाम भद्रा है, जो एक मास (30 दिन) में 8 बार आता है और यह अशुभ माना जाता है।

(5) मलमास–

मल का अर्थ विकार होता है। यह मल रवि और चन्द्र का ग्रहण किया जाता है अर्थात् रविमास एवं चान्द्रमास के अन्तर को मलमास कहते है। जिस चान्द्रमास (30 तिथि) में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती उसे मलमास, अधिकमास या खरमास कहते हैं। यह सामान्य रूप से 32 मास 16 दिन 4 घटी पर पड़ता है, जिसे आम लोग प्रत्येक तीसरे वर्ष बताते हैं।

1.7 अभ्यास प्रश्न एवं उत्तर–

अभ्यास प्रश्न (1) के उत्तर –

(1) – (क) ज्योतिष शास्त्र

(ख) 15 + 15 (30)

(ग) अशुभ

(2) – (क) 'क' आदि वर्गों के (वर्गांक) माध्यम से जब हम किसी गणितीय निष्कर्ष को जानते हैं उसे काकिणी कहते है। यह ज्योतिष शास्त्र का पारिभाषिक पद है।

(ख) मुहूर्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ आचार्य रामदैवज्ञ कृत् ''मुहूर्तचिन्तामणि'' है।

(ग) दुकान खोलने के लिए रविवार, सोमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार एवं शनिवार गृहीत हैं।

(घ) स्ववर्गांक × 2 + परवर्गांक = योग ÷ 8 = शेष (काकिणी हुई)।

(ड.) मृगशीर्ष, चित्रा, रेवती, अनुराधा, 3 उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य।

(3) – (क) – (4) क्रय–विक्रय मुहूर्त

(ख) – (3) वस्तु का नाम

(ग) – (3) 2

अभ्यास प्रश्न (2) के उत्तर –

(1) – (क) – असत्य

(ख) – असत्य

(ग) – सत्य

(घ) – असत्य

(2) – (क) शु. प्रतिपदा, 4, 9, 14, 8 तिथि।

(ख) सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु एवं शुक्रवार।

(ग) हस्त, अश्विनी, पुष्य, धनिष्ठा, मृगशीर्ष, स्वाती, शतभिष्, पुनर्वसु।

(घ) गुरुवार एवं शुक्रवार।

अभ्यास प्रश्न (3) के उत्तर –

(1) – (क) – (1) शनिवार

(ख) – (3) 7

(ग) – (2) 5

(घ) – (3) सेवक–स्वामी में

(2) – (क) –सत्य

(ख) – सत्य

(ग) – सत्य

(घ) – असत्य

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

(1) मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत्

व्याख्याकार – श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी

प्रकाशन – चौखम्बा सुरभारती प्रकाश्न, वाराणसी (2009)

(2) मुहूर्तकल्पद्रुम, श्री विट्ठल दीक्षित प्रणीत

सम्पादक – श्रीकृष्ण जुगनु

प्रकाशक – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी (2009)

(3) मुहूर्त पारिजात, पं. सोहन लाल व्यास

सम्पादक – पं. सीताराम झा

प्रकाशक – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी (2006)

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

(1) अवकहड़ाचक्रम्, व्याख्याकार – अवध बिहारी त्रिपाठी, प्रकाशक – चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, पो.बा. 1008, वाराणसी 221001।

(2) शीघ्रबोध, व्याख्याकार – पं. रामजन्म मिश्र, प्रकाशक – चौखम्बा संस्कृत सीरीज

आफिस, पो.बा. 1008, वाराणसी 221001।

(3) हृषीकेश पंचांग, आचार्य नागेश उपाध्याय, बी–2/95 सी भदैनी, वाराणसी।

(4) विश्वपंचांग (प्रतिवर्ष), प्रो. रमेश चन्द्र पण्डा (संकायप्रमुख, सं.वि.ध.वि. संकाय), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

(5) मुहूर्त गणपति, व्याख्याकार – डॉ. मुरलीधन चतुर्वेदी, प्रकाशक – चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, पो.बा. 1008, वाराणसी 221001।

(6) मुहूर्त दीपक, व्याख्याकार – डॉ. श्रीकृष्ण 'जूगनू', प्रकाशक – चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, पो.बा. 1008, वाराणसी 221001।

(7) मुहूर्त ज्योतिष विज्ञान, व्याख्याकार – पं. राजशेखर, प्रकाशक – चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, पो.बा. 1008, वाराणसी 221001।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) व्यवसायिक कार्य में ज्योतिष के महत्त्व पर प्रकाश डालें।

(2) काकिणी विचार पर टिप्पणी लिखें।

(3) दुकान खोलने हेतु आवश्यक मुहूर्त्तों का प्रतिपादन करें।

(4) क्रय–विक्रय मुहूर्त की विवेचना करें।

(5) टिप्पणी लिखें –

- (क) अधिक मास।
- (ख) अस्त विचार।
- (ग) सेवक विचार।

इकाई – 02 : देवालय मुहूर्त एवं मूर्ति प्रतिष्ठा

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना –

प्रस्तुत इकाई में देवताओं के मन्दिर निर्माण एवं उसमें देवताओं के प्रतिष्ठापन का मुहूर्त प्रतिपादित हैं। विविध प्रकार के देवताओं की मूर्तियों की प्रतिष्ठा का मुहूर्त भी इसी इकाई के अन्तर्गत समाहित किया गया है।

इस इकाई का ज्ञान होने पर आप किसी भी मन्दिर के निर्माण हेतु आवश्यक भू शुद्धि, राहुमुख विचार, मन्दिर के दैर्घ्य–विस्तार तथा मूर्तियों का प्रतिष्ठा से सम्बन्धित स्थान दिक् तथा मुहूर्त की जानकारी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। इस इकाई के अध्ययन से देवालय मुहूर्त तथा देवताओं की मूर्तियों की स्थापना का शास्त्रीय ज्ञान संभव हो सकेगा तथा तद्–तद् देवताओं के शुभ दिनों का ज्ञान भी हो पाएगा। हम जिस घर में रहते है, उसमें किस प्रकार देवताओं या मूर्तियों को स्थापित करें जिससे अधिकाधिक आध्यात्मिक बल मिले और हम उसका लाभ भौतिक जगत पर प्राप्त कर सकें की चर्चा भी यहाँ बृहद् रूप में संकलित है।

2.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप–

(क) देवालय निर्माण के प्रारम्भिक बातों को जान सकेंगे।

(ख) देवालय सम्बन्धित भू–विचार भी कर सकेंगे।

(ग) देवताओं के प्रतिष्ठा में अयन, मासादि की शुद्धि का ज्ञान भी संभव हो सकेगा।

(घ) अलग–अलग देवताओं के स्थापना हेतु अलग–अलग मुहूर्तो की जानकारी उपलब्ध हो पाएगी।

(ड.) धर्मशास्त्रीय व्यवस्था के अनुरूप देवतास्थापन के लिए विशेष शुद्धियों को बता पायेंगे।

(च) अपने घरों में देवताओं के स्थापन तथा दिक् का ज्ञान पूजन हेतु कर सकेंगे।

(छ) न केवल देवताओं के अपितु पितृगणों के स्थापन तथा जैन देवताओं के स्थापन भी हम जान सकेंगे।

(ज) प्रतिष्ठादि कर्म में शास्त्राक्त दोनों को पहले जान लेने पर तद्गत दोष से बच जायेंगे और शुभ फल प्राप्त कर सकेंगे।

2.3 देवालय मुहूर्त एवं मूर्ति प्रतिष्ठा : प्रतिपाद्य –

मनुष्य के जीवन में दो प्रकार के प्रमुख पक्ष पाये जाते हैं। प्रथम भौतिक पक्ष तथा दूसरा आध्यात्मिक पक्ष। जब मनुष्य भौतिक पक्षीय जीवन में अनेक प्रकार के कष्टों एवं संघर्षो से थक जाता है तब उसे आध्यात्मिक पक्ष का सहारा लेना पड़ता है जिससे सुख–शान्ति एवं उन्नति प्राप्त कर सकें। इसके लिए मनुष्य किसी देवी, देवताओं की शरण में जाकर पूजन–पाठादि करकें शान्ति प्राप्ति की विभिन्न चेष्टाये करता है। इस विषय परिस्थिति को दृष्टिकोण में रखकर ज्योतिषा शास्त्र में देवालय एवं मूर्ति स्थापना के मुहूर्त निर्धारित किये गये हैं। देवताओं के मूर्तियों एवं मन्दिरों के निर्माण के विविध प्रकार के वचन हमारे पुराणों में प्राप्त होते हैं। उपनिषदों एवं आरण्यकों में भी इसकी चर्चा अवश्य प्राप्त होती है। जिस पुराण में जिस आध्यात्मिक देव शक्ति की अवधारण की बृहत चर्चा बताई गई है, उसमें अवश्य तद् देवता के स्थापन का विचार भी किया गया है। यथा शिवमहापुराण में शिवलिंग स्थापन के काल एवं ग्रहशुद्धि का उल्लेख है।

सामान्य गृह अथवा राजगृह से भिन्न वास्तु विधाओं के आधार पर देव मन्दिरों का निर्माण गाँव से कुछ दूरी पर करने का विधान है, जहाँ शान्ति एवं ध्यान में बाधा न हो तथा एक विशेष विधा के अन्तर्गत उसका निर्माण कार्य किया जाता है, जिससे गृह वास्तु से बहुत स्थानों पर अन्तर प्राप्त होता है। दैर्घ्य–विस्तार सीमाओं से रहित तथा उनके प्रतिष्ठा हेतु विविध प्रकार के मुहूर्तो की परिधि का निर्माण मूर्ति के जीवन्तता हेतु परिकल्पित किया गया है। मूर्तिकला (देववास्तु) के अन्तर्गत विविध प्रकार के माप, ऊचाई, मोटाई तथा विविध प्रकार के चिन्हों एवं शास्त्रों का निर्माण भी मुहूर्त की अपेक्षा रखता है।

हिन्दू धर्मशास्त्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत हमारे असंख्य देवी एवं देवताओं की चर्चा प्रतिपादित है जिसमें भिन्न–भिन्न सम्प्रदाय तथा पत्थ है आध्यात्मिक पक्ष को मजबूत करने के लिए जिससे हम मनुष्य अल्प जीवन में सुख समृद्धि प्राप्त कर सकें। शास्त्रोक्त समस्त देवताओं तथा देवीयों के मन्दिरों का निर्माण असंभव सा लगता है। अतएव हमारे प्राचीन आचार्यो ने इन्हें दो वर्गो में विभाजित कर उनके प्रतिष्ठादि का विधान बताया है।

प्रथम वर्ग वराहादि आचार्यो द्वारा – उत्तरायण के सूर्य में, द्वितीय वर्ग अन्य आचार्यो के द्वारा – दक्षिणायन के सूर्य में जैसा कि आचार्य गोविन्द दैवज्ञ तथा विठलदीक्षित कहते हैं–

उग्रदेवानां दक्षिणायनेऽपि भवति। –मु0चि0 पृ0 162

श्रीवराहो मातरो भैरवश्चचण्डी स्थाप्या दक्षिणे चायनेऽपि। –मु0 कल्पद्रुमः पृ0 452

देवताओं तथा मूर्ति प्रतिष्ठा कराने वाले आचार्य का भी विचार नारद संहिता में विस्तार से किया गया है। बताया गया है कि आचार्य को विद्वान होना चाहिए तथा अर्थ का ज्ञान आचार्य को न होने पर यजमान का अहित होता है। मन्त्र अशुद्धोच्चारण करने पर ऋत्विक् का तथा कर्मशास्त्र विरोधी होने पर कर्ता की स्त्री का नाश होता है।

–नारदपुराण 1/56–536–39

इस प्रकार देवालय तथा मूर्तियों में विकृति या परिवर्तन होने पर देवोत्पात अध्याय के अन्तर्गत बृहदैवज्ञरंजन तथा बृहत्संहिता में गंभीर विचार किया गया है जिससे हमें उसका लक्षण एवं फल दोनों एक साथ प्राप्त हो जाते हैं।

वस्तुतः प्रस्तुत इकाई के दोनों मुहूर्त देवालय तथा मूर्ति प्रतिष्ठा एक ही हैं, मात्र तद्–तद् देवता की मूर्ति को तद्–तद् शुभ दिनों में या प्रतिष्ठा मुहूर्त में किया जाता है। कुछ देवताओं के लिए पृथक से चर्चा प्राप्त होती है। अतएव उसे उसके भेद क्रम में बतायेंगे।

2.4.1 देवालय एवं मूर्ति प्रतिष्ठा में मास विचार –

देवालय निर्माण एवं मूर्ति प्रतिष्ठा के लिए हमारे प्राचीन ग्रन्थों में सर्वप्रथम मास का विचार किया गया है। आचार्य ने बृहस्पति के वचनों को उधृत करते हुए बताया है कि उत्तरायण के सूर्य में प्रतिष्ठा शुभ होता है तथा दक्षिणायण में अशुभ होता है। अर्थात् 6 मास (14 जनवरी से 13 जुलाई तक) उत्तरायण में शुभ तथा 6 मास (13 जुलाई से 14 जनवरी तक) शुभ कारक नहीं होता है। ऐसा ही विचार आचार्य रामदैवज्ञ ने मुहूर्तचिन्तामणि में भी प्रतिपादित किया है।

देवता विशेष के क्रम में मास का प्रतिपादन निम्नलिखित रूप में मुहूर्तगणपति ग्रन्थ में प्राप्त होता है–

दक्षिणायन में – वराह, भैरव, वामन, दुर्गा, नृसिंह

श्रावण – शिव

आश्विन – दुर्गा

मार्गशीर्ष– विष्णु

पौष – सभी देवताओं की प्रतिष्ठा

बृहदैवज्ञरंजन नामक मुहूर्त ग्रन्थ में 12 मासों का पृथक्–पृथक् प्रतिष्ठा का फल प्रतिपादित किया गया है–

पौष – राज्यवृद्धि

माघ – सम्पद प्राप्ति

फाल्गुन – द्रव्यलाभ

चैत्र – श्रीः

वैशाख – सौख्य

ज्येष्ठ – जय

आषाढ़ – यजमान का विनाश

श्रावण – राज्यनाश

भाद्रपद – महीनाश

अश्विन – राज्यनाश

कार्तिक – शत्रुवृद्धि

वसन्त ऋतु सभी जाति के लोगों के लिए प्रतिष्ठा करना श्रेष्ठ है।

1. अभ्यास प्रश्न –

(क) देवालय निर्माण में उत्तम मास क्या है?

(ख) विष्णु प्रतिष्ठा के मास बतावें?

(ग) माघ मास में प्रतिष्ठा से क्या प्राप्त होता है?

(घ) मुहूर्तचिन्तामणि में कौन सा मास गृहीत है?

(ङ.) श्रावण मास में किसकी प्रतिष्ठा उत्तम है?

2.4.2 देवालय एवं मूर्ति प्रतिष्ठा में तिथि एवं वार विचार–

मास ज्ञान के बाद आवश्यक है कि हम पंचांग जन्य शुद्धियों में तिथि एवं वार का शुभाशुभ परिज्ञान करें। अतएव आचार्य वशिष्ठ कहते हैं कि शुक्लपक्ष के प्रथम दिन को

छोड़कर शेष दिनों में शुभ होता है तथा कृष्ण पक्ष के अन्तिम तृतीयांश (10 से 30) तक शुभकारक नहीं होता है। आचार्य नारद ने कहा है कि–

''यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः''

अर्थात् जिस देवता का जो दिन वा तिथि हो उसकी प्रतिष्ठा उसी दिन करें। तथा 1, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 12, 13 तिथियां प्रतिष्ठा हेतु शुभ हैं।

जातिपरक तिथियों का वर्णन भी प्राप्त होता है यथा–

विप्र – द्वितीया, तृतीया, पूर्णिमा

क्षत्रिय – पंचमी, सप्तमी

वैश्यं – दशमी

शुद्र – त्रयोदशी

आचार्य रामदैवज्ञ ने रिक्ता तिथि को छोड़कर शेष तिथियों में प्रतिष्ठा शुभकारक माना है।

प्रतिष्ठा में वार विचार के प्रसंग में नारद एवं मुहूर्तचितामणिकार की एक राय है कि मंगलवार को छोड़कर शेष वारों में प्रतिष्ठा शुभकारक होती है। इस प्रसंग के वारों के पृथक–पृथक फल जातिवश वारों के ग्रहण का विचार भी है।

रविवार – यश प्राप्ति

चन्द्रवार – कल्याण

मंगलवार – अग्निभय

बुधवार – वृद्धि

गुरुवार – दृढ़ता

शुक्रवार – लक्ष्मी प्राप्ति

शनिवार – सुन्दर स्थिरता

जतिपारक विचार–

विप्र – गुरू, शुक्र

क्षत्रिय – रवि, चन्द्र

वैश्य – बुध

शुद्र – शनि

आचार्य कहते हैं कि–

"जीव–शुक्र–बुधानां च सर्वेषां शोभनावहा" –वृ.दै. रंजन, 83/24

2. अभ्यास प्रश्न –

निम्नलिखित वाक्यों को सही व गलत का निर्णय करें–

(क) जिस देवता की जो तिथि हो उसमें प्रतिष्ठा करें।

(ख) क्षत्रिय वर्ण के लिए प्रतिष्ठार्थ दशमी ठीक है।

(ग) अमावस्या को प्रतिष्ठा उत्तम है।

(घ) रिक्ता में प्रतिष्ठा न करें।

(ड.) बुधवार की प्रतिष्ठा से पाप होता है।

2.4.3 देवालय एवं मूर्ति प्रतिष्ठा में विहित नक्षत्र एवं लग्नशुद्धि विचार–

देवालय तथा मूर्ति प्रतिष्ठा के लिए गुरू शुक्रोदय के साथ ही हस्त, अश्वि., पुष्य, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष्, 3 उत्तरा, रोहिणी नक्षत्रों को श्रेष्ठ माना गया है। वशिष्ठ ने अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल एवं रेवती को भी ग्रहण किया है। स्थापना क्रम में जाति परक नक्षत्रों के प्रसंग में प्राप्त होता है कि–

विप्र वर्ण को – 3 उत्तरा, पुष्य

क्षत्रिय को – श्रवण, हस्त, मूल

वैश्य वर्ण को – स्वाति, अनुराधा, रेवति

शुद्र को – अश्विनी

प्रायः समस्त स्थानों पर प्राप्त होता है कि रिक्ता तिथि, क्षयदिन, निन्द्ययोग में प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए। करण के ग्रहण प्रसंग में प्राप्त होता है कि–

ब्राह्मणवर्ग को – बव, बालव

क्षत्रिय वर्ण को – कौलव, तैतिल,

वैश्य वर्ण को – गर, वणिज

शूद्र वर्ण को – गर, वणिज ठीक होता है।

इस प्रकार लग्न शुद्धि प्रसंग में कहते हैं कि केन्द्र तथा त्रिकोण में शुभग्रह और 3, 6, 11वें चन्द्र, सूर्य, मंगल, शनि की स्थिति में प्रतिष्ठा करने पर देवता का सानिध्य अवश्य प्राप्त होता है। और कहते हैं कि शुक्र की राशि या नवांश में केन्द्र या उपचय में चन्द्रमा के रहने पर देव प्रतिष्ठा विषयक समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं।

आचार्य रामदैवज्ञ मुहूर्तचिन्तामणि में बताते हैं कि सभी देवताओं की स्थापना स्थित (2, 5, 8, 11) में करनी चाहिए। तथा विशेष का प्रतिपादन करते हुए बताते हैं कि–

सिंह लग्न में – सूर्य की

कुम्भ में – ब्रह्म की

कन्या में– विष्णु की

मिथुन में – शिव की

द्विस्वभाव में – देवियों की प्रतिष्ठा उत्तम बताई गई है।

नक्षत्र क्रम में बताते हैं कि पुष्य नक्षत्र में चन्द्रादि आठ ग्रहों की, रेवती में गणेश की, यक्ष, सर्प एवं भूत की तथा श्रवण नक्षत्र में जिन (जैन देवता) की स्थापना करनी चाहिए। बृहद्दैवज्ञरंजन नामक ग्रन्थ में लग्न के अनुसार द्वादश भावों का शुभाशुभ फल बताया गया है। इस प्रकार बृहद् विचार ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

3. अभ्यास प्रश्न –

खाली स्थानों को भरें–

(क) देवालय तथा मूर्ति प्रतिष्ठा में .... का उदय होना आवश्यक है।

(ख) प्रतिष्ठा के नक्षत्रों में .... ने अनुराधा नक्षत्र का भी ग्रहण किया है।

(ग) शूद्र को .... नक्षत्र में प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

(घ) केन्द्र में .... ग्रहों का रहना प्रतिष्ठार्थ श्रेष्ठ है।

(ड.) .... लग्न में शिव की प्रतिष्ठा श्रेष्ठ है।

2.4.4 पहले के उप इकाईयों में हमने प्रतिष्ठा के विविध फल सहित मुहूर्तो का उल्लेख किया है, परन्तु अब प्रस्तुत खण्ड के अन्तर्गत हम यह बताने जा रहे हैं कि किस प्रकार अल्प समय में हम मुहूर्त का विचार सरलता से कर सकें। अतएव इसके अन्तर्गत हम

प्रतिष्ठा के मुहूर्त को विविध आधार पर विभाजित कर उनके भेद आलेख के माध्यम से बता रहें हैं।

(क) सर्वदेव प्रतिष्ठा मुहूर्त –

मास	वैशाख, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन
तिथि	2, 5, 6, 10, 11, 12, 13, 15
नक्षत्र	अश्वि, रोहि0, मृ0, पुन0, पु0 3, उत्तरा, ह0, चि0, स्वा0, अनु0, श्रव0, ध0, श0, रे0
वार	सू0,चं0, बु0, गु0, शु0, श0
लग्नशुद्धि	2, 3, 6, 9, 12, केन्द्र त्रिकोण में शुभग्रह, 3, 6, 11 पापग्रह, गुरू एवं शुक्रोदय हो मलमास, देवशयन न हो।

(ख) विष्णु प्रतिष्ठा मुहूर्त–

मास – माघ वर्जित उत्तरायण (मास) में

तिथि – कृष्ण (5–8) शुक्ल– 5, 9, 11, 12, 15

वार – चं0, बु0, गु0, शु0

नक्षत्र – अश्वि, रो0, मृ0, पुर्न0, पु0, 3 उत्तरा, अनु0 ज्येष्ठा।

लग्न – केन्द्र में गुरू, कन्या लग्न उत्तम है।

(ग) कृष्ण प्रतिष्ठा मुहूर्त–

मास – उत्तरायण एवं मार्गशीर्ष

तिथि – 5, 8, (कृष्ण) 2, 2, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 12, 13, 15 (शुक्ल)

वार – बुध, गुरू

नक्षत्र – भ0, रो0, मृ0, पुन0, पु0, उत्तरा 3, ह0, अनु0, श्र0, ध0, रे0

लग्न – 1, 3, 5, 7, 9, 11 राशि (कृष्ण जन्माष्टमी श्रेष्ठ)

(घ) शिवलिंग प्रतिष्ठा मुहूर्त–

मास – श्रावण तथा उत्तरायण

तिथि – 2, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 13, 14

वार – सू0, चं0, मं0, गु0, श0

नक्षत्र – अश्वि0, रो0, मृ0, आ0, पुन0, पु0, म0, पू0फा0, ह0, स्व0, ज्येष्ठ, मू0, अभि0

लग्न – 2, 3, 5, 8, 11 (गुरू एवं मंगल बलवान हो)

(ड.) ब्रह्मस्थापन मुहूर्त–

तिथि – शुक्ल–2, 3, 5, 7, 10, 11, 13

वार – सू0, बु0, गु0

नक्षत्र – रो0, मृ0, पु0, चित्रा, स्वा0, अनु0, ज्येष्ठा, अभि0, श्रव0

लग्न – 2, 5, 8, 11

(च) दुर्गा प्रतिष्ठा मुहूर्त–

मास – दक्षिणायन

तिथि – 2, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 12, 13 (शुक्ल)

वार – सू0, गु0, श0

नक्षत्र – मृ0, आ0, ह0, मू0, श्रव0

लग्न – 3, 6, 7, 12 शुक्र लग्न में, चन्द्र गुरू बलवान, मंगल 10वें हो।

(छ) राम परिवार प्रतिष्ठा मुहूर्त–

मास – उत्तरायण

तिथि – 2, 3, 5, 7, 10, 11, 13

वार – चं0, बु0, गु0, शु0

नक्षत्र – ह0, अभि0, श्रवण

लग्न – 1, 3, 5, 7, 9, 11 विशेष रूप में रामनवमी, विजयादशमी भी ग्राह्य ळें

(ज) सूर्य प्रतिष्ठा मुहूर्त–

तिथि – 2, 3, 5, 7, 10, 11, 13

वार – सू0, चं0, बु0, गु0, शु0

नक्षत्र – अश्वि., रो., मृ., पुन., पु., पू0फा0, उ0फा0, हस्त, अनु0, ज्ये0, रेवती

लग्न – सिंह (5)

विशेष–सप्तमी तिथि रविवार, हस्त नक्षत्र एवं सिंह लग्न सूर्य प्रतिष्ठा के लिए उत्तम कहे गये हैं।

(झ) स्कन्द गणेश प्रतिष्ठा मुहूर्त–

तिथि – 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 10, 11, 12, 13 (शुक्ल)

वार – सू0, मं0, शु0, श0

नक्षत्र – आ0, पू0भा0, उ0भा0, श्र0, रे0

लग्न – 3, 5, 8, 11

विशेष–अनुराधा में स्वामी कार्तिकेय, कुबेर तथा रेवती में धर्मराज गणेश, यक्ष, भूत तथा सरस्वती प्रतिष्ठा शुभ है।

(ञ) हनुमत् प्रतिष्ठा मुहूर्त–

तिथि – 2, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 12, 13 (शुक्ल)
वार – सू0, चं0, मं0, गु0
नक्षत्र – आ0, ह0, स्वा0, श्रव0
लग्न – 2, 5, 8, 11 आदि

(ट) पितृ प्रतिष्ठा मुहूर्त–

तिथि – 1 (कृष्ण), 2, 3, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 30, 15
वार – सू0, चं0, गु0
नक्षत्र – आ0, ह0, स्वा0, श्रव0
लग्न – 2, 5, 11

(ठ) गृह में देव प्रतिष्ठा मुहूर्त–

मास – उत्तरायण तथा गुरू शुक्रोदय
तिथि – 2, 3, 5, 7, 10, 11, 12 (शुक्ल)
वार – सू0, चं0, मं0, बु0, शु0, श0
नक्षत्र – मघा व उत्तराषाढ़ा को छोड़कर शेष नक्षत्र में
विशेष – गृहाधिपति का चन्द्र प्रबल होना चाहिए।

4. अभ्यास प्रश्न–

बहुविकल्पीय प्रश्न–

(क) सर्वदेव प्रतिष्ठा हेतु श्रेष्ठ मास है।
(1) चैत्र (2) वैशाख (3) माघ (4) श्रावण

(ख) विष्णु प्रतिष्ठा में वर्जित मास है।
(1) चैत्र (2) माघ (3) ज्येष्ठ (4) फाल्गुन

(ग) कृष्ण की प्रतिष्ठा हेतु श्रेष्ठ है।
(1) रामनवमी (2) विजयादशमी (3) जन्माष्टमी (4) रोहिणी

(घ) श्रावण मास किसकी प्रतिष्ठा में उत्तम है।
(1) राम की (2) शिव की (3) विष्णु की (4) दुर्गा की

(ड.) किसकी प्रतिष्ठा में अमावस्या का ग्रहण है।
(1) रुद्र की (2) हनुमत् की (3) दुर्गा की (4) पितरों की

2.4.5 देवालय मुहूर्त एवे मूर्ति प्रतिष्ठा में दोष–

ज्योतिष शास्त्र में देव में कुछ दोषों का प्रतिपादन भी किया गया है। आचार्यो ने विविध प्रकार के प्रयोगों के आधार पर प्रतिष्ठा के प्रयोग एवं दिक् तथा भग्नादि के आधार पर दोषों का उल्लेख किया गया है। आचार्य नारद ने कहा है कि–

"हत्यर्थहीने कत्तारं मंत्रहीनं तु ऋत्विजम्
शिल्पिनं लक्षणैर्हीनं न प्रतिष्ठा समो रिपुः" —बृहदैवज्ञ0 83/70 (नारद)

अर्थात् धन से हीन देव प्रतिष्ठा में कर्ता का, मन्त्र से हीन ऋत्विक् का तथा लक्षण से रहित प्रतिष्ठा शिल्पी का नाश करती है। इस प्रकार प्रतिष्ठा के समान कोई शत्रु नहीं होता है।

आचार्य कहते हैं कि विषम स्थान पर दूसरों द्वारा प्रतिष्ठापित मूर्ति यदि भग्न (टुट गया) हो जाय तो भग्न देवता की पूजा भी फलप्रद होती है। वास्तुराजवल्लभ में बताया गया है कि ब्रह्म, विष्णु, शिव, इन्द्र, रूद्र, सूर्य, कार्तिकेय का प्रतिष्ठा पूर्व या पश्चिम में मुख करें तथा शिव, जीन, विष्णु, ब्रह्म का सभी दिशाओं में मुख ठीक होता है। चामुण्डा, ग्रह, मातृका, शीतला, भैरव का दक्षिण दिशा में और हनुमान जी का मुख नेऋत्य कोण में करके स्थापना करनी चाहिए।

बृहत्संहिता के उत्पाताध्याय के अन्तर्गत देवोत्पात् में बहुत प्रकार के मूर्ति के होने वाले फलों को बताया गया है, जिसमें कुछ के शास्त्रोक्त आध्यात्मिक उपाय भी प्राप्त होते हैं।

5. अभ्यास प्रश्न –

लघुउत्तरीय प्रश्न–

(क) धन से हीन प्रतिष्ठा का क्या फल होता है?
(ख) विष्णु का मुख किस दिशा में होना चाहिए?
(ग) दुर्गा के लिए दिशा बतावें।
(घ) उत्तपाताध्याय किस ग्रन्थ में है?
(ड.) नैऋत्यकोण में किसका मुख करके प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आपने जाना कि–

- देवालय प्रतिष्ठा एवं मूर्ति स्थापना उत्तरायण के सूर्य में सर्वोत्कृष्ट है।
- भगवती दुर्गा तथा क्षुद्र देवताओं की स्थापना दक्षिणायन के रवि में भी शास्त्र सम्मत है।
- देवालय तथा मूर्ति प्रतिष्ठा दोनों की एक ही शास्त्रोक्त मुहूर्त की व्यवस्था प्राप्त होती है।
- देवालय निर्माण में वास्तुशास्त्र की भूमिका महत्वपूर्ण होती है तथा गृह निर्माण के रीति से ही प्रारम्भ का वास्तुपूजन होता है।

- प्रत्येक देवता की मूर्ति की प्रतिष्ठा हेतु कुछ विशेष मुहूर्त बताये गये हैं, जिनका प्रायोगिक पक्ष भी सफलीभूत पाया जाता है।

- प्रायः नक्षत्रादि समान ही हैं सभी देवता एवं देवियों की प्रतिष्ठा के लिए।

- रिक्ता तिथि सभी प्रकार की प्रतिष्ठा में त्याज्य है तथा भद्रा एवं कुयोग का भी त्याग किया गया है।

- दिनों के निर्धारण में आचार्य की उक्ति की ''यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः'' का परिपालन सर्वत्र किया गया है।

- जाति परक तिथ्यादि के प्राप्ति से ऐसा लगता है कि हमारे प्राचीन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में जाति के आधार पर देवता का भी निर्धारण किया गया है, जिससे यहाँभी विभाजन प्राप्त होता है।

- प्रतिष्ठा कालिक लग्न का भी विशेष महत्व प्राप्त होता है, क्योंकि आचार्यो ने स्थित लग्न का आदेश करते हैं पर कई स्थानों पर द्विस्वभाव लग्न को भी ग्रहण करते हैं।

- प्रतिष्ठा के समय विद्यमान लग्न के द्वादश भावों का पृथक–पृथक फल भी प्राप्त होता है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली–

(क) उत्तरायण एवं दक्षिणायन–ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त स्कन्ध में दो प्रकार के अयन का प्रतिपादन किया गया है। कोई भी ग्रह जब मकर से मिथुनान्त राशि पर रहता है तो वह उत्तरायण का कहलाता है तथा ज बवह ग्रह कर्क से धनुरन्त राशि पर रहता है तब उसे दक्षिणायन कहा जाता है। दिनांक – 16 जुलाई से 14 जनवरी दक्षिणायन (सौर), दिनांक – 14 जनवरी से 13 जुलाई तक उत्तरायण (11)।

(ख) देवता की तिथि–मुहूर्त शास्त्र में प्रत्येक तिथियों के अलग–अलग स्वामी बताये गये हैं। तिथि तथा स्वामियों में आपसी सम्बन्ध को देखकर हमारे प्राचीन ऋषियों ने देवता की मूर्ति स्थापन में उनके तिथियों को महत्वपूर्ण माना है। यथा–

प्रतिपदा – अग्नि

द्वितीया – ब्रह्मा
चतुर्थी – गौरी
पंचमी – सर्प
षष्ठी – कार्तिकेय
सप्तमी – रवि
अष्टमी – शिव
नवमी – दुर्गा
दशमी – यम
एकादशी – विष्णु
द्वादशी – हरि
त्रयोदशी– कामदेव
चतुर्दशी – शिव
अमा.+पूर्णिमा – चन्द्रमा

(ग) चर–स्थिर–द्विस्वभाव लग्न–

12. राशियों को ज्योतिष शास्त्र में तीन विभागों में विभाजित किया गया है। यथा–

चर –	स्थिर –	द्विस्वभाव
मे.क.तु.म.	वृ.सि.वृ.कु.	मि.क.घ.मी.

यहाँ द्विस्वभाव पद का अर्थ है, जिसमें चर एवं स्थिर दोनों प्रकार का स्वभाव हो उसे द्विस्वभाव की कोटि में रखते हैं।

(घ) गुर्वस्त एवं शुक्रास्त–सभी ग्रहों का दैनिक अस्त होता है। उसके अन्तर्गत प्रवाह वायु की गति के कारण ग्रह पूर्व से पश्चिम में क्षितिज के वश से अस्त (दैनिक) होते हैं। परन्तु यहाँ सूर्य सानिध्य वश अस्त का ग्रहण होता है। उसके अन्तर्गत सूर्य के सानिध्य वश कालांश प्राप्त कर ग्रह अस्त हो जाते हैं। जबकि गुरु एवं शुक्र अस्त रहते हैं, तब तक शुभ कार्य वर्जित रहते हैं।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

1– (क) उत्तरायण, (ख) मार्गशीर्ष, (ग) सम्पद, (घ) उत्तरायण, (ड.) शिव

2– (क) सही, (ख) गलत, (ग) गलत, (घ) सही, (ड.) गलत

3– (क) गुरू एवं शुक्र, (ख) आचार्य वशिष्ठ, (ग) अश्विनी, (घ) शुभग्रहों, (ड. मिथुन

4– (क) (2), (ख) (2), (ग) (3), (घ) (2), (ड.) 4

5– (क) कर्ता का नाश होता है।
(ख) पूरब या पश्चिम में होना चाहिए।
(ग) दक्षिण दिशा में होना चाहिए।
(घ) बृहत्संहिता ग्रन्थ में है।
(ड.) हनुमान जी की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

(1) रामदैवज्ञ, मुहूर्तचिन्तामणि, व्याख्याकार – श्री विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी (उ0 प्र0)।

(2) श्रीमद्रामादीनदैवज्ञ, बृहद्दैवज्ञरंजन (भाग–2) श्रीधरी व्याख्या हिन्दी सहित– डॉ0 मुरलीधन चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी (उ0 प्र0)।

(3) पं0 सोहन लाल व्यास, मुहूर्तपारिजात, सम्पादक– पं0 सीताराम झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी (उ0 प्र0)।

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री–

(1) शीघ्रबोध, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी।

(2) गोविन्द दैवज्ञ, पीयूषधाराटीका (मुहूर्तचिन्तामणि) चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न –

(1) टिप्पणी लिखें–

- (क) उदयास्त
- (ख) मूर्ति प्रतिष्ठा
- (ग) दुर्गा प्रतिष्ठा
- (घ) शिव प्रतिष्ठा
- (ड.) गृह देवता प्रतिष्ठा

(2) देवालय निर्माण एवं मूर्ति प्रतिष्ठा पर एक निबन्ध लिखें।

इकाई – 3 तात्कालिक एवं चौघड़िया मुहूर्त

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 दुकान खोलने का मुहूर्त्त
3.4 दुकान खोलने वाले मुहूर्त्त के मुख्य प्रभावकारक तत्व
3.5 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक / उपयोगी पाठ्यसामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

ज्योतिष शास्त्र काल (समय) का प्रतिपादक शास्त्र है। काल के अन्तर्गत समस्त जगत् गतिमान है। काल एक छोटी ईकाई से आरम्भ कर बृहत् इकाई से युक्त है। हम सभी मनुष्य अपने–अपने कार्यो को सफलतापूर्वक पूर्ण करना चाहते हैं। अतएव शुभ काल (समय) का अन्वेषण करते हैं और उसे शीघ्र पूर्ण करने का प्रयास भी करते हैं। आज के परिवेश में प्रत्येक व्यक्ति समय सापेक्ष तथा समय की गति के अनुरूप कार्य करना चाहता है। ऐसी विषम परिस्थिति के लिए सूक्ष्मतम रूप में भी ज्योतिष शास्त्र में काल (समय) का निर्धारण किया गया है। कुछ ऐसे कार्य होते हैं जिसमें दीर्घकाल की अपेक्षा होती है तथा उसे आरामपूर्वक किया जा सकता है परन्तु कुछ ऐसे भी कार्य होते है जिन्हें शीघ्रतापूर्वक करना पड़ता है। अतएव ऐसी विषम स्थिति को देखते हुए शास्त्रकारों ने तात्कालिक मुहूर्त या चौघड़िया मुहूर्त की व्यवस्था की है। जिसके द्वारा हम आसानी से अपने कार्य को शुभ मुहूर्त में सफलतापूर्वक कर सकते हैं। तात्कालिक मुहूर्त के अन्तर्गत उन मुहूर्तो का संग्रह किया जाता है जिनके उसी क्षण सम्पादित करना है उदाहरण के लिए हमें आज के ही दिन वास्तु (गृह) सम्पादित करना है तो हम कैसे करे?

सामान्य प्रक्रिया के अन्तर्गत साम्यायन एवं गुरू शुक्रोदय आदि पंचांग मुहूर्त के साथ ग्रह शुद्धि की आवश्यकता होती है, परन्तु गृहपति किसी विशेष परिस्थिति के आने पर आज ही चाहता है तो ऐसी स्थिति में हम तात्कालिक मुहूर्त के द्वारा वास्तु का विचार करेंगे। चौघड़िया मुहूर्त भी तात्कालिक मुहूर्त का ही एक अंग है जिसकी परिकल्पना का अधार कुछ काल (समय) खण्डों के विभाजन पर आधारित है।

3.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् हम निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति कर सकेंगे।

(क) आवश्यक होने पर तत्क्षण कार्य को कैसे सम्पादित करें।

(ख) तात्कालिक मुहूर्त नाम से हम क्या समझें।

(ग) अचानक कोई कार्य उपस्थित हो गया तो उसे कब आरम्भ तथा समापन करें।

(घ) एक ही दिन में चार तरह के कार्य आरम्भ करना हो तो कैसे और कब–कब उसे प्रारम्भ करें, जान सकेंगे।

(ङ.) दैनिकोपयोगी कार्य में तथा व्यापार में लाभ की प्राप्ति भी मुख्य उद्देश्य है।

(च) यात्रा अति आवश्यक होने पर कैसे तथा कब करें।

3.3 तात्कालिक मुहूर्त एवं चौघड़िया मुहूर्त का प्रतिपाद्य–

यदि आप ज्योतिष शास्त्र के मुहूर्त स्कन्ध के विषयों की दृष्टि से विचार करें तो पायेंगे कि तात्कालिक मुहूर्त नाम का कोई भी मुहूर्त या विभाजन ग्रन्थों में नहीं प्राप्त होता है। हमें ऐसे शीर्षकों का निर्धारण अध्ययन या अध्यापन की दृष्टि से स्वविवेक के आधार पर करना पड़ता है क्योंकि जिस कार्य के लिए पृच्छक प्रश्न करेगा उसके कार्यो को ध्यान में

रखकर हमें तात्कालिक शुभ मुहूर्त का निर्धारण करना पड़ता है। तात्कालिक नामक ऐसा कोई भी मुहूर्त नहीं है, जिससे हम सभी कार्यो का विचार एक साथ कर सकें।

''यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः।'' के आधार पर कार्य को करना होगा जिससे सूक्ष्म रूप में कार्य का सम्पादन हो सके। तात्कालिक मुहूर्त के अन्तर्गत कुछ आवश्यक शुद्धियों एवं स्थितियों का ही ग्रहण है और उसके आधार पर हीं शुभ–मुहूर्त का निर्धारण किया जाता है। चौघड़िया मुहूर्त पद से यह परीलक्षित होता है कि यह मुहूर्त 4 घड़ी (घटी) प्रमाण काल का होता है।

ज्योतिष शास्त्र में दिन एवं रात्रि के पृथक्–पृथक् विभाग करके 8–8 विभाग के आधार पर एक–एक चौघड़िया का मान निर्धारित किया गया है।

दिनमान को 8 से भाग देने पर एक चौघड़िया दिन का मान होता है। जैसे–दिनमान = 30।।^{0}0 घटी (मध्यम मान) तो 30 ÷ 8 = $3\frac{3}{4}$ घटी प्रमाण 1 चौघड़िया का मान होता है। इस प्रकार इसे ही लगभग 4 घटी के आसन्न होने के कारण चौघड़िया नाम दिया गया है। इसी प्रकार रात्रिमान का 8वाँ भाग रात्रि का 1 चौघड़िया का मान होता है। प्रत्येक चौघड़िया का पृथक्–पृथक् नाम तथा उनके स्वामी ग्रह भी पृथक्–पृथक् होते हैं।

शुभग्रह का चौघड़िया शुभकारक एवं कार्य साधक होता है तथा कुत्सित वार एवं चौघड़िया कार्य हेतु बाधक एवं असफलता का द्योतक होता है जिसे त्याग देना चाहिए।

3.4.1 तात्कालिक मुहूर्त–

तत्काल निर्णीत मुहूर्त को तात्कालिक मुहूर्त कहते हैं। आप पूर्व के भागों में यह जान चुके हैं कि जब भी किसी व्यक्ति के द्वारा तत्काल प्रश्न करके मुहूर्त पूछा जाता है तो वैसी परिस्थिति में वृहत् विचार करेंगे तो उस कार्य का मुहूर्त नहीं मिल पायेगा। इसका कारण है कि मुहूर्त के पाँच अंग स्वीकार किये गये हैं जो निम्नलिखित हैं।

(क) वर्ष–कुछ मुहूर्तो में सम/विषम वर्षों तथा निश्चित वर्षों में ही व्यवस्था बताई गई है जिसको उसी वर्ष में ही सम्पादित कर सकते हैं जैसे– उपनयन 8 वर्ष में, चूडाकरण 3 वर्ष में, आदि।

(ख) मास–कुछ कार्यो के लिए मुहूर्तो का विचार करते समय हमें मास का विशेष ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि कहीं सौरमास तो कहीं चान्द्रमास का विचार किया गया है। तथा कुछ के लिए निश्चित रूप से मास गृहीत है। जैसे– गृहप्रवेश हेतु ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन आदि में।

(ग) दिन (तिथि)–यहाँ दिन पर से तिथि तथा वार (दिन) दोनों को ग्रहण किया जाता है। जिस कार्य के लिए जो दिन बताया गया है। उसे निश्चित रूप से गंभीर विचार कर मुहूर्त का निर्धारण करना चाहिए।

(घ) लग्न–प्रत्येक कार्य के लिए पृथक्–पृथक् लग्न का विचार किया गया है, कहीं स्थित लग्न का ग्रहण है तो कहीं चर का। ऐसी परिस्थिति में लग्न का विचार मुहूर्त शास्त्र में

महत्वपूर्ण होता है।

(ड.) मुहूर्त–मुहूर्त एक कालांश का द्योतक है जिसकी शुद्धि या विचार कार्यो की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है।

पूर्वोक्त पाँचों अंगों के विषय में कहा गया है कि–

मासो वर्षभवं हन्ति मासभवं दिनम्।
लग्नं दिनभवं हन्ति मुहूर्तः सर्वदूषणम्।
तस्मात् शुद्धिः मुहूर्तस्य सर्वकार्येषु उच्यते।।

अर्थात् पूर्वोक्त सबकी अपेक्षा मुहूर्त का प्रभाव शुभाशुभ फल देने में सर्वाधिक सूक्ष्म है। यह सभी स्थूलों अंगों के सूक्ष्मतम होने के कारण महत्वपूर्ण माना जाता है।

वर्ष तथा मास के काल को स्थूल मानकर हमारे पूर्वज ऋषियों ने इन्हें तात्कालिक मुहूर्त के अन्तर्गत गणना नहीं की अपितु नक्षत्र एवं काल होरादि के माध्यम से तात्कालिक मुहूर्त की सूक्ष्मता को समाज के सामने स्थापित किया।

1. अभ्यास प्रश्न –

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

(क) ज्योतिष शास्त्र किसका प्रतिपादक है।

(1) आत्मा (2) जीव (3) जगत् (4) काल

(ख) पंचांग में नहीं आता है।

(1) तिथि (2) नक्षत्र (3) घटी (4) करण

(ग) दिवा मुहूर्तों की संख्या होती है।

(1) 10 (2) 15 (3) 20 (4) 05

(घ) चौघड़िया मुहूर्त में 1 मुहूर्त का मध्यम मान कितना होता है।

(1) 4 घटी (2) 3.45 घटी (3) 64 घटी (4) 400 घटी

3.4.2 तात्कालिक मुहूर्त के मुख्य अंग–

(क) दिवा–रात्रि मुहूर्त– मुहूर्त शास्त्र के ग्रन्थों में दिन में तथा रात्रि में पृथक्–पृथक् 15–15 मुहूर्त बताये गये हैं। यदि मध्यम मान से 30 घटी का दिन तथा 30 घटी की रात्रि हो तो 1 मुहूर्त का मान 2 घटी संभव होता है। अतएव अमरकोशकार ने मुहूर्त का अर्थ 2 घटी कालांश बताया है। इस प्रकार 15 मुहूर्त दिवा के पृथक्–पृथक् स्वामी होते है तथा रात्रि के 15 मुहूर्तों के स्वामी भी अलग–अलग बताये गये हैं।

यहाँ एक विशेष बात यह है कि मुहूर्तो के स्वामी पद से उनके (स्वामी के) नक्षत्रों का ग्रहण किया जाता है। इससे यह सुलभता होती है कि 1 नक्षत्र (चान्द्र) के अन्तर्गत 27 नक्षत्रों का लघुकालखण्ड प्राप्त हो जाता है जिसमें तद्–तद् कार्यो हेतु उक्त नक्षत्रों का संकलन या चलन 1 दिन में भी किया जाता है और मुहूर्त पदसे नक्षत्रों का ज्ञान ही यहाँ अभिष्ट है।

<u>दिवा–मुहूर्त</u>

यहाँ दिवा मुहूर्त के ज्ञान में सबसे पहले दिनमान का ज्ञान कर घट्यादि विभाग में 15 का भाग देकर 1 मुहूर्त की घटिकात्मक अवधि का ज्ञान करेंगे फिर उतने–उतने घटी के 15 मुहूर्तो का मान क्रम से जानेंगे।

उदाहरण– यथा दिनमान = 28।। 20 (घटिका)

28।। 20 ÷ 15

15)28।।20(1।।53।।20
<u>15</u>
13 ग 60
<u>+ 20</u>
= 800
<u>75</u>
50
45
<u>5 ग 60</u>
= 300
<u>30</u>
0
<u>0</u>
ग

यहाँ घंटा मिनट में परिवर्तन करने पर 1 मुहूर्त = 00।।45।।20 मिनटादि हुआ। यदि सूर्योदय 5।।40 प्रातः हुआ है तो–

05।।40
<u>+ 00।।45।।20</u>
06।।25।।20 तक 1 मुहूर्त
<u>+ 00।।45।।20</u>
07।।10।।40 तक 2 मुहूर्त
<u>+ 00।।45।।20</u>
07।।56।।00 तक 3 मुहूर्त

इस प्रकार सूर्यास्त तक 15 मुहूर्त का काल खण्ड होगा। इस प्रकार नीचे सारिणी द्वारा दिया मुहूर्त के स्वामी एवं नक्षत्रों का उल्लेख किया जा रहा है।

मुहूर्त	स्वामी	नक्षत्र
1	गिरीश	आर्द्रा
2	भुजग	श्लेषा
3	मित्र	अनुराधा
4	पितृ	मघा
5	वसु	धनिष्ठा
6	अम्बु	पूर्वाषाढ़ा
7	विश्वेदेव	उत्तराषाढ़ा
8	अभिजित्	अभिजित्

मुहूर्त	स्वामी	नक्षत्र
9	विधाता	रोहिणी
10	इन्द्र	ज्येष्ठा
11	इन्द्राग्नि	विशाखा
12	निऋती	मूल
13	वरुण	शतभिष्
14	अर्यमा	उत्तरा फाल्गुनी
15	भग	पूर्वा फाल्गुनी

रात्रि–मुहूर्त

जिस प्रकार दिवा में 15 मुहूर्तो का आनयन किया जाता है उसी प्रकार से रात्रिमान के द्वारा भी रात्रि में 15 का भाग देकर 1 मुहूर्त का ज्ञान किया जाता है। तथा प्राप्त घट्यादि मान को घंटा मिनट में बदलकर या घट्यादि को ही सूर्यास्त से क्रमशः जोड़कर 15 मुहूर्तो का ज्ञान संभव होता है। जैसे–

उदाहरण– दिनमान = 28।।20 (घटिका)

रात्रिमान = 60।।00 (दिनरात्रि का मान)

– 28।।20

31।।40 रात्रिमान घट्यादि

घंटा मिनट में बदलने पर = 31।।40 ÷ $2\frac{1}{2}$ = 12।।40 घंटा एवं मिनट हुआ।

12।।40 ÷ 15 = 00।।50।।40 मिनटादि

12।।00

– 05।।40 सूर्योदय

06।।20 सूर्यास्त

06।।20

\+ 00।।50।।40

07।।10।।40 तक 1 मुहूर्त

\+ 00।।50।।40

08।।01।।20 तक 2 मुहूर्त

इस प्रकार रात्रि में मुहूर्त का ज्ञान करेंगे। अब हम रात्रि के 15 मुहूर्तों को बता रहे हैं। यथा–

मुहूर्त	स्वामी	नक्षत्र
1	शिव	आर्द्रा
2	अजपाद	पूर्वा भाद्रपद
3	अहिर्बुध्न्य	उत्तरा भाद्रपद
4	पूषा	श्रेवती
5	अश्विनी कुमार	अश्विनी
6	यम	भरणी
7	अग्नि	कृतिका
8	विधाता	रोहिणी
9	चन्द्र	मृगशीर्ष
10	अदिति	पुनर्वसु
11	वृहस्पति	पुष्य
12	विष्णु	श्रवण
13	अर्क	हस्त
14	त्वष्टा	चित्रा
15	मरुत्	स्वाती

2. अभ्यास प्रश्न –

सभी प्रश्नों के उत्तर दें।

(क) पंचांग के अन्तर्गत कौन–कौन 5 अंग आते है?

(ख) दिवा–रात्रि मुहूर्त का क्या प्रयोजन है?

(ग) दिवा मुहूर्त जानने के लिए कितने भाग करते है?

(घ) दिनमान यदि 28।।40 हो तो 1 दिवा मुहूर्त का मान निकालें?

(ड.) दिनमान यदि 26।।00 घटी हो और सूर्योदय 5।।20 हो तो 2 (दूसरे) मुहूर्त का काल बतावें।

3.4.3 कालहोरा मुहूर्त–

वार शुद्धि के लिए कालहोरा की व्यवस्था हमारे आचार्यो ने की है जिससे हम प्रत्येक दिन सातो वारों (दिनों) की प्राप्ति का काल खण्ड ज्ञात करेंगे तथा उस दिन में विहित मुहूर्त या कार्य को उसके काल खण्ड में करेंगे। पूर्व के पाठ्यांश में आप यह जा चूकें हैं कि नक्षत्रों का ज्ञान हम 15 मुहूर्तों में कर लेंगे तथा वार के ज्ञान के लिए हमें कालहोरा का आश्रय लेना होगा जिससे वार की प्राप्ति उस मुहूर्त के लिए आसानी से हो जाय।

आचार्य रामदैवज्ञ कालहोरा के प्रयोजन को बताते हुए मुहूर्त चिन्तामणि में लिखते हैं कि–

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्यं
प्रोक्तं स्वामि तिथ्यंशकेऽस्य।
कुर्याद्दिक्छूलादि चिन्त्यं क्षणेषु
नैवोलऽब्ध्यः परिधश्चापि दण्डः।।

अर्थात् जिस वार में जो कार्य बताया गया है उसको उसके कालहोरा में करनी चाहिए तथा जिस नक्षत्र में कार्य बताया गया है तो उसके स्वामी के अंश (काल खण्ड) में करनी चाहिए।

इस प्रकार आनयन के प्रसंग में आचार्य कहते हैं कि–

वारादेर्धटिका द्विघ्नः स्वाक्षहृच्छेश वर्जिताः।
सैका तष्टा नगैः कालहोरेशादिनपात् क्रमात्।। मु.चि., शुभाशुभ – 55

अर्थात् अभिष्ट समय (इष्ट समय) में बार की प्रकृति से जितनी घटी व्यतीत हो गई है उन्हें दो से गुणाकर 5 का भाग दें। जो शेष बचे उसे द्विगुणीत किये हुए भाग में घटाने पर शेष में 1 जोड़कर 7 का भाग देने पर वारपति से गिनने पर कालहोरेश होता है। उदाहरण यथा– शुक्रवार को 29।।15 घटी पर कालहोरेश ज्ञात करना है तो नियमानुसार–

$\frac{\mathbf{29||15}X\mathbf{2}}{\mathbf{5}} = \frac{\mathbf{58|0|30}}{\mathbf{5}}$ शेष = 3 |0 |30

दूसरे स्थान पर द्विगुणीत मान में घटाने पर =

58 | |0 | |30
– 03 | |0 | |30
55 | |0 | |00
+ 01 (सैक करना)
7) 56 (8
56
00 शेष 0 यानी 7, शुक्रवार से 7वाँ वार गुरुवार कालहोरेश इतने घटी पर हुआ।

इसके प्रयोजन प्रसंग में आचार्य कहते हैं कि–

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये
प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेऽस्य।

अर्थात् जिस कार्य के लिए जो वार बताया गया है उस कार्य को उनके कालहोरेश में भी कर सकते हैं।

3. अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों को असत्य/सत्य बतावें।

(क) कालहोरा का सम्बन्ध वार से है।

(ख) मुहूर्त चिन्तामणि के रचनाकार रामदैवज्ञ है।

(ग) अन्तिम में 7 से भाग देने पर प्राप्त शेष की गणना विचारणीय वार से नहीं करते हैं।

(घ) कालहोरेश का प्रयोजन 1 वार के अन्तर्गत सभी 7 वारों का ज्ञान है।

(ड.) वार प्रवृत्ति के बाद घटी का ज्ञान नहीं करनी चाहिए।

3.4.4 चौघड़िया मुहूर्त–

चौघड़िया शब्द का अर्थ 4 घड़ी वाला अर्थात् घड़ी = घटी, इस प्रकार 4 घटी से बने मुहूर्त को चौघड़िया मुहूर्त कहते हैं। यह 4 घटी मध्यम मास से स्वीकार किया गया है। बृहद्दैवज्ञकार श्री रामदीन आचार्य ने इसे ''दिवारात्रावष्टमांशबेला'' नाम दिया है तथा इसका वर्णन किया है। वस्तुतः यही समाज में चौघड़िया नाम से प्रसिद्ध मुहूर्त बन गया है।

आचार्य ने दिन एवं रात्रि दोनों में पृथक्–पृथक् 8–8 मुहूर्त को चौघड़िया मुहूर्त कहते हैं। यदि मध्यम मान 30 घटी का दिन एवं 30 घटी की रात्रिमान माने तो 30 ÷ 8 = 3.45 घट्यादि मान 1 चौघड़िया का होता है। इसे ही आचार्यो ने 4 घटी के आसन्न होने के कारण चौघड़िया नाम दिया है। इस प्रकार दिनमान/रात्रिमान का 8वाँ भाग 1 चौघड़िया का मान होता है। पुनः उस भाग को जोड़ते रहने पर आठों खण्डों का मान जुड़ जाता तथा 8 मुहूर्त दिन में एवं 8 मुहूर्त रात्रि में प्राप्त होते हैं। इन मुहूर्तों के नाम इस प्रकार हैं–

उद्वेगश्चामृतो रोगो लाभः शुभचरी मृतिः।
सूर्यशुक्रो बुधश्चन्द्रो मन्दो जीवो धरामृतः।
सूर्यादौ क्रमतो ज्ञेयो रात्रौ पञ्चमगो ह्यषट्।
सूर्य वृहस्पतिश्चन्द्रः शुक्रः भौमो शनिर्बुधः।।

अर्थात् उद्वेग, अमृत, रोग, लाभ, शुभ, चर तथा मृति (काल) ये सा चौघड़िया होते हैं जिनके स्वामी क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि होते है। इन्हीं से प्रारम्भ होकर ये सातो चौघड़िया मुहूर्त बनते हैं। तथा दिन में जो प्रथम चौघड़िया होता है वही आठवाँ चौघड़िया दिनान्त में भी होता है। रात्रि में चौघड़िया मुहूर्त का प्रचलन 2 प्रकार का है। आचार्य रामदीन ने दिन एवं रात के चौघड़िया में अगला चौघड़िया 6वें वार का ही होता है। जैसे रविवार को दिन में प्रथम चौघड़िया रवि का उद्वेग होता है तथा रात्रि का प्रथम रवि से 6वें शुक्र से प्रारम्भ होगा।

चौघड़िया मुहूर्त में शुभ, अमृत, लाभ एवं चार मुहूर्त शुभ हैं। रोग, काल एवं उद्वेग ये मुहूर्त अशुभ है। आवश्यक यात्रा काल में इसका लाभ लेकर यात्रा को सफल करना चाहिए।

इस प्रकार प्रतिदिन दिन एवं रात्रि के 3.45 घटकाओं के अन्तर पर 8 प्रकार चौघड़िया मुहूर्त निष्पन्न होते हैं जिनका स्वरूप चक्र द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है–

दिन की चौघड़िया मुहूर्त चक्र

वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
1 चौघ.	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल

2 चौघ.	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
3 चौघ.	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	श्रोग
4 चौघ.	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चार	काल	उद्वेग
5 चौघ.	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर
6 चौघ.	शुभ	चर	काल	उद्वेत	अमृत	रोग	लाभ
7 चौघ.	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत
8 चौघ.	उद्वेत	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल

राशि की चौघड़िया मुहूर्त चक्र

वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
1 चौघ.	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
2 चौघ.	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग
3 चौघ.	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
4 चौघ.	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत
5 चौघ.	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर
6 चौघ.	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
7 चौघ.	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल
8 चौघ.	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

4. अभ्यास प्रश्न–

लघुउत्तरीय प्रश्न–

(क) बृहद्दैवज्ञरंजन ग्रन्थ के ग्रन्थकार कौन हैं?

(ख) दिनमान को चौघड़िया मुहूर्त में कितने से भाग देते हैं?

(ग) चौघड़िया नाम से क्या समझते हैं?

(घ) आठवाँ चौघड़िया कौन सा होता है?

(ड.) रात्रि चौघड़िया में कितने भेद हैंत्र

3.5 सारांश–

इस इकाई के पश्चात् आपने जाना कि–

- तात्कालिक मुहूर्तों का प्रयोग आवश्यक होने पर करें।
- प्रत्येक दिन में एवं रात्रि में 15–15 मुहूर्त होते हैं।
- दिया एवं रात्रि मुहूर्त पर से 1 नक्षत्र में सभी नक्षत्रों का काल खण्ड प्रतिपादित है।
- कालहोरा के आधार पर तत् 2 दिवस का वार खण्ड प्रतिदिन प्राप्त किया जा सकता है तथा उसमें विहित कार्य कालहोरा के आधार पर किया जा सकता है।
- यात्रा के लिए एवं अन्य शुभ कार्यो के लिए चौघड़िया मुहूर्त का ज्ञान आवश्यक है।

- चौघड़िया मुहूर्त में रात्रि के चौघड़िया में कुछ पंचांगों में वचनान्तर उपलब्ध है।
- चौघड़िया मुहूर्त भी तात्कालिक मुहूर्त के अन्तर्गत पठित है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली–

(1) पंचांग–1. तिथि, 2. वार, 3. नक्षत्र, 4. योग तथा 5. करण इन पाँचों के समूह को पंचांग कहते हैं। सभी प्रकार के कार्यो में पंचांग की शुद्धि परमावश्यक है।

(2) घड़ी–यह शब्द घटी का रूप है जो तद्भव शब्द माना जा रहा है।

1 घटी = 24 मिनट

1 पल = 24 सेकेण्ड

60 घटी = 24 घंटा (दिन–रात)

इस प्रकार 1 मिनट = 2.30 पल

1 घंटा = 2.30 घटी

(3) तात्कालिक मुहूर्त–तत्काल (उसी क्षण) किये गये कार्य को तथा शीघ्रता से पूर्ण होने वाले कार्य को करते है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

1– (क) – (4) काल (ख) – (3) घटी

(ग) – (2) 15 (घ) – (1) 4 घटी

2– (क) तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण।

(ख) 27 नक्षत्रों का 1 नक्षत्र में ज्ञान।

(ग) 15 भाग।

(घ) 1।।54।।40 घट्यादि।

(ड.) 6।।43 प्रातः तक

3– (क) सत्य, (ख) सत्य, (ग) असत्य, (घ) सत्य, (ड.) असत्य

4– (क) आचार्य रामदीन

(ख) 8 से

(ग) जिसमें लगभग 4 घटी से विचार हो।

(घ) उसी दिन का भाग।

(ड.) 2 भेद है।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

(1) श्री रामदीन दैवज्ञ, बृहद्दैवज्ञरंजन, सम्पादक– मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी।

(2) श्री राम दैवज्ञ, मुहूर्त चिन्तामणि, सम्पादक– विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी।

(3) श्रीमद्दैवज्ञ रावल हरिशंकर सूनि सूनु गणपति विरचित, मुहूर्त गणपति, सम्पादक– डॉ. मुरलीधन चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी।

(4) श्री महादेव भ्टट, मुहूर्त दीपक, सम्पादक– आचार्य गुरु प्रसाद गौड़, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री–

(1) पं. कमलाकान्त पाण्डेय, अवकहड़ाचक्रम्, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी।
(2) चिन्ताहरण यन्त्री – ई. सन् 2009, पृष्ठ– 70।
(3) विश्वपंचांग, काशीविश्वनाथ पंचांग, गणेश आपा पंचांग, वाराणसी।
(4) शीघ्रबोध, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न–

(1) निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें–

(क) तात्कालिक मुहूर्त
(ख) पंचदश मुहूर्त
(ग) कालहोरा एवं प्रयोजन
(घ) चौघड़िया

(2) तात्कालिक मुहूर्त के अन्तर्गत क्या–क्या आता है, विवेचन करो।
(3) चौघड़िया के निर्माण एवं स्वरूप पर निबन्ध लिखें।

ईकाई – 04 होरा मुहूर्त, राहुकाल एवं यमघण्ट काल विचार

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना–

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत हम होरा मुहूर्त का ज्ञान तथा साथ में राहुकाल तथा यमघण्ट मुहूर्त का विचार किया जा रहा है। जिससे आप यह जान सकेंगे कि हमें कब तथा किस मुहूर्त में कौन सा कार्य करना चाहिए।

वस्तुतः 24 होरा के अन्तर्गत ही दिन–रात्रि का मान आता है। मनुष्य की सभी गतिविधियाँ 24 घंटे के अन्तर्गत ही सम्पन्न होती है। अतएव 1 दिवस का 24वां भाग सूक्ष्म रूप से हमे प्रत्येक कार्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जिसका ज्ञान होरा मुहूर्त के अधीन है। इस प्रकार विविध प्रकार के ग्रहों के काल खण्डों को भी विभाजित किया गया है जिसके द्वारा हमें शुभ एवं अशुभ काल खण्ड का ज्ञान होता है तथा उसका प्रयोग हम अपने कार्यो को सम्पन्न कराने में करते हैं।

यमघण्ट भी एक प्रकार का समय विभाजन पर आधारित काल (समय) का ज्ञान है जिसका वर्णन सभी पक्षों से विभाजित कर दिया गया है। मुहूर्तो के दैनिक प्रयोग में हमें होरा तथा वार को महत्वपूर्ण मान गणना करना पड़ता है जिसका लाभ तत्क्षण ही प्राप्त होता है।

4.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप–

1. चौबीस (24) घंटे के पर्यायवाची 24 होरा का ज्ञान कर सकेंगे।
2. काल के दैनित (24 घंटे) खण्ड का शुभाशुभ ज्ञान भी आसानी से संभव कर सकेंगे।
3. ग्रहों के काल (समय) खण्डों का ज्ञान भी संभव होगा तथा उनके आधार पर सभी नव ग्रहों का खण्ड ज्ञान कर कार्य के शुभाशुभ का ज्ञान भी हो सकेगा।
4. अच्छे एवं बुरे काल का ज्ञान कर तत्सम्बन्धित कार्य को समय सापेक्ष कर सकेंगे।
5. तत्क्षण निर्णय लेने मे तथा सामाजिक समानता एवं शास्त्र रक्षा में मदद प्राप्त कर सकेंगे।
6. विविध वाक्यों की रक्षार्थ इनका परिहार, रूप में सदूपयोग कर सकेंगे।
7. राहुकाल का ज्ञान करके उसमें नूतन कार्यारम्भ से बच सकेंगे।
8. आवश्यक कार्य होने पर दुर्मुहूर्त से बच कर शुभ मुहूर्त में अपने कार्य को सम्पादित कर सकेंगे।

4.3 होरा, राहुकाल तथा यमघण्ट का प्रतिपाद्य–

होरा, राहुकाल तथा यमघण्ट वस्तुतः तीनों ही काल की तीन विधियाँ है जिनके द्वारा हम गतिमान काल के शुभाशुभ क्षणों का ज्ञान आसानी से कर सकते हैं। आवश्यक होने पर हम कब तथा किस प्रकार के कार्य को कैसे करें। इन तीनों प्रकार के विषयों से आसान हो जाता है।

24 घंटे का दिन–रात होता है जो 24 होरा के रूप में ज्योतिष शास्त्र में विख्यात है। अतएव 24 होरा के द्वारा शुभाशुभ का ज्ञान किया जाता है। राहुकाल वस्तुतः नवग्रहों के काल में से एक है जिसके द्वारा हम आसानी से राहु अर्थात् खराब ग्रह के अशुभ प्रभाव से बच सकते हैं तथा शुभ ग्रह के काल में अपना कार्य सम्पादित कर निरन्तरता कायम रख सकते हैं। यमघण्ट कुलिक, कालवेला तीनों वारों के क्रम के द्वारा बनते हैं जिनसे हम शुभ एवं अशुभ मुहूर्त का ज्ञान करते हैं।

उदाहरण– माना कि आज गुरुवार है। हमें कहीं यात्रा करनी है परन्तु यात्रा के लिए शुक्रवार प्रशस्त माना गया है। अतएव गुरुवार के दिन शुक्रवार के खण्ड में यात्रा करना प्रशस्त है जो 4, 11 तथा 18 वें होरा के रूप में स्वीकृत हुआ है।

4.4.1 होरा मुहूर्त–

होराधिपति ग्रह 6 हैं तथा 24 होरा का सम्पूर्ण दिन–रात्रिमान विभाजित किया गया है। 1 होरा = 1 घंटा, इस प्रकार सूर्योदय से 1–1 घंटे का क्रमशः 1–1 होरा होता है जो मनुष्य को अशुभ समय में भी शुभ मुहूर्त प्रदान कर मनोरथ को सफल बनाता है। कहा गया है कि–

कालहोरेति विख्यातं सौम्ये सौम्यफलप्रदा।
सूर्य–शुक्र–बुधश्चन्द्रो मन्दजीवकुजाः क्रमात्।।
यो वारो यत्र दिंवसे तथा हि गणयेत्क्रमात्।
शुभग्रहस्य सुखदो मुहूर्तोऽनिष्टदुःखदः।।
गुरुविवाहे गमने च शुक्रो बौधे सौम्यः सर्वकार्येषु चन्द्रः।
कुजे युद्धं राजसेवा रवौ च मंदे वित्तं चेति होरा क्रमाद्वै।।
यस्य ग्रहस्य वारेषु कर्म किंचित्प्रकीर्तितम्।
तस्य ग्रहस्य होरायां सर्व कर्म विधीयते।। – मुहूर्त गणपति (संग्रह ग्रन्थ)

अर्थात् सूर्य का होरा राजकार्य के लिए उत्तम है। प्रवास कार्य के लिए शुक्र का होरा तथा ज्ञानार्जन हेतु चन्द्रमा की होरा, द्रव्य संग्रह हेतु शनि का होरा, विवाह हेतु बृहस्पति का होरा तथा युद्ध, कलह एवं विवाद के लिए मंगल का होरा बताया गया है।

इसके निर्माण के प्रसंग में आचार्य बताते हैं कि सूर्योदय के बाद 1–1 घंटा का 1–1 होरा होता है जिसमें जिस ग्रह का वार हो उससे छठवें–छठवें क्रम से होराधिपति होते हैं। इस प्रकार जैसे रवि वार को प्रथम होरा रवि का, दूसरी होरा शुक्र का, तीसरी होरा बुध, चौथी चन्द्र, पांचवी शनि .... इस तरह 24 होरा सम्पन्न होते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विधि के द्वारा यदि चक्र बनाया जाय इस प्रकार होगा जिसके द्वारा आसानी से हम वारप्रवृति का ज्ञान कर होरा का ज्ञान कर लेंगे तथा कार्य की सिद्धि भी सम्पन्न हो जाएगी।

वार	रविवार	चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार
1	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि

2	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
3	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल
4	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	श्रवि
5	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र
6	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध
7	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र
8	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
9	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
10	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल
11	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	श्रवि
12	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र
13	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध
14	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र
15	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
16	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
17	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल
18	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	श्रवि
19	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र
20	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध
21	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र
22	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
23	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु
24	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	चन्द्र	मंगल

विशेष – इस प्रसंग में आचार्य कहते हैं कि–

''स्वदेशसूर्योदयतोऽत्र वारे सर्वेषु कार्येषु नियोजनीयः।
लंकोदयाद्यस्ति दिनप्रवृतिस्ततः प्रयोज्याः किल कालहोरा।।''

अर्थात् अपने स्थानीय सूर्योदय के द्वारा वार प्रवृत्ति जानकर काल होरा का ज्ञान करनी चाहिए।

अभिप्राय यह है कि हम ग्रहादि सूर्योदय, सूर्यास्त तथा वारप्रवृत्ति का आनयन करते हैं वो सब लंकादेशीय होते हैं। हमें अपने स्थान का बनाते समय अपने देश में वार की प्रवृत्ति (आरम्भ) का ज्ञान कर उससे होरा मुहूर्त का ज्ञान करना ठीक तथा युक्ति–युक्त होगा।

1. अभ्यास प्रश्न–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

(क) होरा की संख्या कितनी होती है।

(1) 10 (2) 20 (3) 24 (4) 15

(ख) होरा मुहूर्त कहाँ से आरम्भ होता है।

(1) सूर्यास्त से (2) सूर्योदय से

(3) रान्यर्द्ध (4) दोपहर से

(ग) ज्ञानार्जन के लिए किसका होरा विचार करें।

(1) शुक्र का (2) बुध का

(3) सूर्य का (4) चन्द्र का

(घ) रवि का दूसरा होरा किसका होता है।

(1) रवि का (2) शुक्र का

(3) बुध का (4) चन्द्र का

(ड.) जिस ग्रह का वार को उससे कौन–कौन क्रम से होरा होता है।

(1) पाँचवा वार (2) सातवाँ वार

(3) छठाँ वार (4) तीसरा वार

4.4.2 राहुकाल–

राहुकाल वस्तुतः दाक्षिणात्य परम्परा का मुहूर्त विशेष खण्ड है। कुछ संग्रह ग्रन्थों में इसकी चर्चा प्राप्त होती है। यह केवल दिवा में ही प्रयोग में आता है। रात्रि में राहुकाल की संभावना नहीं होती। इसके फलादेश प्रकरण में बताया गया है कि इस अवधि में यदि कोई कार्य किया जाता है तो वह कार्य पूर्ण नहीं हो पाता वह खण्डित हो जाता है। अतएव राहुकाल का त्याग करना चाहिए। हमें किसी प्रकार के कार्य या परियोजना को उस अवधि में स्वीकार नहीं करनी चाहिए।

विधि– दिनमान को 8 का भाग एक–एक खण्ड को जान लेंगे तथा प्रत्येक वार का निम्नलिखित खण्ड राहुकाल नाम से जाना जाता है।

रविवार – दिनमान का 8वाँ भाग।

चन्द्रवार – दिनमान का 2रा भाग।

मंगलवार – दिनमान का 6ठा भाग।

बुधवार – दिनमान का 5वाँ भाग।

गुरुवार – दिनमान का 6ठा भाग।

शुक्रवार – दिनमान का 4था भाग।

शनिवार – दिनमान का 3रा भाग।

यहाँ दिनमान का अर्थ सूर्योदय और सूर्यास्त के मध्य का भाग जानना चाहिए। अभिप्राय यह है कि प्रत्येक स्थान का सूर्योदय पृथक्–पृथक् समय से सम्पन्न होता है अतएव प्रत्येक स्थान का राहुकाल भी पृथक्–पृथक् समय से होगा। अतएव पहले सूर्योदय का ज्ञान करके तब राहुकाल का आनयन करना चाहिए।

उदाहरण– माना कि रविवार को वाराणसी में 5:28 पर सूर्योदय है तथा 6:32 सूर्यास्त का समय है।

अतएव रविवार को कब वाराणसी में राहुकाल होगा। अतएव उपरोक्त विधि के अनुसार रविवार को 8वाँ भाग राहुकाल होगा।

सूर्योदय–	05:28	
+	10:30	
	03:58	से
+	01:30	
	05:15	तक

अर्थात् दिवा 3:58 से 5:18 तक रहाुकाल रहेगा। जिसमें कार्य की हानि संभव होती है।

2. अभ्यास प्रश्न–

असत्य/सत्य का निर्धारण करें।

(क) राहुकाल उत्तर भारतीय परम्परा का प्रमुख मुहूर्त है।

(ख) राहुकाल को जानने के लिए दिनमान में 8 का भाग देकर खण्ड की गणना करते हैं।

(ग) सोमवार को दिनमान का 8वाँ भाग राहुकाल होता है।

(घ) प्रत्येक स्थान का एक ही राहुकाल होता है।

(ड.) किसी भी शुभकार्य को राहुकाल में अवश्य करनना चाहिए।

4.4.3 यमघण्ट काल विचार–

ज्योतिष शास्त्र में यमघण्ट नामक योग मुहूर्त चिन्तामणि में दो प्रकार से विवेचित किया गया है। सबसे पहले आचार्य रामदैवज्ञ ने मुहूर्त चिन्तामणि के शुभाशुभ प्रकरण के 9वें श्लोक तथा 37 एवं 39 श्लोक में यमघण्ट का विचार किया गया है। यहाँ दो प्रकार के यमघण्ट प्राप्त हो रहे हैं।

(1) नक्षत्र तथा वार से उत्पन्न यमघण्ट योग

(2) यमघण्ट मुहूर्त।

(1) यमघण्ट योग–मुहूर्त गणपति एवं मुहूर्त चिन्तामणि दोनों में ही यमघण्ट योग की परिचर्चा प्राप्त होती है। यथा–

''अर्के मघा विशाखेन्दौ ज्ञे मूलं कृत्तिका गुरौ।
आर्द्रा भौमे शनौ हस्ते रोहिणी भृगुवासरे।
यमघण्टाख्ययोगोऽयं सर्वकार्यविनाशकः।''

मुहूर्तगणपति, शुभाशुभ – 28–29

अर्थात् रविवार में मघा नक्षत्र, सोमवार को विशाखा, मंगलवार को आर्द्रा, बुधवार को मूल, गुरुवार को कृत्तिका, शुक्रवार को रोहिणी, शनिवार को हस्त नक्षत्र होने पर यमघण्ट नामक योग होता है जो सभी प्रकार के शुभ कार्यो का विनाशक होता है।

यहाँ पर वार तथा चन्द्र नक्षत्रों के संयोग से उत्पन्न होने वाला यह अशुभ योग है जिसके द्वारा हम अपना बचाव करते हुए। शुभ काल का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

(2) यमघण्ट मुहूर्त–आचार्य रामदैवज्ञ मुहूर्त चिन्तामणि में लिखते हैं कि–

''कुलिकः कालवेला च यमघण्टश्च कण्टकः।
वराद्द्विघ्ने क्रमान्मन्दे बुधे जीवे कुजे क्षणः।।'' मु.चि. 1/37

अर्थात् वर्तमान दिन से गुरुवार तक गणना कर प्राप्त संख्या को दुगुना करने पर यमघण्ट नामक मुहूर्त का काल होता है। पुनः बोध के लिए आगे वाले श्लोक में सभी मुहूर्तो के काल को अलग–अलग पढ़ते हैं तथा सभी वारों में उत्पन्न होने वाले मुहूर्त को अलग–अलग बताते हैं। इस प्रकार निम्नलिखित चक्र यमघण्ट मुहूर्त का होगा–

रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	वार/मुहूर्त
14	12	10	8	6	4	2	कुलिक
8	6	4	2	14	12	10	कालवेला
10	8	6	4	2	14	12	यमघण्ट
6	4	2	14	12	10	8	कण्टक

इस चक्र में प्रत्येक वार के उपरोक्त संख्यात्मक मुहूर्त यमघण्ट नामक मुहूर्त होता है। मुहूर्त का ज्ञान करने के लिए दिनमान में 15 का भाग देकर 1 मुहूर्त का काल तथा तत्संख्यात्मक मुहूर्त का ज्ञान आसानी से कर लेंगे।

यमघण्ट के देश भेद के द्वारा शुभाशुभ हेतु वचन प्राप्त होता है कि–

''विन्ध्यहिमालयोर्मध्ये मगधे यमघण्टकः। अंगेऽन्ध्रे मत्स्यदेशे वा।।''

अर्थात् यह यमघण्ट मगध, अंग, आन्ध्र व मत्स्य देश में दोषकारक है अन्य देशों में इसका विचार नहीं करनी चाहिए।

3. अभ्यास प्रश्न–

खाली स्थानों की पूर्ति करें–

(क) दो प्रकार के यमघण्ट प्राप्त होते हैं जिसमें पहला नक्षत्र एवं वार से उत्पन्न होता है और देसरा .... मुहूर्त नाम का होता है।

(ख) सोमवार को .... नक्षत्र हो तो यमघण्ट योग होता है।

(ग) वर्तमान दिन से .... वार तक गणना करने पर यमघण्ट मुहूर्त होता है।

(घ) शनिवार को .... मुहूर्त यमघण्ट होता है।

(ङ.) यमघण्ट .... देश में दोषकारक नहीं होता है।

4.5 सारांश–

इस इकाई के पढ़ने के बाद आपने जाना कि–

- होरा की संख्या 24 ही होती है जिनका विभाजन 24 घंटे के समान है।
- होरा मुहूर्त की प्रवृत्ति (आरम्भ) सूर्योदय से होती है।

- वार का आरम्भ कभी सूर्योदय के पहले तथा कभी बाद में होता है जिसका सम्बन्ध देश (स्थान) से हैं।
- होराधिपति रव्यादि 6 ग्रह होते हैं।
- राहुकाल वस्तुतः वार एवं समय का विभाजन है।
- राहुकाल में कोई शुभ कार्य या यात्रा नहीं करनी चाहिए।
- राहुकाल में किसी भी प्रकार का समझौता या कार्य नहीं करनी चाहिए।
- प्रत्येक वार का कुछ समय राहुकाल नाम से जाना जाता है।
- राहुकल सूर्योदय से प्रारम्भ होता है।
- यमघण्ट योग अशुभ का सूचक है।
- इसके दो भेद हैं यमघण्ट योग तथा यमघण्ट मुहूर्त।
- यमघण्ट योग वार + नक्षत्र से बनता है।
- यमघण्ट मुहूर्त प्रतिदिन का पृथक्–पृथक् काल खण्ड या मुहूर्त विशेष है।
- दिनमान का 15वाँ भाग मुहूर्त कहलाता है।
- यमघण्ट के त्याज्यत्व के विषय में मगध, आन्ध्र, मत्स्य, अंग देश गृहीत हैं।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली–

(1) होरा–होरा शब्द का ज्योतिष शास्त्र में कई प्रकार का अर्थ ग्रहण किया जाता है। होरा अर्थात् राशि का आधा भाग, या होरा = अहोरात्र ÷ 24, होरा लग्न के अर्थ में भी प्रस्तुत होता है परन्तु इकाई में होरा पद से अहोरात्र का 24वाँ भाग ही मुहूर्त के रूप में कल्पित किया गया है। यहाँ होरा पद का अर्थ घंटा भी कल्पित किया गया है। जिसका मान सूर्योदय में 1–1 घंटा जोड़कर ज्ञात किया जा सकता है। क्योंकि 24 घंटा में 24 होरा तो 1 घंटा = 1 होरा।

(2) वार प्रवृत्ति– वार प्रवृत्ति का अभिप्राय है कि किस समय से वार का आरम्भ स्वीकार किया जाए। हमारे प्रचलित पंचांग 2 समय के बहुधा प्राप्त होते है– 1. वे पंचांग जिनमें सारी गणितीय क्रिया सूर्योदय के समय की बताई गई है। 2. दूसरी वह जिसमें रात्रि 12 बजे का समस्त मान पढ़ा गया है।

इससे फलीभूत होता है कि वार का प्रारम्भ भी इन दोनों मानों के आधार पर ही होता होगा। परन्तु स्थान के आधार पर वार के आरम्भ में अन्तर होता है तथा वह वारारम्भ कभी देशान्तर तुल्य अन्तर पर पहले या बाद में होता है।

(3) दिनमान–सूर्योदय से लेकर सूर्योस्त तक के मध्य के काल को दिनमान कहते हैं क्योंकि दिन शब्द की परिभाषा ज्योतिष शास्त्र में बताई गई है कि ''दिनं दिनेशस्त यतोऽत्र दर्शने''। अर्थात् जब तक सूर्य का दर्शन हो उसे तब तक दिन का संज्ञा देते हैं।

अथवा स्थानीय सूर्योदय को 5 से गुणा करने पर दिनमान घट्यात्मक होता है जिसको $2\frac{1}{2}$ से भाग देकर घंटा मिनट में भी माना जाना जा सकता है। 60 – घटी में से दिनमान घटाने पर रात्रिमान घट्यात्मक होता है। यथा सूत्र रूप में–

60:00 – दिनमान = रात्रिमान।

स्था. सूर्योस्त ग 5 = दिनमान।

12:00 – सूर्यास्त = सूर्योदय।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

अभ्यास प्रश्न 1 का उत्तर–

(क) – (3) 24

(ख) – (2) सूर्योदय से

(ग) – (2) बुध का

(घ) – (2) शुक्र का

(ड.) – (3) छठाँ वार

अभ्यास प्रश्न 2 का उत्तर–

(क) असत्य

(ख) सत्य

(ग) असत्य

(घ) असत्य

(ड.) असत्य

अभ्यास प्रश्न 3 का उत्तर–

(क) यमघण्ट

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.होरा एवं राहुकाल का वर्णन करें।

2.यमघण्ट काल से आप क्या समझते है। स्पष्ट रूप से लिखिये।